"उ० प्र० के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मानवाधिकारों की दशा एवं दिशा"

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से राजनीति विज्ञान
विषय में डॉक्टर ऑफ फिलासफी
उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

2008
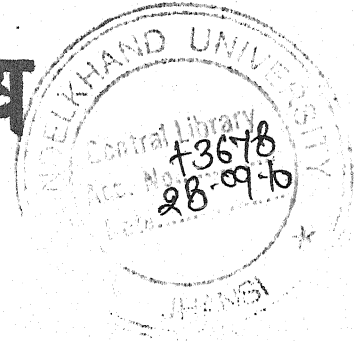
निर्देशक
डा0 रिपुसूदन सिंह
रीडर, राजनीति विज्ञान
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज, उरई

शोधकर्त्री
आसमा परवीन
एम. ए. (राजनीति विज्ञान)
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज, उरई
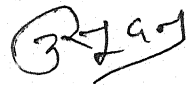
शोध केन्द्र
दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, उरई

डा0 रिपुसूदन सिंह
रीडर, राजनीति विज्ञान विभाग
एवं शोध केन्द्र
डी0 वी0 (पी.जी.) कालेज,
उरई (जालौन) उ0 प्र0

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि आसमा परवीन ने राजनीति विज्ञान विषय में "पीएच. डी" हेतु शीर्षक **"उ0 प्र0 के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मानवाधिकारों की दशा एवं दिशा"** पर मौलिक शोध कार्य मेरे निर्देशन में नियमानुसार आपेक्षित समय सीमा के २०० दिन अन्तर्गत पूर्ण किया है। मैं इसे परीक्षकों के मूल्यांकन हेतु संस्तुति करता हूँ।

रिपुसूदन

दिनांक:– ०२-०८-०८

(डा0 रिपुसूदन सिंह)

घोषणा पत्र

मैं आसमा परवीन यह घोषित करती हूँ कि राजनीति विज्ञान विषय के अन्तर्गत **''उ0 प्र0 के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मानवाधिकारों की दशा एवं दिशा''** शीर्षक पर पीएच. डी. उपाधि हेतु प्रस्तुत यह शोध प्रबन्ध मेरा स्वयं का मौलिक प्रयास है। मेरी जानकारी में उक्त विषय पर किसी भी अन्य शैक्षणिक संस्था में शोध कार्य नहीं किया गया है।

दिनांकः– २-४-०८

आसमा परवीन
(आसमा परवीन)

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन

भारतीय संविधान की प्रस्तावना में नागरिकों की मानवीय गरिमा की रक्षा का संकल्प प्रदर्शित किया गया है, लेकिन भारत में कितने लोग होंगे जिनकी गरिमा की रक्षा संविधान या उससे उत्पन्न राज्य की संस्थायें कर सकी है। निश्चित रूप से ऐसे लोगों की सख्या लाखों में भी नहीं होगी जिनके मानवाधिकारों की रक्षा सही संदर्भों में होती होगी। जबकि ऐसे लोगों की संख्या करोड़ों में है जिनकी गरिमा को राज्य की संस्थायें आये दिन कुचल रहीं हैं। मानवाधिकारों का हनन केवल राज्य की संस्थायें ही नहीं कर रही है बल्कि सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्तर के साथ साथ व्यक्तिगत स्तर पर भी हो रहा है। यह गम्भीर रूप से विचारणीय प्रश्न है।

जबकि 10 दिसम्बर 1948 को मानवाधिकारों की विश्वव्यापी घोषणा के उपरांत इसे भारत में लागू होने में लगभग पैंतालिस वर्ष लग गये जब इसे 1993 में लागू किया गया। देश के मात्र 18 राज्यों मे मानवाधिकार आयोगों का गठन किया गया है। इन आयोगों को मानवाधिकारों के विपरीत किये जाने वाले कार्यों की सुनवाई तथा दण्ड देने का अधिकार प्राप्त है। अब परिस्थितियॉ बदल रही है और ये आयोग मानवाधिकारों की रक्षा का दायित्व पूरा करने के लिए भरसक प्रयत्न कर रहें है। उसके उपरांत भी अधिकारों का हनन और यातनायें प्रतिदिन की घटना है, क्योंकि मानवाधिकारों के नाम हम केवल अपने अधिकारों के प्रति संवेदनशील हैं न कि दूसरे लोगों के प्रति। कभी कभी हालत इतनी खराब हो जाती है कि अपने अधिकारों का प्रयोग करते समय हम दूसरों के अधिकारों का हनन करते जाते हैं। देखा जाये तो प्रत्येक क्षेत्र में निर्बल वर्ग

का शोषण हो रहा है। यह शोषण चाहे समाज द्वारा हो या राजनीतिक संगठनों द्वारा, गिरफ्तारियां पुलिस ने की हो, अर्द्ध सैनिक बलों ने या सेना के जवानों ने, सत्ता में किसी भी दल की सरकार हो शोषण का कार्य अनवरत चल रहा है।

भारत में उत्तर प्रदेश पिछड़े राज्यों में है और प्रदेश के अन्दर बुन्देलखण्ड सबसे पिछड़ा है। इस क्षेत्र में आधे से अधिक व्यक्ति निरक्षर, निर्धन व गरीब हैं और उत्पीड़न के शिकार लोग अधिकतर इन्हीं कमजोर वर्गों से होते हैं। यहाँ अधिकांश नागरिक मानवाधिकारों के विषय में अनभिज्ञ हैं। मानवाधिकारों की लड़ाई सिर्फ कानूनी, राजनीतिक या आर्थिक तरीके से नहीं लड़ी जा सकती। लड़ाई तो उससे लड़ी जाती है, जो दृश्य हो, यहाँ तो शत्रु अदृश्य है, छुपा है। यह संस्कारों, प्रथाओं, परम्पराओं तथा अभिसमयों में घुला मिला है।

अतः आवश्यक है कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र में नागरिकों को उनके अधिकरों के प्रति जागरूक किया जाये तभी यहाँ मानवाधिकारों का संरक्षण किया जा सकता है। बुन्देलखण्ड के साहित्य और लोक परम्पराओं में लालित्य के साथ माधुर्य है, और मानव की रागात्मक वृत्ति को इनके आस्वादन से शांति दायक तृप्ति का अनुभव होता है लेकिन इसके समानान्तर बुन्देलखण्ड का एक और चेहरा है, जो यह भ्रम दूर कर देता है कि यह अंचल मानवीय मूल्यों के शिखर पर प्रतिष्ठित है। वस्तुतः बुन्देलखण्ड के भव्य और आकर्षक, सांस्कृतिक परिदृश्य के नेपथ्य में सामाजिक असमानता, लैंगिक भेदभाव, श्रम के शोषण और सामंती अन्याय के अनगिनत उदाहरण भरे पड़े हैं। आज जबकि मानवाधिकार एक महत्वपूर्ण मुद्दा बन चुका है तब स्वतन्त्रता के पश्चात **"उ0 प्र0 के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मानवाधिकारों की दशा एवं दिशा"** विषय पर शोध की

प्रासंगिकता और रोचकता स्वयं सिद्ध है, ताकि इस पर प्रकाश डाला जा सके कि सांस्कृतिक समृद्धता के बावजूद मानवाधिकारों की स्थिति कैसे दयनीय बनी रह सकती है। मानवाधिकार सभ्यता का मूल्य है। चाहे किसी प्राचीन संस्कृति की बात हो या आधुनिक संस्कृति की यदि किसी परिवेश में मानवाधिकारों को उचित महत्व नहीं मिलता तो सभ्यता का गौरव कलंकित ही रहता है।

अतः इस शोध प्रबन्ध का उद्देश्य है कि बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की दशा बताने का प्रयास किया गया है जिससे उसको एक नई दिशा दी जा सके। वर्तमान शोध को प्रस्तावना छोड़कर मुख्य रूप से **सात अध्याओं** में विभक्त किया गया है। **प्रस्तावना** में शोध प्रबन्ध के रूप को इस प्रकार स्पष्ट किया गया है ताकि बुन्देलखण्ड मे मानवाधिकारी की स्थिति, उसके हनन के कारणों और इसके प्रभावो के सार रूप की झलक दिखाई जा सके ? **प्रथम अध्याय** में मानवाधिकारों के सैद्धान्तिक आधार को स्पष्ट करते हुए उसके इतिहास, विकास और समय समय पर घोषित घोषणा पत्रों की व्याख्या की गई है।**दूसरे अध्याय** में भारतीय संविधान में मानवाधिकारों की व्यवस्था के विषय में बताते हुये राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं राज्य मानवाधिकार आयोग के विषय में अनेक स्थितियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। **तीसरे अध्याय** के द्वारा बुन्देलखण्ड का इतिहास तथा प्राचीन बुन्देलखण्ड में मानवीय मूल्यों की वस्तुस्थिति का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। **चतुर्थ अध्याय** के द्वारा बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार हनन के विभिन्न पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया गया है। **पांचवा अध्याय** उ0 प्र0 में मानवाधिकारों की व्यवस्था तथा बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की स्थिति (सातों जिलों के अन्तर्गत) की

जानकारियों और सूचनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। **छठवें अध्याय** में आयोगों के वरिष्ठ अधिकारियों, पत्रकारों, प्रवक्ताओं, स्वयं सेवी संस्थाओं के प्रमुखों, अन्य स्वतंत्र बुद्धिजीवियों तथा स्वयं के सुझावों के द्वारा यह बताने का प्रयास किया गया है कि बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों का संरक्षण कैसे किया जा सकता है। **सातवें अध्याय** उपसंहार में बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार से जुड़े सभी पहलुओं पर समीक्षात्मक अध्ययन और उस पर आधारित निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है।

शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में उपकरण के रूप में विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित विषय से सम्बन्धित लेखों, पुस्तकों और मानवाधिकार आयोग द्वारा प्रकाशित सामग्री, पुलिस में दर्ज केस, अन्य जागरूक लोगों के विचार वरिष्ठ अधिकारी, नेता, वकील, पत्रकार अन्य समाजसेवियों के विचारों से विषय सामग्री जुटाई गई तथा साथ ही स्वयं के विचारों को भी दिया गया है।

यह शोध प्रबन्ध मेरे शोध निर्देशक एवं प्रेरणास्रोत **डा0 रिपुसूदन सिंह** रीडर (राजनीति विज्ञान विभाग) डी0 वी0 (पी0जी0) कालेज, उरई के सहयोग एवं आर्शीवाद के परिणाम स्वरूप ही पूरा हो सका है। मैं उनके प्रति कृतज्ञ हूँ और आजीवन रहूँगी। शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे दयानन्द वैदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचार्य डा0 एन0 डी0 समाधिया, राजनीति विज्ञान विभाग के डा0 राजेन्द्र पुरवार, डा0 जयश्री पुरवार, डा0 आदित्य कुमार एवं पुस्तकालय अध्यक्ष का पूर्ण सहयोग मिला। मैं उनके प्रति आभारी हूँ। इसके अलावा में राष्ट्रीय एवं राज्य मानवाधिकार आयोग के स्टाफ, महिला आयोग की सुश्री राजेन्द्री वर्मा, वरिष्ठ पत्रकार और स्तम्भकार श्री के0 पी0 सिंह,

संस्कृतिकर्मी डा0 हरिमोहन पुरवार, श्रीमती निरूपमा सचान और अन्य लोगों के प्रति भी आभारी हूँ।

शोध प्रबन्ध को पूरा करने में मुझे मेरे माता पिता, दादी का सदैव आर्शीवाद प्राप्त रहा तथा मेरे अंकल, शाहिद, समीर एवं मिनी मैडम का सहयोग भी मेरे साथ सम्बल की तरह रहा। मैं उनके प्रति भी अपना आभार व्यक्त करती हूँ। अन्त में, मैं श्री *अनिल मिश्रा* (काजल कम्प्यूटर, रामनगर, उरई) की भी आभारी हूँ, जिन्होंने मेरे शोध को त्रुटि रहित टंकण व सुसज्जित कर अपना अमूल्य सहयोग दिया।

दिनांकः— २-८-०८

आसमा परवीन
आसमा परवीन
शोधार्थी

प्रस्तावना

प्रस्तावना

अपनी अलग परम्परा, भाषा एवं पहचान के आधार पर उ0 प्र0 को सामान्यतः पाँच क्षेत्रों में बाँट कर देखा जाता है यथा पूर्वांचल, अवध प्रदेश, रूहेलखण्ड, पश्चिमांचल या हरित प्रदेश और बुन्देलखण्ड। जब हम बुन्देलखण्ड की बात करते हैं तो इसका एक विस्तृत रूप सामने आता है जो उ0 प्र0 और मध्य प्रदेश तक फैला है। इसीलिए जब हम उ0 प्र0 में बुन्देलखण्ड की बात करते हैं तो इससे हमारा तात्पर्य होता है उन सात जिलों– जालौन, झाँसी, ललितपुर, हमीरपुर, महोबा, बाँदा, चित्रकूट से होता है। उ0 प्र0 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र का एक विशिष्ट महत्व है प्राकृतिक संसाधन, कृषि योग्य विस्तृत भूमि के साथ–साथ बुन्देलखण्ड का विगत एक हजार साल के इतिहास में विशिष्ट स्थान रहा है आल्हा ऊदल से लेकर, वीर सिंह जूदेव, हरदौल तथा 1857 की क्रांति में बुन्देलखण्ड के योगदान ने इसकी विशिष्ट ऐतिहासिक विरासत और पहचान को निर्मित किया है। उ0 प्र0 का यह क्षेत्र 24418 वर्ग किमी0 में फैला है जिसकी जनसंख्या 82.32 लाख है जो पूरे प्रदेश की कुल जनसंख्या का 4.9 प्रतिशत है।

आजादी के बाद इस क्षेत्र विशेष को कविता, कहानी, निबन्धों में तो बहुत सारा स्थान मिला पर नीति निर्माताओं ने अपनी योजनाओं में कहीं न कहीं इसको नजर अंदाज किया है माताटीला डैम या पारीक्षा विद्युत परियोजना

इत्यादि को छोड़ दें तो कहीं कोई शेष कार्य इस क्षेत्र के लिए नहीं किया गया। प्राकृतिक संसाधनों से लबरेज इस क्षेत्र का दोहन आजादी के विगत सत्तावन सालों में खूब किया गया पर मूलभूत संरचनाओं तक के विकास को दरकिनार किया गया कल जिस शौर्य और इतिहास के लिए बुन्देलखण्ड का क्षेत्र जाना जाता था आज वही क्षेत्र अपराध और दुर्दान्त दस्युओं के लिए जाना जाने लगा। असमान विकास, पिछड़ापन, मूलभूत संरचनाओं की कमी, रोजगार का अभाव इत्यादि ने इस क्षेत्र को मानवाधिकार के उद्दात्म आदर्शों की कसौटी पर बहुत ही नकारात्मक स्थिति में पहुँचा दिया। इन सभी बातों का सम्बन्ध सीधे–सीधे मानवाधिकार हनन से भी है। पचास के दशक में तथाकथित दस्यु सुन्दरी पुतलीबाई आगे चलकर फूलनदेवी, निर्भय, ददुआ इत्यादि का उदय यह प्रमाणित करता है कि मानवाधिकारों की स्थिति कितनी दयनीय रही है। कहने के लिए भारत में लोक कल्याणकारी राज्य रहा है पर बुन्देलखण्ड में पुलिस राज्य ही कायम है। इस पुलिस राज्य ने दमन का ऐसा चक्र चलाया जिसने अपराधियों, जनप्रतिनिधियों, माफियाओं व प्रशासन के बीच में एक अपवित्र गठबन्धन का निर्माण किया।

अतः यहाँ मानवाधिकारों का प्रश्न और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, क्योंकि किसी भी समाज का विकास वहाँ की भौतिक प्रगति से नहीं बल्कि मानव विकास के साथ जुड़ा होता है। जब मानव को मानव होने के नाते जो अधिकार मिलना चाहिए, वह अधिकार उसे नहीं मिलते तो यह उसके

मानवाधिकारों का हनन कहलाता है। मानवाधिकार हनन के मामले में बुन्देलखण्ड क्षेत्र काफी आगे है। यह सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट होने के बाद भी मानवीय मूल्यों के सम्मान में बहुत पीछे है। किसी भी क्षेत्र की गुणवत्ता का सम्बन्ध वहाँ के मानवीय मूल्यों तथा आदर्शों के सम्मान से जुड़ा होता है जबकि जाति व्यवस्था बुन्देलखण्ड में गम्भीर रूप से विद्यमान रही है, जिसकी वजह से मानवीय गरिमा के साथ बहुत ज्यादा खिलवाड़ हुआ। जहाँ आधे से अधिक जनसंख्या निर्धन और निरक्षर हो वहाँ एमनेस्टी इण्टरनेशनल के अनुसार सरकारी तौर पर माना गया कि एक तिहाई लोग यहाँ विशेष सुरक्षा के पात्र हैं। तब समाज का विकास तो सबके साथ जुड़ा होता है ना कि कुछ गिने चुने लोगों के साथ जैसे– शरीर के किसी अंग में परेशानी होने पर उसका इलाज किया जाता है न कि उसे शरीर से अलग कर दिया जाता है। आज आवश्यकता है उन दबे कुचले, विशेष सुरक्षा के पात्र लोगों को उनके अधिकार देने की। मेरा मानना है कि– लोग जितना अधिक अपने अधिकारों के विषय में जानेंगे और जितना अधिक वे दूसरे के अधिकारों का आदर करेंगे उतना ही अधिक उनके शांति से रहने की सम्भावनायें बढ़ेंगी। मानवाधिकारों के विषय में लोगों के शिक्षित होने पर ही हम मानवाधिकारों का उल्लघंन रोक सकते हैं।

वास्तव में मनावाधिकारों के विषय में जानने से पहले अधिकारों के विषय में जानना आवश्यक है कि अधिकार क्या हैं–अधिकारों से तात्पर्य, मनुष्य को राज्य की ओर से प्राप्त होने वाली ऐसी अनुकूल स्थितियाँ व अवसर हैं

जिनके द्वारा वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सकता है।**लॉस्की के अनुसार**–*"अधिकार सामाजिक जीवन की वह परिस्थितियाँ हैं जिनके बिना आमतौर पर कोई व्यक्ति पूर्ण आत्मविकास की आशा नहीं कर सकता है।"*[1]

अतः हम कह सकते है कि मानव अधिकार मानव जाति के अधिकार हैं। वे सम्पूर्ण एवं नैसर्गिक हैं अनंत से उनकी उत्पत्ति हुई है और वे अनंत तक जाते हैं। ये वे अधिकार हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को मानव होने के नाते अनायास ही प्राप्त होते हैं, चाहे उसकी राष्ट्रीयता, लिंग, सामाजिक, आर्थिक स्थिति और व्यवसाय कुछ भी हो। मानवाधिकारों से ही व्यक्ति अपनी आत्मिक, सामाजिक और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाता है और अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने में समर्थ हो पाता है। ये सम्पूर्ण अधिकार हमें एक मनुष्य होने के कारण प्राप्त हुये हैं जिससे कि हम सम्मानपूर्वक जीवन जी सके और अपना विकास करते हुये समाज और राष्ट्र का विकास कर सकें।

10 दिसम्बर 1948 की मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के पश्चात अधिकतर देशों में मानवाधिकार आयोगों का गठन किया। इसी क्रम में भारत ने भी 1993 में मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम पारित किया और प्रत्येक राज्य प्रान्तों, जिलों में आयोग और न्यायालय गठित करने के आदेश पारित किये, तथा मानवाधिकारों को परिभाषित करते हुये कहा– "मानव अधिकारों से तात्पर्य उन अधिकारों से है जो जीवन, स्वतन्त्रता, समानता, एवं प्रत्येक व्यक्ति की

---

[1] ओ0 पी0 गावा : "समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त" पृष्ठ–170

गरिमा से सम्बन्धित हैं, और जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीय संविदाओं में शामिल किया गया। जिन्हें भारत के न्यायालयों द्वारा लागू किया जा सकता है। ये भारतीय समाज की विशेष परिस्थितियों में पूर्णतः सार्थक हैं।"[2]

मानवाधिकारों को बहुधा मूल अथवा मौलिक अधिकार भी कहा जाता है। मानव अधिकारों की सामान्यता यह परिभाषा दी जा सकती है कि यह वह अधिकार है जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित है, तथा जिनके बिना हम मनुष्य के रूप में जीवित नहीं रह सकते मानव अधिकार तथा मूल स्वतन्त्रतायें हमें अपने मानवीय गुणों का विकास, आध्यात्मिक एवं अन्य आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायक होती है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अन्तर्गत मानवाधिकारों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है और संयुक्त राष्ट्र का मुख्य उद्देश्य यह है कि वह प्रत्येक राष्ट्र से मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतन्त्रता को बिना जाति, भाषा, लिंग धर्म आदि भेदभाव के लागू करवाने का प्रयास करे।

अतः मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा का हमारे संविधान निर्माताओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ा। इस घोषणा के अधिकतर अधिकारों का सार हमारे संविधान के भाग III और भाग IV में दिये गये मूल अधिकारों और राज्य के नीति निर्देशक तत्वों में समाहित है जिनके विषय में डा0 राधाकृष्णन ने कहा था– *"कि ये हमारे अपने लोगों के प्रति वचनवद्धता और सभ्य संसार के साथ*

---

[2] "संयुक्त राष्ट्र चार्टर" ए अनु0 1 पृष्ठ–13

मित्रता के द्योतक हैं ये हमारे देश के संविधान द्वारा शुरू हुई जनतांत्रिक जीवन पद्धति की आधारशिला है।'[3]

यह भी ध्यान रखने योग्य है कि भारतीय संस्कृति में मानव अधिकारों की प्रतिष्ठा हमेशा से रही है मानव अधिकारों का आदर करना हमारी धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष आस्थाओं और विश्वासों का स्वाभाविक अंग रहा है। आज केवल भारत नहीं बल्कि पूरे विश्व में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति का लक्ष्य केवल अधिकार प्राप्त करना हो गया है। कर्तव्यों को तो जैसे हम भूल गये है। यदि हम अधिकारों की बात करें तो इसका अर्थ कुछ हासिल करना होता है जो किसी दूसरे से प्राप्त होता है, इसमें कोई हर्ज भी नहीं। परन्तु विषमता वहाँ होती है, जहाँ हम उस अधिकार को प्राप्त करने का प्रयास करते हैं जो हमारे हिस्से का नहीं था जो किसी दूसरे का है और हम उसे देना नहीं चाहते। यह निसंदेह मानव के सामाजिक, आर्थिक या अन्य किसी अधिकार का हनन है। अतः मात्र अधिकार प्राप्त करना और उसका उचित अनुचित प्रयोग मानवाधिकार के हनन का सबसे बड़ा कारण है। तथा विकसित देशों की अपेक्षा विकासशील देशों में मानवाधिकारों की स्थिति और अधिक भयावह है।

''मैं यह बात बड़े साफ तौर पर कहना चाहता हूँ कि हम किसी को यातनायें नहीं देते हमें जहाँ कहीं भी यातनायें देने की शिकायतें मिलीं, हमने

---

[3] डा0 एस0 के0 कपूर ''मानव अधिकार एवं अन्तर्राष्टीय विधि'' इलाहाबाद 2002 पृ0 654

उनकी जाँच करवाई और पाया कि वे सच नहीं थी।"[4] ये शब्द थे भारत के प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी के जब ब्रिटिश टेलीविजन के कार्यक्रम "पैनोरमा" में उनसे भारत के मानवाधिकार सम्बन्धी इतिहास के बारे में पूछा गया था। परन्तु हम सभी जानते हैं कि भारत की एक अरब की आबादी में कितने लोग होंगे जिनकी गरिमा की रक्षा संविधान या उससे निकली राज्य की संस्थायें कर सकी हैं। निश्चित रूप से ऐसे लोगों की संख्या लाखों में भी नहीं होगी, जबकि ऐसे लोगों की संख्या रोज करोड़ों में होती है जिनकी गरिमा को राज्य की संस्थायें आहत करती हैं। यह कार्य राज्य की संस्थायें ही नहीं करती बल्कि व्यक्तिगत या संस्थागत रूप से और भी अधिक होता है।

एमनेस्टी इण्टरनेशनल के अनुसार भारत में 1985 से 1991 के बीच पुलिस तथा सुरक्षावलों के द्वारा मरने वालों की संख्या 415 थी, जिनमें सर्वाधिक मामले उ0 प्र0 से थे। जबकि 'द स्टेटसमेन अखबार के अनुसार भारत में हवालाती मौतों की संख्या प्रतिवर्ष 100 या अधिक तक हो जाया करती है। इसी प्रकार दहेज हत्या, लिंग अनुपात में अन्तर, बाल श्रमिकों की समस्या, अनुसूचित जाति एवं जनजाति के लोगों के साथ अत्याचार के मामले लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं।

इसी तरह प्रदेश स्तर पर यह स्थिति और अधिक खराब है क्योंकि यहाँ अभी भी शिक्षा का स्तर निम्न है और विकास की गति काफी धीमी जब तक

---

[4] "एमनेस्टी इन्टरनेशनल" भारत" लन्दन, 1992

मानव इकाई को अपने पूर्ण अधिकारों की उपलब्धता सुनिश्चित नहीं हो जाती सारी प्रगति अधूरेपन के लिए अभिशप्त रहेगी। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग में सर्वाधिक मामले उ0 प्र0 से ही पंजीकृत होते हैं। 2006–07 में यह संख्या सर्वाधिक 49000 तक पहुँच गई है। यह आश्चर्य का विषय है कि जितने प्रयास मानवाधिकार प्रदान करने व उसे सुरक्षित करने के लिये किये जा रहे हैं, उतना ही अधिक अधिकारों का हनन हो रहा है लगभग यही स्थिति प्रत्येक जगह पलिक्षित हो रही है।

हमने अपनी सदियों पुरानी परम्परा और सांस्कृतिक विरासत को लिये हुये *'सर्वे भवन्तु सुखिनः'* की बात आज से सदियों साल पहले विश्व को बताई थी। स्वतन्त्रता के पश्चात भारत ने विकास के अनेक सोपान चढ़े है निरन्तर परिवर्तन की विविध मंजिलें तय की है भले ही मंदगति से ही सही परन्तु विकास किया है। फिर भी मानव आज भी वही है मानव ने कुछ भी किया हो लेकिन उसे अपने अधिकार नहीं मिले। जिसके पास शक्ति है जो शासक है, जो अमीर है, जिसके पास विद्या है, जिसके पास तीक्ष्ण बुद्धि है उनका एक ही उद्देश्य है अपने से छोटों का शोषण करना। दूसरे के अधिकारों का हनन करते हूये अपने अधिकारों का प्रयोग करना। चालाक ढोंग रचाता है, बलवान जुल्म करता है, कायर पाप करता है, और निर्बल भीख माँगता है चारों ओर इस तरह के संकट के बीच मनुष्यता खड़ी–खड़ी सिसक रही है।

जबकि संविधान में मानवीय गरिमा को बहुत महत्व दिया गया है और उच्चतम न्यायालयों ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के निर्वाचनात्मक (Interpretative Value) मूल्य को स्वीकार किया है और उन्हें मानव परिवार के सभी सदस्यों के समान एवं असंक्रमणीय अधिकार कहा है। न्यायालयों का यह भी दायित्व है कि मानव अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों एवं संलेखो की सामान्यतः तथा विशेषकर मानव अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदाओं की अवहेलना न करे वरन् उन्हें मानव अधिकारों से सम्बन्धित संवैधानिक उपबन्धों का निर्वचन करते समय लागू करें।

और यह आश्चर्य का विषय है कि बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्रों में तो जनसाधारण को अपने ही अधिकारों की जानकारी नहीं, कि अधिकार है क्या ? जबकि इनके संरक्षण के लिए विधान और संविधान में कई व्यवस्थायें की गई हैं लेकिन उनका लाभ कितने लोग उठा पा रहे हैं, यह सोचने का विषय है। किसी क्षेत्र के विकास के प्रतिमान वहाँ के लोगों के विकास से जुड़े होते हैं और सांस्कृतिक गुणवत्ता का सम्बन्ध मानवीय मूल्यों और आदर्शों के सम्मान के साथ जुड़ा है। यहाँ अधिकांश लोग गरीब एवं निम्न तबके से आते हैं बेरोजगारी, अशिक्षा, विकास की अवरूद्ध अवस्था ने भी यहाँ के लोगों को ओर अधिक दुर्बल बना दिया है। गरीबी के कारण वह जानवरों से भी बद्तर जीवन जीने को मजबूर हैं। प्राचीन काल से ही यहाँ सामन्तवादी व्यवस्था है जिससे यहाँ मजदूर

वर्ग की संख्या बहुतायत से है। एक रिपोर्ट के अनुसार सर्वाधिक मानवाधिकारों का हनन इन्हीं कमजोर और निम्न वर्ग के लोगों का होता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र को सांस्कृतिक परम्पराओं का पोषक माना जाता है। इसमें मानवीय सृजनात्मकता के कई आकर्षक आयाम प्रस्तुत किये हैं। सांस्कृतिक जीवन के इस आधार के कारण ही बुन्देलखण्ड में कलाओं की उन्नति को भरपूर प्रश्रय मिला। जिससे शांतिप्रियता और भावुकता की प्रवृत्तियां पनपी जिसकी वजह से बाहरी बर्बर विजेताओं को आक्रमण का निमन्त्रण मिला विशेष रूप से ऐसे सामंतों के कारण बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की स्थिति निरन्तर बिगड़ती चली गई। प्रथम स्वाधीनता संघर्ष में बुन्देलखण्ड के लोगों की अधिक भागीदारी के कारण भी अंग्रेजों ने यहाँ के लोगों को प्रताड़ित किया और विकास के क्रम में अंग्रेजी शासन द्वारा बुन्देलखण्ड की उपेक्षा की गई। यहाँ अनेक कुरीतियां समाज में व्याप्त थीं जैसे– बाल विवाह, सती प्रथा, कन्याओं को जन्मते ही मार देना, महिलाओं में पर्दाप्रथा, वंधुआ मजदूरी, जातीय उत्पीड़न आदि। कुछ कुप्रथायें तो सरकार के भरसक प्रयासों के बाद समाप्त हुई हैं।

लेकिन इस स्थिति को बदलने के लिये और अधिकारों के हनन को रोकने के लिए बुन्देलखण्ड का विकास जितने बड़े पैमाने पर करने की ज़रूरत है, उतने संसाधन नहीं हैं। शासन द्वारा भी बुन्देलखण्ड की उपेक्षा की गई है जिससे अनेक तरह की विसंगतियां उत्पन्न हुई हैं इसके कारण बुन्देलखण्ड की स्थिति अत्यन्त बिगड़ती जा रही है। और तो और प्राकृतिक आपदाओं जैसे

सूखा, बाढ़ आदि के कारण भी यहाँ लोग भूख से मर रहे हैं। आज भी सूदखोर मुनीम, सामन्त आदि लोगों की मजबूरी का फायदा उठाकर उनके ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। यह समस्या किसी क्षेत्र विशेष की नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज के हर क्षेत्र से जुड़ी है क्योंकि प्रत्येक क्षेत्र में प्रभुत्व वर्ग निर्बल वर्ग का शोषण कर रहा है। मानवाधिकारों की आधुनिक संहिता के परिप्रेक्ष्य में बुन्देलखण्ड में कई पहलू विचारणीय हैं। सर्वप्रथम भूमि का न्यायोचित वितरण न होने के कारण खेतिहर श्रमिक आज भी न्यायपूर्ण मजदूरी के अधिकार से वंचित है भूमि सुधार कानूनों का क्रियान्वयन यहाँ कागजी कार्यवाही तक सीमित रहा है। बड़े जमींदार अपनी जमीनें फर्जी पट्टाधारकों के नाम, मंदिरों तथा रिश्तेदारों के नाम करके बचाये रखने में सफल रहे हैं और खेतिहर मजदूरों की संख्या कम होने के बजाय लगातार बढ़ती जा रही है। कागजी तौर पर बंधुआ मजदूरों का पूर्णतः उन्मूलन बताया जाता है। परन्तु यदा कदा आज भी यहाँ बंधुआ मजदूर मिल जाते हैं। जहाँ हमारे देश में पशुओं के प्रति क्रूर व्यवहार पर आपत्ति जताई जाती है वही यहाँ मनुष्यों के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया जाता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र दो मण्डल झाँसी व चित्रकूट मण्डल में विभाजित हैं। इन सात जिलों में ज्यादातर आबादी सामाजिक अन्याय की शिकार जातियों की है क्योंकि जातिगत भावना के कारण इन समुदायों के लोग तिरस्कृत और अपमानित होते रहे हैं। फलस्वरूप उनको विकास का अवसर नहीं मिल पाया।

उन्हें आज भी हीन समझा जाता है उनके साथ बुरा बर्ताव, मारपीट आम बात है। और महिलाओं को तो जैसे महिला समझा ही नहीं जाता। बुन्देलखण्ड की ही एक घटना के अनुसार एक अनुसूचित जाति की महिला का उच्च श्रेणी के व्यक्ति के साथ प्रेम प्रसंग के कारण उसे जिन्दा जला दिया जाता है। इसी तरह के एक अन्य केस में दोनों को मार दिया जाता है। अतः जातीय उत्पीड़न की घटनाओं ने इस अंचल में क्रूरता की नई मिसालें स्थापित की हैं।

मात्र किसी सामन्त के खेत से चने चुराने के कारण महिला को लाठियों से पीटा जाना कहाँ तक सही प्रतीत होता है किसी स्त्री ने कितना भी बड़ा अपराध क्यों न किया हो पर उसे सार्वजनिक रूप से निर्वस्त्र करना मानावधिकारों का खुला उल्लघंन है। परन्तु रिपोर्ट दर्ज होने के बाद भी पुलिस द्वारा कोई कार्यवाही तक नहीं की जाती। सामन्ती व्यवस्था के कारण ही यहाँ शिक्षा की स्थिति इतनी दयनीय बनी हुई है। क्योंकि कोई भी सामन्त अपने यहाँ काम करने वालों को शिक्षित करना नहीं चाहता बल्कि वह तो उन्हें अपने गुलाम बनाकर रखना चाहता है तथा उनके मूल अधिकारों का हनन करता रहता है जबकि मानवाधिकारों को आधारभूत अधिकार (Basic Rights) और जन्म अधिकार (Birth Right) तभी कहा जाता है जो हमें जन्म के साथ ही मिलना चाहिए परन्तु इनका संरक्षण समाज के लिए चुनौती बना हुआ है।

हमारे देश में अनेक महापुरूषों ने जन्म लिया है जिन्होंने मात्र समाज को दिया है लिया कुछ नहीं। हम उनके विचारों को सुनते हैं, पढ़ते हैं पर सीखते

नहीं। मात्र अधिकार प्राप्त करना उनका उचित–अनुचित प्रयोग मानवाधिकारों के हनन का भी एक कारण है। अतः मानवाधिकारों का मतलब है कि स्वयं मनमाने कानून बनाकर, कानूनी कार्यदाही की आड़ में मनुष्यों के साथ अमानवीय व्यवहार नहीं किया जाना चाहिए। किसी को क्रूर एवं अपमानजनक दण्ड भी नहीं दिया जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को मृत्युदण्ड देना तो कानूनी हो सकता है लेकिन सार्वजनकि रूप से मृत्युदण्ड देना या तड़पा–तड़पा कर मारना, या जिन्दा जला देना अमानवीय कृत्य होगा।

आज किसी भी देश का सभ्य व सुसंस्कृत होना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह कितना धनवान व शक्तिशाली है बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि वहां मानवाधिकारों का कितना सम्मान होता है ये इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि इन अधिकारों के बिना सामान्यतः कोई भी व्यक्ति न तो अपना, और न ही समाज का पूर्ण विकास कर सकता है। विकास के प्रयासों में उपेक्षित रहने के कारण ही बुन्देलखण्ड में भौगोलिक जटिलतायें पूरी भयावहता के साथ मौजूद है। इसकी वजह से आपराधिकता का एक अलग आयाम डाकू समस्या के रूप में देखने को मिलता है। कई इलाकों में तो इनकी समानान्तर सत्ता चलती है। बेरोजगारी के कारण भी अन्य अपराधों में लगातार वृद्धि होती जा रही है क्योंकि पुलिस की कार्यप्रणाली औपनिवेशिक युग की है। वह एक अपराधी मारती है, उसके रक्तबीज से अनेक अपराधियों का जन्म होता है क्योंकि पुलिस की हिरासत में लोगों के साथ जो अमानवीय व्यवहार किया जाता

है वह किसी से छिपा नहीं है, कहीं सम्भावित अपराधियों पर हंटर बरसाये जाते हैं, कहीं इनके नंगे बदन लाल गर्म सलाखों से दाग दिये जाते हैं, इनके हाथ पैरों के नाखून निकाल लिये जाते हैं, घावों में मिर्च भर देना, करंट लगाना आदि जघन्य कार्य किये जाते हैं। पुलिस कस्टडी में मौंते भी यहाँ आम सी बात है कुठौंद निवासी हरिश्चन्द्र पाल आयु 30 वर्ष पुलिस द्वारा अत्यधिक पिटाई के कारण मृत्यु होने पर पुलिस द्वारा यह कहकर इतिश्री कर ली गई कि बीमारी के कारण मृत्यु हुई थी। परन्तु आयोग से जाँच के आदेश के बाद पाया गया कि पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु हुई और उन पुलिस वालों पर आरोप तय पाया गया।

परन्तु अधिक से अधिक उन पुलिस वालों के ट्रांसफर हुये और उन पर मुकद्दमा चलाया जा रहा पर साक्ष्य तो पुलिस को ही देना होता है और ये सब तोड़ मरोड़ कर पेश किये जाते हैं, जिससे गुनाहगार आसानी से बड़े से बड़ा अपराध करने के बाद भी बच निकलता है। दस्यु प्रभावित क्षेत्रों में पुलिस उत्पीड़न की समस्या और ज्यादा है किसी एक अपराधी को पकड़ने के लिए पुलिस पूरे गाँव तहस–नहस कर डालती है। किसी मुजरिम के न मिलने पर उसे घर की महिलाओं को थाने में बैठाना सामान्य सी बात है। अपनी आजीविका कमा रहे रिक्शे वाले, ठेले वाले, सब्जी वाले, मजदूर, बाल मजदूर, महिलायें आदि पुलिस उत्पीड़न का रोज ही शिकार होते हैं। किसी सामान्य व्यक्ति की तो रिपोर्ट भी दर्ज नहीं होती जबकि दबंग या अमीर व्यक्ति की झूठी रिपोर्ट भी दर्ज हो जाती है।

जहाँ पुलिस को हमारे मानवाधिकारों की संरक्षक कहा जाता है, वहीं सबसे ज्यादा मानवाधिकारों का हनन पुलिस द्वारा ही किया जाता है। राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग ने पुलिस को विधिक तरीके से काम करने के लिए वाध्य करने की दृष्टि से कई मार्ग निर्देश तय किये हैं लेकिन बुन्देलखण्ड में पुलिस की कार्य प्रणाली पर कोई असर नहीं। जब बहुत सारे अपराधी जैसे– 2003 में 80 अपराधी केवल जालौन जिले में पुलिस मुठभेड़ में मारे जाते हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि यह कानूनी प्रक्रिया को धोखा देना तो नहीं। यह घटनायें केवल बुन्देलखण्ड की ही नहीं बल्कि समस्त भारत की है पर ये सब घटनायें बुन्देलखण्ड में आज और भी क्रूर रूप लेती जा रही हैं।

जबकि एक दशक होने के बाद आज भी मानवाधिकार आयोग पुलिस की कृपा का मोहताज बना हुआ है। पुलिस महकमे पर इस आयोग का असर पूर्व की अपेक्षा अधिक जरूर हुआ है। परन्तु इस आयोग की लम्वी प्रक्रिया एवं लम्बित मामलों एवं आयोग की अवहेलना पर की गई कार्यवाही का कोई लेखा जोखा नहीं है। जबकि इस आयोग से राहत मिले प्रकरण अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। आज आवश्यकता इसको अधिक शक्तिशाली बनाने की है। बाल श्रमिक भी यहाँ की मुख्य समस्या है। अत्यधिक बेरोजगारी एवं जीविका में संकट के कारण परिवार चलाने के लिए अभिभावकों को बच्चों से मजदूरी करानी पड़ती है, शिक्षा का स्तर यहाँ इसीलिए भी निम्न है। क्योंकि 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का अधिकार होने के बाद भी ये बच्चे मिस्त्री की

दुकान, चाय के होटल, कूड़ा बीनते, 10, 20 रूपये में कालीन बिनते नजर आते हैं।

विद्यालय तो नाममात्र को ही जाते हैं ये मासूम बच्चे शायद स्वयं कमाकर खाने के लिए ही जन्मते हैं, क्योकि मजदूर वर्ग ने अपने बच्चों से कार्य कराने को अपनी नियति मान लिया है। यह कल के भावी नागरिक जब स्वयं का ही विकास नहीं कर सकते तो समाज और राष्ट्र का विकास क्या करेंगे। बाल श्रमिकों की समस्या यहां प्रचण्ड रूप से फैली हुई है। प्रत्येक तीसरी दुकान पर बाल श्रमिक आसानी से देखे जा सकते हैं। इस समस्या को दूर करने के लिए तो हमें जन आन्दोलन की आवश्यकता है वर्ना सरकारी प्रयास तो विफल होते नजर आ रहे हैं।

सरकार के अनेक प्रयासों के बाद भी असमान लैंगिक अनुपात बराबर बढ़ता ही जा रहा है और भ्रूण हत्या दिन प्रतिदिन विकराल रूप लेती जा रही है। "सन् 1901 की जनगणना के अनुसार यह अनुपात 1000 : 972 था। सन् 1951 में 1000 : 946 और 1991 के अनुसार 1000 : 927 रह गया है।"[5] जिससे महिलाओं से सम्बन्धित अपराध बढ़ रहे हैं। पुरूष प्रधान समाज होने के कारण महिलाओं को प्रत्येक जगह अपने सम्मान की बलि देनी पड़ती है। सरकारी आंकड़ों के अनुसार पूरे प्रदेश में करीब 33 महिलायें रोज उत्पीड़न का शिकार

[5] "आज" 17 अक्टूबर, 2007

होती है और केवल बुन्देलखण्ड में ही रोज एक या एक से अधिक महिला बलात्कार का शिकार होती है।

दहेज प्रतिरोधक कानून बनने के पश्चात भी प्रत्येक दिन अखबार में जलकर मरने वाली, जहर खाकर मरने वाली महिलाओं की खबरें पढ़ने को मिलती है और आज भले ही महिलाओं के खिलाफ हुये उत्पीड़न में कमी का दावा किया जा रहा है परन्तु सच्चाई कुछ ओर ही है। जो हम सब रोज देखते हैं जबकि नारी सबलीकरण उत्थान व विकास के सन्दर्भ में भारत ने राष्ट्रीय महिला आयोग का 1992 में गठन किया है। इसका गठन नारी स्वतन्त्रता, समानता व न्याय के सन्दर्भ में प्रयास करने के उद्देश्य से किया गया है। जिससे प्राथमिकता के स्तर पर नारी का शोषण व उत्पीड़न रूक सके और द्वितीय स्तर पर नारी विकास व सशक्तिकरण के सकारात्मक उपाय किये जायें। आज महिला समानता को मानव जाति की शांति, न्याय व समृद्धि के लिए आवश्यक माना जा रहा है, और यह सैद्धान्तिक रूप से स्वीकार किया गया है कि जब तक मानव जाति के अपरिहार्य भाग (स्त्रीजाति) को पुरूष अपने साथ नहीं लेता तब तक पुरूष समग्र विकास, शांति व समृद्धि की कल्पना तक नहीं कर सकता और न ही समाज और राज्य का विकास हो सकता है।

इसी तरह स्वतन्त्र पत्रकारिता को कुचलने के प्रयास भी यहाँ लगातार होते रहते हैं। कभी पुलिस एवं कभी अपराधियों द्वारा उन्हें परेशान किया जाता है। कई पत्रकारों को तो इस क्रम में प्राणोत्सर्ग तक करना पड़ा। किसी भी

समाज में पत्रकारिता की आजादी पर खतरा अच्छी बात नहीं। यह लोकतंत्र के साथ–साथ मानवाधिकार का भी एक बड़ा मुद्दा है।

हमें अधिकार केवल नाममात्र के लिए मिले हैं। जब सच्चाई लिखने मात्र से पत्रकारों तक को अपने जीवन की आहुति देनी पड़ती है तब सामान्य से नागरिक जिन्हें अधिकारों की सही जानकारी भी नहीं उन्हें तो तरह–तरह की विवशता के कारण अमानवीय जीवन जीना ही पड़ता है। अतः हम कह सकते हैं कि मानवाधिकार वास्तव में वे अधिकार हैं, जो प्रत्येक मनुष्य को केवल इस आधार पर मिलने चाहिये क्योंकि वह मनुष्य है तथा ये वे अधिकार हैं जो हमारी प्रकृति में अन्तर्निहित हैं तथा जिनके बिना हम मनुष्य के रूप में जीवित नहीं रह सकते। मानव अधिकार तथा मौलिक स्वतन्त्रता हमें अपने मानवीय गुणों का विकास, आध्यात्मिक एवं अन्य आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायक होती है। मानवाधिकार आयोग का महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि वह मानवाधिकारों को बिना जाति भाषा, लिंग, धर्म आदि के भेदभाव के प्रोत्साहन प्रदान करे परन्तु बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्रों में इन्हें लागू कराने वाली संस्था का अभाव सा प्रतीत होता है।

प्रो० ओपेनहाइम के अनुसार– *''मानव अधिकारों को लागू करने के मामले में अभी बहुत प्रारम्भिक अवस्था है।''*[6] जबकि भूतकाल में जब कोई राष्ट्र अपने नागरिकों के साथ निर्दयता का व्यवहार करता था या उसके साथ अत्याचार

---

[6] प्रो० ओपेनहाइम– ''इन्टरनेशनल लॉ'' 1999 पृष्ठ–989

करता था अथवा उन्हें मौलिक अधिकार तथा स्वतन्त्रतायें नहीं देता था तो ऐसे राज्यों के मामले में दूसरे राज्य मनुष्यता के हित में हस्तक्षेप कर सकते थे पर आज घरेलू मामलों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता और राज्य इस प्रावधान का हवाला देते हैं, लेकिन आज घरेलू मामलों का क्षेत्र दिन प्रतिदिन घटता जा रहा है। जैसे–जैसे अन्तर्राष्ट्रीय विधि का विकास हो रहा है और मानवीय अधिकारों को बढ़ावा देने तथा भविष्य में मानव अधिकारों को प्रोत्साहित करने के लिए यह आवश्यक है कि इसके महत्व को स्वीकारा जाये एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली को और भी अधिक सुदृढ़ बनाया जाये। विश्व स्तर पर मानवीय नीति निर्धारित की जाये जिससे कोई भी राज्य हो या व्यक्ति मानवाधिकारों का सम्मान करें।

बुन्देलखण्ड जैसे पिछड़े क्षेत्रों में शिक्षा एवं रोजगार को बढ़ाया जाये लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जाग्रत किया जाये और अन्य सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया जाये। अधिकार वर्तमान सामाजिक जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है उसके बिना व्यक्ति न तो व्यक्तिगत विकास कर सकता है और न ही समाजोपयोगी रचनात्मक कार्य। सच तो यह है कि, आज के समय में अधिकारों के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आज किसी भी देश का सभ्य व सुसंस्कृत होना इस बात पर निर्भर नहीं करता कि वह कितना धनवान व शक्तिशाली है बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि वहाँ मानवाधिकारों का कितना सम्मान होता है।

अतः आवश्यकता है मानवाधिकार आयोग राज्य मानवाधिकार आयोग तथा उन सामाजिक संगठनों को जो समाज में मानवाधिकारों के लिए कार्य कर रहे हैं बढ़ावा देने की, मानवाधिकारों के प्रति जन आन्दोलन छेड़ने की तथा समाज में मानवीय मूल्यों का विकास करने की एवं अधिकारों का हनन करने वालों को कठोर से कठोर दंड दिलवाने की। जिससे समाज एवं व्यक्ति में मानवाधिकारों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो सके और वे अपने अधिकारों का उपभोग करते हुये, दूसरे के अधिकारों का सम्मान कर सके।
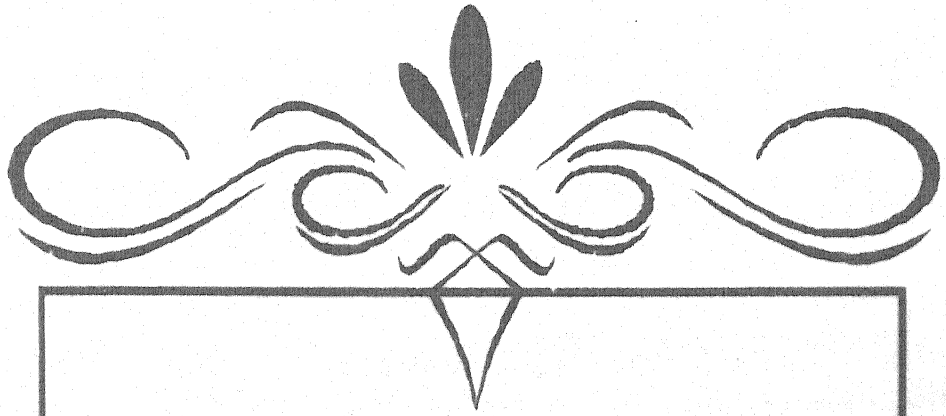
अध्याय- प्रथम

मानवाधिकारों का सैद्धान्तिक पक्ष
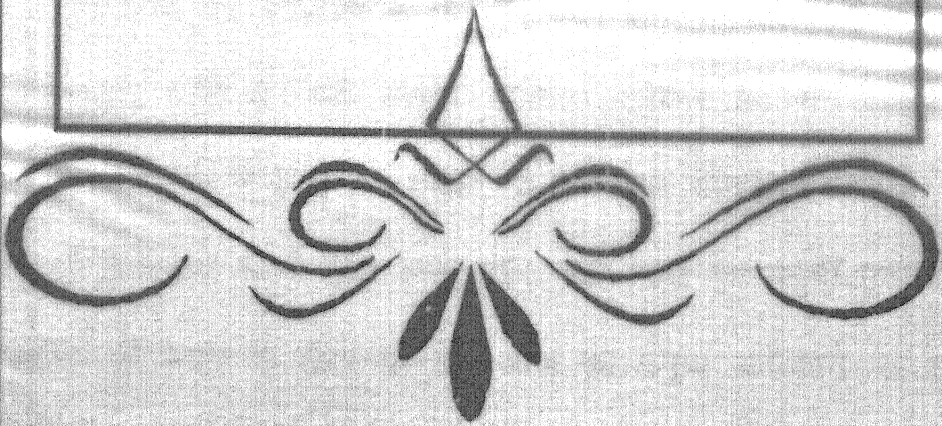
मानवाधिकारों का सैद्धान्तिक पक्ष

फ्रांसीसी विचारक तथा लेखक "जीन जैक्स" रूसों ने आज से 300 वर्ष पहले लिखा था, ***"मनुष्य स्वतन्त्र पैदा होता है पर हर जगह जंजीरों में जकड़ा हुआ है।"***[1] अपनी इस सूक्ति में रूसो ने शोषण तथा असमानता के बन्धनों में जकड़े हुये जनसाधारण को स्वतन्त्र होने एवं समानतापूर्ण जीवन जीने की आकांक्षा को व्यक्त किया था। वास्तव में अनेक सामाजिक विचारक तथा राजनीतिक आन्दोलन बहुत समय से मनुष्य को उन जंजीरों से मुक्त कराने का प्रयास करते रहे जिनमें वह जकड़ा रहा और उन्हें उन अधिकारों का उपभोग करते हुये देखने का प्रयत्न करते रहे जिससे सभ्यता तथा संस्कृति का विकास हो सके और मानव गरिमा के साथ जीवनयापन कर सके।

अतः हम कह सकते हैं कि मानव अधिकारों का जन्म पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ क्योंकि अधिकारों की बात जन्म लेने के बाद से ही शुरू हो जाती है। उदाहरण के तौर पर जन्म लेने के बाद शिशु को दूध की आवश्यकता होती है, यही उसका मौलिक अधिकार है। यह अधिकार हमें प्राकृतिक अवस्था से आज तक मिलते रहे हैं लेकिन सामाजिक विकास के साथ ही इन अधिकारों में भी वृद्धि होती गई। जहाँ पहले का मनुष्य मुख्यतः मानव कर्तव्यों की छाया में जीता था वही आज का मनुष्य अधिकारों की छाया मे जीता है। अधिकारों की यह फैलती हुई चेतना मानव स्वतन्त्रता का एक नया

[1] बी0 एल0 फडिया "पाश्चात्य राजनीतिक चिन्तक" 1992, पृष्ठ–117

और रोमांचक अध्याय है। किसी भी देश के सभ्य और सुसंस्कृत होने की कसौटी आज यह नहीं कि वह कितना अमीर या बलशाली है। कसौटी यह है कि वहाँ मानव अधिकारों का कितना सम्मान है। मानवाधिकारों की यह अवधारणा इतिहास की लम्बी अवधि में विकसित हुई। यह अवधारणा सत्ता के स्वेच्छाचरण को रोकने के उपकरण के रूप में विकसित हुई जो अनेक संघर्षों का परिणाम है।

अतः मानव अधिकारों की अवधारणा अति प्राचीन है। यह उतनी ही पुरानी है जितनी की मानव जाति समाज और राज्य। यह अवधारणा मानव सुख के साथ जुड़ी है और इसका सम्बन्ध राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों से है। इसी के साथ विश्व के सभी प्रमुख धर्मों का आधार मानवतावादी है जिसमें अन्तर्वस्तु में भेद होने के बावजूद मानव अधिकारों का समर्थन दिखता है। मानव अधिकारों की जड़ें प्राचीन विचार तथा प्राकृतिक विधि और "प्राकृतिक अधिकारों" की दार्शनिक अवधारणाओं में पायी जाती है। कुछ यूनानी तथा रोमन दार्शनिकों ने प्राकृतिक अधिकारों के विचार को मान्यता प्रदान की थी। प्लेटो (427–348 बी0 सी0) उन सर्व प्रथम लेखकों में से एक थे जिन्होंने नैतिक आचरण के सार्वभौमिक मानक की वकालत की थी। इसका अभिप्राय यह था कि विदेशियों से उसी प्रकार से व्यवहार किये जाने की अपेक्षा की जाती है जिस प्रकार से कोई राज्य अपने देशवासियों से से व्यवहार करते हैं। इसमें सभ्य ढंग से युद्धों के संचालन की भी शिक्षा होती है।

रिपब्लिक (400 बी0 सी0) ने सार्वभौमिक सत्यों के विचार का प्रस्ताव रखा जिसे सभी व्यक्तियों को मान्यता देने की बात कही गयी है और यह कहा गया है कि व्यक्तियों को सार्वजनिक कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। अरस्तू (384–322 बी0सी0) ने अपनी पुस्तक **राजनीति** में लिखा कि न्याय, सद्गुण तथा अधिकार भिन्न प्रकार के संविधानों तथा परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं। सिसरो (106–43 बी0सी0) जो एक रोमन राजनेता थे, उन्होंने अपनी कृति **"दि लॉज"** में प्राकृतिक विधि तथा मानव अधिकारों की नींव रखी। सिसरो का यह विश्वास था कि ऐसी सार्वभौमिक मानव अधिकार विधियाँ होनी चाहिए जो रूढ़िगत तथा सिविल विधियों से श्रेष्ठ हो। स्टोइक ने विधि की उच्चतर व्यवस्था को निर्दिष्ट करने के लिए प्राकृतिक विधि की ऐसी नैतिक अवधारणा का प्रयोग किया जो प्रकृति के समरूप थी तथा जो सभ्य समाज एवं सरकार की विधियों के मानक के रूप में प्रयोग की जानी थी।

यूनान के **सिटी–स्टेट** में नागरिकों को बोलने की स्वतन्त्रता, मताधिकार, लोकपद पर निर्वाचित होने का अधिकार, व्यापार करने का अधिकार तथा न्याय प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया गया। इसी प्रकार के अधिकार रोमन विधि के जस Jus सिविल द्वारा रोमवासियों को सुनिश्चित कराये गये। इस प्रकार मानव अधिकारों की अवधारणा की उत्पत्ति सामान्यतः ग्रीक–रोमन प्राकृतिक विधियों और स्टोयसिज्म के सिद्धान्तों में पायी जाती है, जिसमें यह माना गया है

कि एक सार्वभौमिक शक्ति सभी जीवों पर व्याप्त है और इसीलिए मानव आचरण प्राकृतिक विधि के अनुसार होना चाहिए।

इंग्लैण्ड के सम्राट जॉन द्वारा 15 जून 1215 को इंग्लिश सामन्तों को प्रदान किया गया **मैग्नाकार्टा** तृतीय धर्मयुद्ध द्वारा सृजित भारी कराधान के भार तथा सम्राट हेनरी षष्ठम् द्वारा बन्दी बनाये गये रिचर्ड प्रथम की फिरौती के उत्तर में था। इंग्लिश सामन्तों ने भारी करों का विरोध किया था तथा वे अपने अधिकार बिना किसी रियायत के सम्राट जॉन को पुनः शासन चलाने देने के इच्छुक नही थे। मैग्नाकार्टा का अतिसाधनकारी (Overreaching) विषय सम्राट के निरंकुश कृत्य के विरूद्ध संरक्षण प्रदान करना था। इस प्रकार चार्टर में यह सिद्धान्त पेश किया गया कि सम्राट की शक्ति अत्यांतिक नहीं होती है। यद्यपि चार्टर विशेषाधिकार प्राप्त उच्च वर्गीय लोगों के लिए लागू होता था, शनैः–शनैः इस अवधारणा का विस्तार हुआ तथा वर्ष 1689 में बिल आफ राइट्स में समस्त इंग्लिश व्यक्तियों को सम्मिलित किया गया और अन्ततः सभी नागरिक इसकी परिधि में आ गये।

जॉन पुत्र हेनरी तृतीय (1216–17) के शासनकाल के दौरान, मैग्नाकार्टा की संसद द्वारा पुष्टि की गई, और वर्ष 1297 में एडवर्ड, प्रथम ने इसकी उपान्तरित रूप में पुष्टि की। वर्ष 1628 में पेटिशन ऑफ राईट्स द्वारा तथा वर्ष 1689 में बिल ऑफ राइट्स में इसे और अधिक सुदृढ़ किया गया। इसी तरह अनेक संधियाँ कुचुक और केनारजी की संधि, 1774 कांग्रेस ऑफ

वियना नामक संधि और 1776 में 13वें संयुक्त राज्य अमेरिका के स्वतन्त्रता की घोषणा, वर्जिनिया बिल ऑफ राइट्स 1776, संयुक्त राज्य के 1787 के संविधान में तथा उसके पश्चात् 1789, 1865, 1869 और 1919 के संशोधनों में पुरूषों के अधिकारों को शामिल किया गया। पुरूषों तथा नागरिकों के अधिकारों की 1789 में फ्रांसीसी घोषणा ने अन्य यूरोपीय देशों को मानव अधिकार के संरक्षण के लिए उनकी विधियों से प्रावधान शामिल करने के लिए उत्प्रेरित किया। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अधिकतर राज्यों द्वारा यह मान्यता दी गई कि मानव कतिपय अधिकार धारण करते हैं। अतः मानव व्यक्तित्व के विकास तथा उसके संरक्षण के लिए अधिकारों की आवश्यकता कई विकसित राज्यों द्वारा महसूस की जाने लगी और मानवों को अधिकार प्रदान किये जाने लगे। 1809 में स्वीडन, 1812 में स्पेन, 1814 में नार्वे, 1813 में बेल्जियम, 1849 में डेनमार्क, 1850 में प्रसा और 1874 में स्विटजरलैण्ड में पुरूषों के मूल अधिकारों के लिए प्रावधान बनाये गये। 1815 वियना संधि, 1815 पेरिस की संधि, 1815 जेनेवा अभिसमय, 1864 बर्लिन की संधि, 1878 पेरिस की संधि, 1898 हेंग अभिसमय, 1899, 1907 आदि जिनमें मानवाधिकारों को ही मान्यता और संरक्षण प्रदान किये गये।

अतः मानवाधिकारों की परिकल्पना लम्बे इतिहास का परिणाम है। एवं मानवाधिकार की प्रकृति और अर्थ की व्याख्या से सम्बन्धित दो दृष्टिकोण है।

1. दार्शनिक या सैद्धान्तिक दृष्टिकोण :

(क) प्राकृतिक अधिकार सिद्धान्त मानव के अधिकारों की संकल्पना घनिष्ठ रूप से परम्परागत प्राकृतिक विधि के सिद्धान्तों से सम्बद्ध है। *"17वीं सदी की वैज्ञानिक और बौद्धिक उपलब्धियों, थामस हाब्स के भौतिकवाद, रेने डिस्कार्टस के वृद्धिवाद एवं फ्रांसीसी बैक और जॉन लॉक के अनुभववाद तथा स्पिनोजा के विचारों आदि ने प्राकृतिक विधि और विश्वव्यापी व्यवस्था में अधिकारों की आस्था को प्रोत्साहन दिया।"*[2] इस सम्बन्ध में 17वीं सदी के दार्शनिक जॉन लॉक के विचार भी काफी महत्वपूर्ण माने जाते हैं एवं 18वीं सदी के दार्शनिक माण्टस्क्यू वाल्टेयर, रूसो के विचार भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं और 1688 की क्रान्ति से सम्बद्ध अपने विचारों में लॉक ने सिद्ध कर दिया कि अधिकार व्यक्ति को मानव मात्र होने के नाते प्राप्त हैं और प्राकृतिक स्थिति में भी वह विद्यमान थे, जिनमें से प्रमुख हैं– जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार और सम्पत्ति का अधिकार। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रकृति या ईश्वर ने व्यक्ति को जन्म से प्रभुता सम्पन्न बनाया है। अतः जहाँ प्रकृति का सम्बन्ध है, व्यक्ति पर कोई बन्धन नहीं और वह पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। परन्तु स्वतन्त्रता का उपभोग मानव तभी कर सकता है जबकि उसे सुरक्षा प्राप्त हो तथा दूसरों का सहयोग प्राप्त हो। इसलिए प्रकृति द्वारा

---

[2] डा0 जय–जयराम उपाध्याय "मानव अधिकार" 1999, पृष्ठ–79

दिये अधिकारों का पूर्ण लाभ उठाने के लिए, आस–पास के लोगों का सहयोग प्राप्त करने के लिए तथा सुरक्षा उत्पन्न करने के लिए इन प्रभुत्तासम्पन्न व्यक्तियों ने सामाजिक समझौता किया। अपने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धान्त को संरक्षण प्रदान किया और इस प्रकार प्रारम्भ में मानव के अधिकार प्राकृतिक अधिकार के रूप में प्रकट हुये।

एलेन पैजैल्स के अनुसार, मानव अधिकार यह विचार है कि *"व्यक्ति के पास अधिकार समाज पर या समाज के विरूद्ध दावे हैं यह कि समाज इन अधिकारों को अवश्य मान्यता प्रदान करे जिस पर वह कार्य करने के लिए वाध्य है मानव के अन्तरस्थ हैं।"*[3]

(ख) विधिक अधिकार सिद्धान्त के समर्थक अधिकारों को राज्य की रचना मानते हैं।

(ग) ऐतिहासिक सिद्धान्त के अनुसार अधिकार ऐतिहासिक प्रक्रिया की वह रचना है जो चिरकालीन रूढ़ि समयानुक्रम में अधिकार का रूप धारण कर लेती है।

(घ) सामाजिक कल्याण सिद्धान्त के अनुसार विधि, रूढ़ि, प्राकृतिक अधिकार सभी सामाजिक समीचीनता पर निर्भर होते हैं। जैसे–वाक स्वतन्त्रता का अधिकार आत्यंतिक (Absolute) नहीं है बल्कि सामाजिक समीचीनता के अनुसार विनियमित है।

---

[3] एलेन पेजेल्स, "दि रूट्स एण्ड ओरिजिन्स ऑफ ह्यूमन राइट्स" ह्यूमन डिग्निटी दि इण्टरनेशनल ऑफ ह्यूमन राइट्स एलिन्स एच0 हैबिन द्वारा सम्पादित, 1979, पृष्ठ–2

अतः सामाजिक कल्याण सिद्धान्त ने काफी संख्या में मानव अधिकारों का विकास किया "भारी भरकम संख्या में आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा और तदन्तर आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा में अन्तर्निहित किया गया है।"[4] इस सिद्धान्त को अधिकार का व्यक्तित्व सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त में आन्तरिक विकास एवं पूर्ण अन्तः शक्ति पर विशेष जोर दिया जाता है। यह व्यक्तित्व अधिकार को सर्वोच्च और आत्यांतिक मानता है। जैसे कि प्राण का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार या सम्पत्ति का अधिकार इस एक मूल अधिकार से उत्पन्न होते है, जिसे व्यक्तित्व अधिकार कहा है। जैसे– मुझे प्राण का अधिकार उसी सीमा तक है जहा तक वह मेरी पूर्ण अन्तः शक्ति के विकास के लिए आवश्यक है। इस दृष्टि से समाज मुझे अपना जीवन समाप्त करने की अनुमति नहीं दे सकता है।

2. उपयोगितावादी दृष्टिकोण :

यह सिद्धान्त मानव अधिकारों की परिभाषा पर जोर देने के बजाय उसकी एक समस्त सूची पर जोर देता है। उदाहरण के लिए भारतीय संविधान के भाग 3 में मूल अधिकारों की परिभाषा नहीं दी गयी बल्कि एक सूची दी गई और इस सूची से यह अर्थ निकाल लिया जाता है कि राज्य उनके विषय में दिये गये मार्ग दर्शन को मानने के लिए बाध्य है।

---

4 डा0 जय जयराम उपाध्याय "मानव अधिकार" 2002 पृष्ठ–13

इसी प्रकार संयुक्त राष्ट चार्टर में निर्दिष्ट मानव अधिकार ओर मूल स्वतंत्रता का अर्थ मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा, सिविल और राजनैतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा में दी गई मानव अधिकारों की सूची से निकालना चाहिए।

थामस वर्जेन्थाल का मत है कि *''यह सूची हमारा न्यूनतम परिभाषात्मक मार्गदर्शक होना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं से क्या समझता है।''*[5] अतः मानव अधिकारों से सम्बन्धित सभी सिद्धान्तों की अपनी परिसीमायें हैं एवं अपनी उपयोगिता है। कोई भी सिद्धान्त अपने में पूर्ण नहीं। इन सिद्धान्तों के साथ–साथ राजनैतिक क्रान्तियों का भी मानवाधिकारों के विकास के क्रम में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। यही कारण है कि सदियों से मानव जाति की आस्था मानव अधिकारों के बारे में बनी हुई है और मानवाधिकारों की अवधारणा घोर से घोर संघर्ष का परिणाम है।

अमेरिकी क्रांति का काल 1763 से 1788 तक माना जाता है। *''यह काल स्वतन्त्रता की घोषणा वर्जीनिया विल आफ राईट्स पेनसिलवेनिया के संविधान का साक्षी कहा जाता है।''*[6] इस काल में उपनिवेशों ने अपने दावों की पुष्टि प्राकृतिक विधि एवं प्राकृतिक अधिकारों से की उन्होंने अपने विद्रोह को न्यायोचित ठहराने के लिए लॉक के सामाजिक समझौते का सहारा लिया।

---

[5] थामस बर्जेन्थाल– ''कोडिफिकेशन्स एण्ड इम्पलिमेण्टेशन इण्टरनेशनल ह्यूमन राइट्स'' एलिस एच0 हैनकिन द्वारा सम्पादित, ओसेना पविल 1999 पृष्ठ–16

[6] वार्कर– ''एस्सेज आन गवर्नमेण्ट'' पृष्ठ–123

1620 में फ्लावर समझौता उनके ऊपर अति प्रभावी रहा। यह समझौता मूलभूत रूप से राजा और प्रजा के बीच उनके प्राकृतिक अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया। अमेरिकी क्रांतिकारी राजनैतिक सिद्धान्तवादियों से प्रभावित हुये एवं उन्होंने 12 जून 1976 को वर्जीनिया बिल आफ राइट्स को अंगीकार किया। इस बिल में यह घोषणा की गई कि प्राकृतिक रूप से सभी व्यक्ति मुक्त और स्वतन्त्र हैं। वे कतिपय अन्तर्निहित अधिकार रखते है जैसे जीवन और स्वतन्त्रता के उपयोग का अधिकार, सम्पत्ति अर्जित और धारित करने का अधिकार और सुख प्राप्त करने का अधिकार।

आगे 4 जुलाई 1976 को अमेरिका के 13 राज्यों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा की। इस घोषणा में कहा गया कि *"हम मानते हैं कि यह स्व–स्पष्ट है कि सभी व्यक्ति समान पैदा होते हैं उनका सृजनकर्ता उन्हें कतिपय अन्य संक्राम्य अधिकार प्रदान करता है और जो उन अधिकारों के अन्तर्गत आते हैं। जीवन का अधिकार, स्वतन्त्रता का अधिकार, सुख प्राप्ति का अधिकार और इन अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए सरकार की स्थापना की गई जो अपनी न्यायोचित शक्ति, सासित की सम्मति से प्राप्त करती है, यह कि जब कोई सरकार इन लक्ष्यों की विध्वंसक हो जाती है तो लोगों को यह अधिकार है कि वे उसमें परिवर्तन कर दें या उसे समाप्त कर दें और उसकी जगह नई सरकार की स्थापना कर दें।"*[7]

---

[7] इवान लुसाई– "इण्टरनेशनल प्रोटेक्शन ऑफ ह्यूमन राइट्स में" ओरिजनल ऑफ इण्टरनेशनल कनसर्न ओवर ह्यूमन राइट्स, पृष्ठ–8

अमेरिकी संविधान भी मानवाधिकार के प्रभाव में संशोधित किया गया। 15 दिसम्बर 1719 को अमेरिकी संविधान के प्रथम दस संशोधन सम्पन्न किये गये जिन्हें बिल आफ राइटस के नाम से जाना जाता है और जो अमेरिकी संविधान के भाग बन गये। इसके माध्यम से विभिन्न प्रकार के मूल अधिकारों की घोषणा की गई जिनमें प्रमुख हैं— धार्मिक स्वतन्त्रता, वाक स्वतन्त्रता, प्रेस की स्वतन्त्रता, शिकायतों को दूर करने के लिए सरकार के पास याचिका प्रस्तुत करने की स्वतन्त्रता आदि। दूसरी ओर फ्रांस के लोग भी सम्राट की तानाशाही से त्रस्त थे जिसके कारण प्रत्यक्ष संघर्ष की स्थिति आ गई। अगस्त 27, 1789 को लोगों ने एक राष्ट्रीय सभा का गठन कर लिया। वे यह मान गये कि अज्ञानता, उपेक्षा, या मानवाधिकार के प्रति अवमानना सरकारी भ्रष्टाचार और लोक दुर्भाग्य का कारण था और सम्राट की तानाशाही को जनता की सामूहिक शक्ति द्वारा मानवाधिकारों का दावा करके चुनौती दी गई। फ्रांसीसी क्रांति के नारे थे— स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुत्व, क्रांति के फलस्वरूप अधिकारों की घोषणा मानवाधिकारों की साक्षी है जिन्हें मनुष्य का अधिकार कहा जाता है।

फ्रांसीसी क्रांति ने घोषित किया कि *"मनुष्य स्वतन्त्रत पैदा होता है और स्वतन्त्र एवं समान अधिकारों के साथ रहता है।"*[8] सभी सिविल संघों का उद्देश्य होता है, मनुष्य के प्राकृतिक और अहस्तान्तरणीय अधिकारों का परीक्षण *"ये अधिकार है*

[8] घोषणा का अनुच्छेद (1)

स्वतन्त्रता, सम्पत्ति और उत्पीड़न का प्रतिरोध"[9] एवं *"वैयक्तित्व स्वतन्त्रता और विचारों की स्वतन्त्रता का व्यापक विवेचन किया गया।"*[10]

मानव एवं नागरिक अधिकारों की फ्रांसीसी घोषणा संवैधानिक सरकार और विधि शासन के सिद्धान्तों का परिणाम है। इसका प्रेरणा स्रोत उदारवाद था जैसा कि इग्लैण्ड में लॉक था। अमरीकी और फ्रांसीसी क्रांति के पूर्व मानवाधिकार सभी व्यवहारिक प्रयोजन के लिए एक दार्शनिक अपील के रूप में था लेकिन *"अमेरिकी बिल ऑफ राइट्स और फ्रांसीसी मानवाधिकार की घोषणा के पश्चात यह वास्तविक महत्व का विषय बन गया।"*[11] इस घोषणा के पश्चात यूरोप, पूर्वी यूरोप, सोवियत युनियन, एशिया और दुनिया के अन्य भागों के अंगीकार किये संविधानों ने मानवाधिकार सम्बन्धी उपबन्ध किये। परन्तु यह उपबन्ध चिरस्थायी न रह सके।

क्योंकि प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान व्यापक पैमाने पर मानवाधिकार का हनन हुआ जिससे अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में मानवाधिकारों के विषय में चेतना जाग्रत हुई और यह बात विचार में आई कि मानवाधिकारों की स्थाई और संस्थागत व्यवस्था की जानी चाहिए। और राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा तैयार की गई लेकिन इसमें मानव अधिकार के विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं किया गया। अल्पसंख्यकों के अधिकार के बारे में साक्ष्य पाये जाते हैं परन्तु इन अधिकारों को

---

[9] वही (2)

[10] वही 6, 7, 10, 11, और 17

[11] इजेजिओफर– वही पृष्ठ–10

किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं माना जा सकता क्योंकि यह सामूहिक अधिकार है जो समुदाय विशेष या उसके एक अंश को प्राप्त है।

यह सारी प्रक्रिया एक अन्तर्राष्ट्रीय सहमति के अभाव में निरर्थक साबित हुई और वर्तमान मानवाधिकार गतिविधि द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकर त्रासदी का परिणाम है– इसकी भूमिका का प्रारम्भ 1941 में संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति फ्रेंकलिन रूजबेल्ट के भाषण से हो गया था। 6 जनवरी 1941 को दिये गये भाषण में रूजबेल्ट ने मनुष्य की मूलभूत चार स्वतन्त्रताओं का उल्लेख किया था। 14 अगस्त 1941 को कुछ देशों द्वारा अंगीकृत अटलांटिक चार्टर में भी मनुष्य की स्वतन्त्रताओं की हिमायत की गई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् न्यूरेमवर्ग ट्रायल में भी मानवाधिकारों की बात की गई। 1945 में संयुक्त राष्ट्र संघ के गठन के प्रारूप पर चर्चा करने के लिए संस्थापक देशों के सेन फ्रांसिस्को सम्मेलन में भी मानवाधिकारों पर विस्तृत चर्चा की गई। 24 अगस्त 1945 को संयुक्त सम्मेलन में हुई चर्चा को कार्य रूप में परिणित करने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्रसंघ की आर्थिक एवं सामाजिक परिषद ने संयुक्त राष्ट्र संघ चार्टर के अनु0 68 के द्वारा प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते हुये 1946 में एलीनर रूजबेल्ट की अध्यक्षता में मानवाधिकार आयोग का गठन किया। एवं आयोग द्वारा मानवाधिकारों की घोषणा की गई जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 10 दिसम्बर 1948 को स्वीकार किया और 1950

ों महासभा ने 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस घोषित करने का प्रस्ताव पारित किया।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के बाद इन्हें ठोस रूप से कार्यान्वित करने के लिए 1947 पृथक प्रसंविदा तैयार करने का निर्णय किया गया। 1954 तक दो प्रसंविदायें नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा तथा आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा तैयार कर ली गई और 12 वर्षो तक इस प्रसंविदा के पर्याप्त अध्ययन एवं संशोधनों के बाद 16 दिसम्बर 1966 को संयुक्त राष्ट्र महासभा ने इसे अंगीकार कर लिया।

दोनों प्रसंविदाओं पर कम से कम 35 देशों के हस्ताक्षर आवश्यक थे। यह कार्य 1976 में पूरा हो सका। नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा 3 जनवरी 1976 से तथा आर्थिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक प्रसंविदा 23 मार्च 1976 को लागू हो गई। संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा जातीय भेदभाव एवं अन्य प्रकार की यातनाओं से मनुष्य की रक्षा के लिए 43 सदस्यीय मानवाधिकार आयोग तथा अल्पसंख्यकों के हितों के लिए 26 सदस्यीय एक उप आयोग का गठन किया गया। इसके साथ ही अन्य घोषणाओं के द्वारा लगातार मानवाधिकारों का क्षेत्र विस्तृत किया जा रहा है।

मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा की उद्देशिका में यह कहा गया है कि घोषणा में वर्णित मानव अधिकार सभी व्यक्तियों और सभी राष्ट्रों के लिए एक सामान्य मानक के रूप में उद्घोषित हैं। इन अधिकारों को प्राप्त करवाने में

प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग निरन्तर ध्यान में रखे तथा इनके प्रति सम्मान जाग्रत करें। इन अधिकारों के पालन करने के लिए वे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपायों को मान्यता देंगे, जिससे राज्यों की अधिकारिता के अधीन आने वाले राज्य के व्यक्तियों को यह अधिकार प्राप्त हो सके। केल्सन ने उचित ही कहा है– *"घोषणा सभी व्यक्तियों और सभी राष्ट्रों के लिए सामान्य मानक के रूप में है और उद्घोषणा इस उद्देश्य से की गई है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग इसके लिए प्रयास करेगा।"*[12] इस प्रकार महासभा प्रत्येक व्यक्ति और समाज के प्रत्येक अंग से घोषणा में अधिकथित मानव अधिकारों के सम्बन्ध में कुछ करने के लिए सिफारिश करती है।

सार्वभौमिक घोषणा में मानव अधिकारों के मूल आधार तत्वों और सिद्धान्तों का उल्लेख विस्तृत रूप से किया गया। इन सिद्धान्तों में इस विचार को शामिल किया गया कि मानव परिवार के सभी सदस्यों की जन्मजात गरिमा तथा समान एवं अहरणीय अधिकारों की मान्यता विश्व में स्वतन्त्रता, न्याय और शान्ति का आधार है। इसी कारण घोषणा में न केवल सिविल तथा राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में प्रावधान किया गया बल्कि सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों के सम्बन्ध में भी प्रावधान किया गया। यद्यपि मानव अधिकारों की परिगणना अन्तर्राष्ट्रीय विधि में पहली बार की गई थी। यह परिगणना लाटरपैट की 1945 में प्रकाशित पुस्तक *"An International Bill of Rights of Man"* में की गई। सार्वभौमिक घोषणा में सिविल और राजनैतिक अधिकारों के साथ ही साथ

---

[12] केल्सन– "दि ला ऑफ यूनाइटेड नेशन्स" पृष्ठ–39

आर्थिक व सामाजिक अधिकारों को भी प्रावधानित किया गया है। वास्तव में यह घोषणा एक स्वतन्त्र लोकतन्त्रीय और कल्याणकारी राज्य के लिए उपयुक्त है और मानव अधिकारों की सर्वोत्तम योजना प्रस्तुत करती है। इस घोषणा में एक विस्तृत प्रस्तावना के अलावा 30 अनुच्छेद है।

प्रस्तावना में कहा गया है कि सब मनुष्यों की स्वाभाविक गरिमा और समानता तथा अहरणीय अधिकारों की मान्यता ही विश्व की स्वतन्त्रता न्याय और शान्ति की आधारशिला है। मानव अधिकारों की अवहेलना और अवमानना, का परिणाम ऐसे बर्बरतापूर्ण कार्यों के रूप में सामने आया है जिन्होंने मानव जाति, की अंतरात्मा को झकझोर दिया है। सर्व साधारण की सबसे बड़ी आकांक्षा ऐसे विश्व का निर्माण करना है जिसमें मानव मात्र की अभिव्यक्ति और आस्था की स्वतन्त्रता के साथ–साथ भय और अभाव से भी स्वतन्त्रता प्राप्त हो। यदि मनुष्य को अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध अन्तिम उपाय के रूप में विद्रोह के लिए विवश नहीं करना है तो यह आवश्यक है कि विधि के शासन के द्वारा मानव अधिकारों की रक्षा की जाये।

संयुक्त राष्ट्र संघ ने यह भी विचार प्रस्तुत किया है कि समस्त स्त्री पुरूषों को समान अधिकार प्रदान करके सामाजिक प्रगति रहन सहन के उपयुक्त स्तर और व्यापक स्वतन्त्रता की व्यवस्था की जाये। अतः संयुक्त राष्ट्रसंघ की 10 दिसम्बर 1948 की घोषणा में 30 अनुच्छेद हैं इसके अन्तर्गत

मनुष्य के नागरिक और राजनीतिक अधिकारों तथा कानूनी संरक्षण को विशेष महत्व दिया गया है और उसकी विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

''मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा''

प्रस्तावना :

-- ''चूंकि मानव परिवार के सभी सदस्यों के जन्मजात गौरव और समान तथा अविच्छिन अधिकारों की स्वीकृति ही विश्व शांति न्याय और स्वतन्त्रता की बुनियाद है।

-- चूंकि एक ऐसी विश्व व्यवस्था की उस स्थापना को (जिसमें लोगों को भाषण और धर्म की आजादी तथा भय और अभाव से मुक्ति मिलेगी) सर्वसाधारण के लिए सर्वोच्च आकांक्षा घोषित किया गया।

— चूंकि अगर अन्याययुक्त शासन और जुल्म के विरूद्ध लोगों को विद्रोह करने के लिए– उसे ही अन्तिम उपाय समझकर– मजबूर नहीं हो जाना है तो कानून द्वारा नियम बनाकर मानव अधिकारों की रक्षा करना अनिवार्य है।

— चूंकि राष्ट्रों के बीच मैत्री पूर्ण सम्बन्धों को बढ़ाना जरूरी है, चूंकि संयुक्त राष्ट्र के सदस्य राष्ट्रों नागरिकों ने बुनियादी मानव अधिकारों में मानव व्यक्तित्व के गौरव और योग्यता में और नर–नारियों के समान अधिकारो में अपने विश्वास को अधिकार पत्र में दोहराया है और यह निश्चय किया

है कि अधिक व्यापक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत सामाजिक प्रगति एवं जीवन के बेहतर स्तर को ऊँचा किया जाये।

– चूंकि सदस्य देशों ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे संयुक्त राष्ट्र के सहयोग से मानव अधिकारों और बुनियादी आजादियों के प्रति सार्वभौम सम्मान की वृद्धि करेंगे।

– चूंकि इस प्रतिज्ञा को पूरी तरह से निभाने के लिए इन अधिकारों और आजादियों का स्वरूप ठीक–ठाक समझना सबसे अधिक जरूरी है।"[13]

इसलिए अब, महासभा घोषित करती है–"मानव अधिकारों की यह सार्वभौम घोषणा सभी देशों और सभी लोगों को समान सफलता है इसका उद्देश्य यह है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक भाग इस घोषणा को लगातार दृष्टि में रखते हयु अध्यापन और शिक्षा के द्वारा यह प्रयत्न करेगा कि इन अधिकारों और आजादियों के प्रति सम्मान की भावना जाग्रत हो, और उत्तरोत्तर ऐसे राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय उपाय किये जाएं जिनसे सदस्य देशों की जनता तथा उनके द्वारा अधिकृत प्रदेशों की जनता इन अधिकारों की सार्वभौम और प्रभावोत्पाद स्वीकृति दे और उनका पालन करे।

अनुच्छेद 1 और 2 के अन्तर्गत मानव को विवेकशील प्राणी मानते हुये उनकी गरिमा, स्वतन्त्रता समानता और मातृभावना पर बल दिया गया है एवं जाति वर्ण लिंग, धर्म, भाषा, राजनीतिक विचारधारा, राष्ट्रीय या सामाजिक

---

[13] श्री शंकर सेन– "मानवाधिकार और पुलिस बल" पृष्ठ–2

उद्गम्, सम्पत्ति जन्म या किया अन्य स्थिति के आधार पर भेदभाव को निषेध किया गया है।

अनुच्छेद 3, 4, और 5 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति के लिए जीवन स्वतन्त्रता और सुरक्षा के अधिकार के साथ–साथ यह भी व्यवस्था की गई है कि किसी को गुलाम या बेगार के रूप में नहीं रखा जायेगा एवं किसी के साथ क्रूर अमानवीय या अपमान जनक व्यवहार भी नहीं किया जायेगा, और न ही अमानवीय दण्ड दिया जायेगा। जैसे किसी व्यक्ति को सजा के रूप में मृत्युदण्ड तो दिया जा सकता है लेकिन उसे तेल के उबलते कड़ाहे में डालकर दण्ड देना अमानवीय कृत्य है।

अनुच्छेद 6 में प्रत्येक व्यक्ति को कानून के समक्ष हर कहीं व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार है तथा अनुच्छेद 7 में सभी व्यक्तियों को कानून के समक्ष समान माना गया है और भेदभाव के खिलाफ समान संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद 8 से 11 तक कानूनी उपचार को अधिकार बन्दी प्रत्यक्षीकरण तथा निर्वासन से स्वतन्त्रता और कोई अभियोग लगाये जाने पर उचित कानूनी प्रक्रिया के अनुसरण की व्यवस्था की गई है।

अनुच्छेद 12 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को गोपनीयता की सुरक्षा का अधिकार एवं किसी व्यक्ति के घर, परिवार, पत्राचार इत्यादि में हस्तक्षेप का निषेध किया है।

अनुच्छेद 13 और 14 में कहीं भी रहने घूमने, फिरने एवं अपने देश में रहने, देश को छोड़ने और उत्पीड़न से बचने के लिए दूसरे देशों में शरण प्राप्त करने का भी अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 15 में राष्ट्रीयता का अधिकार दिया गया है तथा मनमाने तरीके से किसी को राष्ट्रीयता से वंचित नहीं किया जा सकता और न ही राष्ट्रीयता बदलने को मजबूर किया जा सकता है।

अनुच्छेद 16 में परस्पर सहमति से विवाह करने, परिवार बढ़ाने का अधिकार तथा अनुच्छेद 17 में निजी सम्पत्ति रखने, तथा सम्पत्ति की सुरक्षा का अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 18, 19 और 20 के अन्तर्गत विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता तथा शान्तिपूर्ण सभा करने और संघ बनाने की स्वतन्त्रता सम्मिलित है। अनुच्छेद 21 में अपना प्रतिनिधि चुनने और उसके माध्यम से देश के शासन में भाग लेने और सार्वजनिक पद प्राप्त करने का अधिकार रखा गया है।

इसी के अन्तर्गत जनता की इच्छा को सरकार की सत्ता का आधार मानते हुये सार्वजनिक मताधिकार की व्यवस्था की गई है। अतः यह अनुच्छेद लोकतन्त्रीय शासन प्रणाली को मानव अधिकार का आवश्यक लक्षण स्वीकार करता है।

इस तरह अनुच्छेद 1 से 21 तक की व्यवस्थायें विश्व के सभी मनुष्यों को उपयुक्त नागरिक, राजनीतिक, और कानूनी अधिकार प्रदान करने का संकल्प व्यक्त करती है जो मुख्यतः नकारात्मक अधिकार है अर्थात ये सरकार को व्यक्ति की गतिविधियों में हस्तक्षेप करने से रोकते हैं।

दूसरी ओर अनुच्छेद 22 के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक सुरक्षा का अधिकार तथा राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयासों के द्वारा अपने व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास का अधिकार एवं अनुच्छेद 23, 24 में रोजगार का अधिकार तथा बेरोजगारी के खिलाफ संरक्षण का अधिकार समान कार्य के लिए समान वेतन, कार्य के अनुकूल पारिश्रमिक पाने और श्रमिक संगठन बनाने, कार्य के घण्टों का निर्धारण का अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 25, 26 उपर्युक्त जीवन स्तर का अधिकार माताओं और शिशुओं के विशेष देखरेख का एवं कम से कम प्रारंभिक शिक्षा निःशुल्क प्राप्त करने का एवं योग्यता के अनुसार उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

अनुच्छेद 27 में सब मनुष्यों को सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने और साहित्य कला और विज्ञान की साधना करने की स्वतन्त्रता तथा उनसे लाभ उठाने का अधिकार दिया गया है। अनुच्छेद 28 का उद्देश्य इन अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर उपलब्ध कराने एवं अधिकारों के प्रयोग से है।

अनुच्छेद 29 एवं 30 में समुदाय के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों पर बल दिया गया है क्योंकि वही उसके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र और सम्पूर्ण विकास सम्भव है। इसके अन्तर्गत यह भी कहा गया है कि लोकतान्त्रिक समाज में व्यक्तियों को समान अधिकार और स्वतन्त्रतायें प्राप्त करने के उद्देश्य से और नैतिकता सार्वजनिक व्यवस्था एवं सामान्य हित की शर्तें पूरी करने के लिए व्यक्ति के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं पर उचित प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं, क्योंकि किसी व्यक्ति या समूह को ऐसी गतिविधियों के लिए स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती जो अन्य व्यक्तियों के लिए समान अधिकारों और स्वतन्त्रताओं को नष्ट कर सकती है। यह व्यवस्था मानव अधिकारों की सामान्य योजना का ही तर्क संगत परिणाम है। वास्तव में यह अधिकार सबको मिल जाये तो विश्वशान्ति की स्थापना सरल हो जाये। लेकिन ऐसा है नहीं क्योंकि इस अर्थ प्रधान युग में जितना मानवाधिकारों के संरक्षण पर ध्यान दिया जा रहा है उतना ही अधिक इनका उल्लघंन विश्व भर में हो रहा है।

जबकि मानवाधिकार की सार्वभौम घोषणा के उपरांत लगातार अनेक प्रसंविदाओं घोषणाओं के माध्यम से इन्हें बढ़ाने एवं संरक्षित करने के प्रयास किये जा रहे हैं। अतः महासभा ने 16 दिसम्बर 1966 को दो प्रसंविदाओं को अंगीकार किया। सिविल तथा राजनैतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों पर अन्तर्राष्ट्रीय प्रसंविदा और यह क्रमशः 3 जनवरी 1976 तथा 23 मार्च 1976 को लागू हुआ।

वर्तमान समय में सिविल और राजनीतिक प्रसंविदा के 148 पक्षकार है इस प्रसंविदा में 53 अनु0 है और इसे 6 भागों में विभाजित किया गया है जो निम्नलिखित है–

1. ''प्राण, स्वतन्त्रता और दैहिक सुरक्षा का अधिकार (अनु0 3)।
2. दासता तथा अधिसेविता (Servitudes) से स्वतन्त्रता (अनु0 4)।
3. क्रूर या अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार या दण्ड के विरूद्ध प्रतिषेध का अधिकार (अनु0 5)।
4. विधि के समक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार (अनु0 6)।
5. बिना भेदभाव के विधि के समक्ष समानता और विधि के समान संरक्षण का अधिकार (अनु0 7)।
6. राष्ट्रीय अधिकरणों के समक्ष प्रभावी उपचार का अधिकार (अनु0 8)।
7. मनमाने ढंग से गिरफ्तारी, निरूद्ध या निर्वासन से स्वतन्त्रता (अनु0 9)।
8. स्वतन्त्र और निष्पक्ष अधिकरण द्वारा निष्पक्ष, ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का अधिकार (अनु0 10)।
9. निर्दोष माने जाने का अधिकार, जब तक दोषी न प्रमाणित कर दिया जाये (अनु0 11 परिच्छेद)।
10. विधि के भूतलक्षी प्रभाव से स्वतन्त्रता (अनु0 11 परिच्छेद 2)।

11. परिवार, घर और पत्र व्यवहार का अधिकार (अनु0 12)।

12. राज्य सीमाओं के भीतर संचरण और निवास की स्वतन्त्रता का अधिकार (अनु0 13 परिच्छेद 1)।

13. अपने देश की या किसी भी देश को छोड़ने और अपने देश में वापस आने का अधिकार (अनु0 13 परिच्छेद 2)।

14. यातना के कारण अन्य देशों में आश्रय मांगने और आश्रय के उपभोग करने का अधिकार (अनु0 14 परिच्छेद 1)।

15. राष्ट्रीयता का अधिकार (अनु0 15)।

16. विवाह करने एवं कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार (अनु0 16)।

17. सम्पत्ति के स्वामित्व का अधिकार (अनु0 17)।

18. विचार अन्तःकरण और धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार (अनु0 18)।

19. अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का अधिकार (अनु0 19)।

20. शांतिपूर्ण सम्मेलन और संगठन की स्वतन्त्रता का अधिकार (अनु0 20)।

21. लोक मामलों में भाग लेने का अधिकार (अनु0 21)।"[14]

---

[14] डा0 एच0 ओ0 अग्रवाल, "मानव अधिकार" 2002, पृष्ठ–41

इसी तरह आर्थिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा के अनुसमर्थक 145 राज्य हैं इस प्रसंविदा में 31 अनुच्छेद है जिन्हें 5 भागों में विभाजित किया गया है जो निम्नलिखित है–

1. "सामाजिक सुरक्षा का अधिकार (अनु0 22)।
2. कार्य करने और नियोजन के स्वतंत्र चयन का अधिकार (अनु0 23)।
3. अवकाश और विश्राम का अधिकार (अनु0 24)।
4. अपने और अपने कुटुम्ब के स्वास्थ्य के लिए पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार (अनु0 25)।
5. शिक्षा का अधिकार (अनु0 26)।
6. सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार (अनु0 27)।
7. सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का अधिकार (अनु0 28)।"[15]

घोषणा अनु0 29 के अधीन इन अधिकारों तथा स्वतन्त्रताओं पर कतिपय परिसीमा अधिकथित की गई। उक्त अनुच्छेद यह प्रावधान करता है कि प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य है जिसमें उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास सम्भव हो। अनु0 20 का परिच्छेद 2 प्रावधान करता है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों और स्वतन्त्रताओं के प्रयोग में अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतन्त्रताओं की सम्यक

[15] डा0 एच0 ओ0 अग्रवाल, "मानव अधिकार" 2002, पृष्ठ– 42, 43

मान्यता और सम्मान सुनिश्चित करना चाहिए। यह अधिकार किन्हीं निर्बन्धनों के अधीन नहीं होंगे केवल उनके जो समाज में नैतिकता लोक व्यवस्था और साधारण कल्याण ही न्यायोचित अपेक्षाओं को पूरा करने के प्रयोजन के लिए विधि द्वारा स्थापित की गई है। इसका तात्पर्य यह है कि घोषणा में उपबन्धित अधिकार आत्यांतिक नहीं है।

परन्तु ये प्रसंविदायें अनुसमर्थक राज्यों पर ही वैध रूप से आबद्धकर है एवं अन्य अभिसमयों के द्वारा भी इन्हें बढ़ाया जाता रहा है। इसी क्रम में 3 सितम्बर 1981 को स्त्रियों के साथ भेदभाव के विरूद्ध अधिकार जिसमें स्त्रियों के अधिकारों का क्षेत्र बढ़ाया गया है। जिसमें उन्हें पुरूषों के समान अधिकार, स्त्रियों के खिलाफ रीति रिवाजों को समाप्त करना, गलत प्रथाओं एवं पूर्वाग्रहों को समाप्त करना, विवाह के बाद उसकी राष्ट्रीयता तब तक नहीं बदली जायेगी जब तक वह न चाहे, अपना जीवन साथी चुनने, तथा स्त्रियों की खरीद बिक्री के विरूद्ध कानून बनाये गये।

4 दिसम्बर 1986 की विकास की घोषणा 2 सितम्बर 1990 की बच्चों से सम्बन्धित अधिकारों का अभिसमय जिसमें प्रत्येक बच्चों को सामाजिक सुरक्षा, स्वस्थ रूप से विकसित होने, पर्याप्त पोषण, भोजन, आवास, मनोरंजन, चिकित्सा सेवा, निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा का अधिकार दिया गया है। तथा जिन बच्चों के माँ बाप नहीं है उनकी देखरेख का कार्य समाज

और लोक अधिकारियों का होगा और सभी बच्चों को उपेक्षा, क्रूरता, शोषण से संरक्षण का अधिकार भी दिया गया है और न्यूनतम आयु से पूर्व किसी बच्चे को रोजगार में नहीं लगाया जायेगा। इसी क्रम में 21 फरवरी 1992 में दिये गये अल्पसंख्यकों के अधिकार, विदेशियों एवं शरणार्थियों के अधिकार, संस्कृति का अधिकार आदि के द्वारा हमारे अधिकारों का क्षेत्र लगातार बढ़ाया जाता रहा है।

मानवाधिकार मामलों पर विचार विमर्श करने एवं किसी मामले में सहमति पर पहुँचने के लिए प्रथम विश्वव्यापी सम्मेलन जो अन्तर्राष्ट्रीय मानव अधिकार सम्मेलन के नाम जाना जाता है तथा जिसे तेहरान सम्मेलन के नाम से भी जाना जाता है। 22 अप्रैल 1968 से 13 मई 1968 तक जिसमें 20 वर्षों में मानवाधिकार के क्षेत्र की प्रगति की समीक्षा की गई। जिसमें 84 राज्यों के प्रतिनिधियों ने तथा संयुक्त राष्ट्र के अंगों विशिष्ट अभिकरणों तथा विभिन्न अन्तर्सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया तथा मानव अधिकारों की घोषणा में आस्था व्यक्त की एवं सभी व्यक्तियों सरकारों को मानव अधिकारों के प्रति प्रतिबद्ध होने तथा मानव प्राणियों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक कल्याण में सहायक और स्वतन्त्रता एवं गरिमा के अनुरूप अपने प्रयासों को बढ़ाने का अनुरोध किया। 14 जून 1993 से 25 जून 1993 तक वियना में

आयोजित द्वितीय विश्व सम्मेलन में 171 राज्यों से 2100 प्रतिनिधियों ने भाग लिया और मानवाधिकारों के संरक्षण एवं अभिवृद्धि के लिए प्रतिबद्धता जताई। उपर्युक्त के अतिरिक्त घोषणा में बच्चों, महिलाओं, प्रवासी कर्मचारियों पिछड़े लोगों, मूलवंशीय भेदभाव, धार्मिक, भाषायी अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित संरक्षण के लिए कहा गया।

इसके अलावा भी संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा मानवाधिकारों की रक्षा के लिए अनेक संगठनों की स्थापना की गई। इसमें प्रमुख है– 1948 में स्थापित अन्तर्राष्ट्रीय बाल आपातकालीन कोष, 1942, 1952, 1961 में स्थापित इण्टरनेशनल लीग फार ह्यूमन राईट्स, इण्टरनेशनल कमीशन आप ज्यूरिग्टस तथ एमनेस्टी इण्टरनेशनल नामक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन जो हमारे मानवाधिकारों को सुरक्षित करने के प्रयास में लगातार प्रयासरत है। परन्तु आज भी मानवाधिकारों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है। विश्व में कौन सा देश ऐसा होगा जहाँ पुलिस अत्याचार नहीं होता है। नागरिकों के सम्मान की रक्षा की जाती है। किसी एक अपराधी को पकड़ने के लिए पूरे परिवार को दण्ड नहीं दिया जाता है। कुछ राष्ट्रों में तो आज भी ऐसे कानून है कि चोरी करने पर हाथ काट दिया जाता है। जिन्दा खोलते तेल के कढ़ाहे में डाल दिया जाता है एवं अनेक क्रूर दण्ड दिये जाते हैं।

महिलाओं के साथ उत्पीड़न भी कहाँ नहीं होता उन्हें आज केवल एक उपभोग की वस्तु समझा जाता है। एक अमेरिकन रिपोर्ट के हिसाब से विश्व की एक तिहाई महिलायें अपने जीवन में पीटी जाती है। 24 प्रतिशत से 40 प्रतिशत तक बलात्कार का शिकार होती है। आज भी पाकिस्तान जैसे देशों में दो महिलाओं की गबाही एक पुरूष के बराबर मानी जाती है। यह स्थिति दर्शाती है कि मानवाधिकारों की स्थिति आज क्या है ? मानवाधिकारों का हनन विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा विकासशील एवं अविकसित राष्ट्रों में अधिक होता है। जहाँ नागरिकों को अपने अधिकारों का ज्ञान नहीं। अतः मानवाधिकारों की घोषणा को आज के समय का मैग्नाकार्टा कहा जाता है। यह आज विश्व में महान उपलब्धि के रूप में मानी जाती है। आज दुनिया के सभी देशों में, कानूनों में इन अधिकारों की झलक देखने को मिलती है। सार्वभौम घोषणा में मानव अधिकारों को सूचीबद्ध किया गया है। जिसकी प्राप्ति सभी राष्ट्रों के लिए सामान्य रूप से आवश्यक मानी जाती है। अतः मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए एक सामान्य मानक का प्रावधान किया गया।

यद्यपि इसको विधिक दस्तावेज नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह राज्यों को इन्हें मानने के लिए बाधित नहीं कर सकी और यह केवल एक सिफारिश के रूप में है। लेकिन इसके सदस्य राज्यों से इसमें वर्णित

अधिकार तथा स्वतन्त्रताओं के प्रभावी मान्यता और अनुपालन का अनुरोध किया गया है। इस घोषणा में जो मूल मानव अधिकारों को सम्मिलित किया गया है। वह लोकतंत्र की विधिगत मान्यताएं है जो मानव के लिए सदैव प्रेरणा का स्रोत रही है।

आज यह प्रथा बन गई कि मानव अधिकारों के प्रति जब कोई प्रस्ताव पारित किया जाता है या कोई संधि या अभिसमय अंगीकार किया जाता है तो उसके प्रारम्भ या प्रस्तावना में मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का हवाला दिया जाता है या इसका अनुमोदन किया जाता है। यह चार्टर का प्राधिकृत निर्वचन है तथा यह राज्यों पर उसी तरह बंधनकारी है जिस तरह चार्टर, यदि कोई सदस्य राज्य घोषणा का उल्लघंन करता है, तो उसके उपबन्धों का उल्लघंन करता है और यह चार्टर के अनु0 55 तथा 56 का उल्लघंन माना जाता है। इस प्रकार निष्कर्ष यह निकलता है कि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा का विधिक महत्व है तथा इसके उपबंध सदस्य राज्यों पर बन्धनकारी है। मार्च 1968 में मण्ट्रियल में मानव अधिकारों की अनौपचारिक सभा में मत प्रकट किया गया कालान्तर में यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि का भाग हो गया है। तेहरान घोषणा में भी इस बात की पुष्टि की गई थी।

सार्वभौम घोषणा का अपना ही विधिक महत्व है। मानवीय अधिकारों के क्षेत्र में महत्वपूर्ण एवं क्रान्तिकारी परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुये इनका महत्व और बढ़ गया है। न्याय के अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायमूर्ति नागेन्द्र सिंह के मतानुसार घोषणा केवल महासभा का एक प्रस्ताव नहीं है वरन चार्टर का प्रसार है तथा इसमें इसकी गरिमा है।

विख्यात लेखक लुइस सोन ने लिखा है कि, *"घोषणा का उल्लघंन चार्टर के सिद्धान्तों का उल्लघंन है घोषणा सदस्य राज्यों पर पूरी तरह से बाध्यकारी है।"*[16] *"यदि संयुक्त राष्ट्र का कोई अंग इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कोई सदस्य राज्य घोषणा में वर्णित किसी अधिकार के पालन की प्रोन्नति में असफल रहा है तो यह कथन एक निर्णय होगा कि सदस्य राज्य ने चार्टर के अनुच्छेदों 55 एवं 56 का उल्लघंन किया है।"*[17]

इसका समर्थन 1960 में महासभा द्वारा पारित उपनिवेशों, देशों तथा लोगों को स्वतन्त्रता प्रदान करने पर घोषणा सम्बन्धी प्रस्ताव भी करता है इस प्रस्ताव में कहा गया है कि सभी राज्यों को निष्ठापूर्वक तथा कड़ाई से मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का तथा वर्तमान घोषणा का पालन करना होगा।

---

[16] "The Development of the Charter of United National the Present State, The Present State of International law Quber Netherland 1973 p. 39, 54.
[17] लुईस. वी. सोन, '"दि डेवलपमेंट ऑफ दि चार्टर ऑफ दि0 यू0 एन0" 1973, पृष्ठ–39–54

इसकी पुष्टि 1963 के सभी प्रकार के जातीय भेदभाव की समाप्ति पर घोषणा के प्रस्ताव ने कर दी। इस प्रस्ताव में कहा गया है कि *"प्रत्येक राज्य पूर्ण रूप से तथा निष्ठापूर्वक मानवीय अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा तथा दोनों घोषणाओं का पालन करेंगे।"*[18] मानवीय अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा जिसे सरकारों द्वारा प्राप्त करने के उद्देश्य के कथन के रूप में धारित किया गया था, अब 50 वर्षों से अधिक समय के बाद एक ऐसे अन्तर्राष्टीय मानक के रूप में है जिसमें राज्यों में उनका व्यवहार मापा जाता है। वास्तव में सार्वजनिक घोषणा को चार्टर के प्रासंगिक या तत्संगत प्रावधानों के अधिकृत निर्वचन तथा अन्तर्राष्ट्रीय विधि की नई प्रथा के रूप में स्वीकार किया जाता है तथा जो सभी राज्यों पर बन्धनकारी है।

निष्कर्ष रूप में इस घोषणा की चाहे जो स्थिति रही हो परन्तु वह अब विधिक रूप धारण कर चुकी है और उसके सदस्य राज्य अपने देशों के कानून बनाने में मानवाधिकारों का हवाला देना नहीं भूलते क्योंकि वह उन पर बन्धनकारी है। और आज राष्ट्र हो या प्रदेश यदि किसी परिवेश में मानवाधिकारों को उचित महत्व नहीं मिलता तो सभ्यता का गौरव कलंकित ही रहता है।

---

[18] महासभा प्रस्ताव, 20 नवम्बर, 1963

अध्याय- द्वितीय

भारतीय संविधान एवं कानून में मानवाधिकारों की व्यवस्था
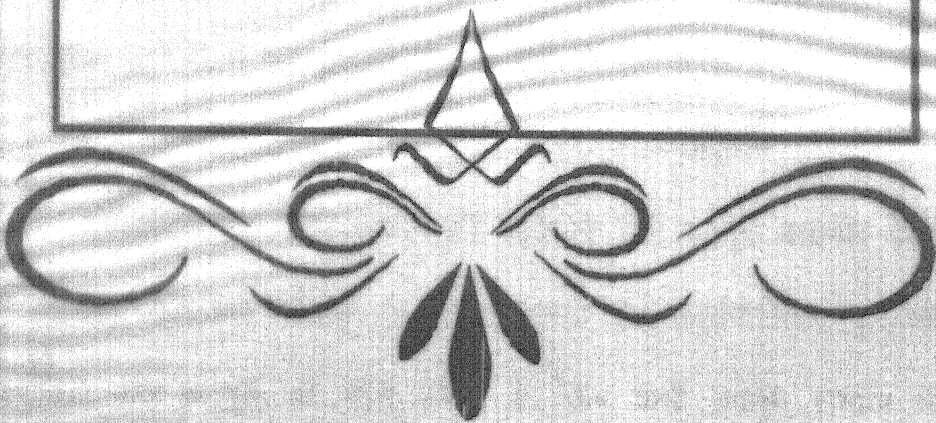
भारतीय संविधान एवं कानून में मानवाधिकारों की व्यवस्था

'राज्य का लक्ष्य जीवन को सम्भव बनाना ही नहीं बल्कि एक अच्छी तरह के जीवन को प्रदान करता है।'[1] अतः भारत देश विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और इसकी प्रस्तावना संविधान के दर्शन को अभिव्यक्त करती है। हमारा संविधान सभी के लिए समान अधिकारों की घोषणा करता है एक विकासशील एवं लोकतांत्रिक देश में ऐसे वचन को वास्तविकता तक पहुँचाने के लिए महत्वपूर्ण योजना और प्रयासों की आवश्यकता है और जब तक अधिकार समाज के कमजोर वर्गों और गरीबों को प्राप्त नहीं होते तब तक ऐसी संवैधानिक घोषणायें मात्र कागजी ही मानी जायेगी। जहाँ एक ओर निरक्षरता के कारण आम लोगों को अपने अधिकारों की जानकारी भी नहीं हो पाती ऐसी स्थिति में न्याय को जन–जन तक पहुँचाना राजनीतिक व्यवस्था के समक्ष एक बड़ी चुनौती है एवं उनका संरक्षण समाज के विभिन्न अंगों के बीच क्रिया–प्रतिक्रिया के निरन्तर अमल पर निर्भर करता है अतः मानवाधिकार का संरक्षण एक सामूहिक, दायित्व है एवं इसको सुचारू रूप से चलाने के लिए सरकार के तीन अंग होते हैं–(1)विधायिका (2) कार्यपालिका (3) न्यायपालिका।

विधायिका का काम समाज को संविधान और कानून बनाकर देना है जो जनता की सामूहिक भावना को व्यक्त करता है। कार्यपालिका का काम इस संविधान और कानून को लागू करना है। जब कभी कानून समाज में किसी

---

[1] अरिस्टाटिल "पालिटिक्स" (वार्कर द्वारा अनुदानित) पृष्ठ–118

विशेष प्रकार की गतिविधि को निषिद्ध करता है तो यह गतिविधि अपराध बन जाती है। इस अपराध को रोकने और इसका पता लगाने के लिए हर समाज में कानून प्रवर्तन संगठन होते हैं जिनमें सबसे महत्वपूर्ण पुलिस संगठन है।

न्यायपालिका का काम अपराधियों को उचित दंड देना है और संविधान एवं कानून के सही पालन की निगरानी करना है। इसी तरह प्रत्येक सरकार में एक सुधारात्मक संगठन भी होता है जिसका काम न्यायपालिका द्वारा दी गई सजा को लागू करना और अपराधियों का सुधार करना होता है ताकि उन्हें समाज के लिए एक बार फिर से उपयोगी बनाया जा सके। इस सारी कार्यवाही का मुख्य उद्देश्य समाज में मानवाधिकारों की रक्षा करना है आइये सबसे पहले हम भारत के संविधान की उद्देशिका पर नजर डालें।

उद्देशिका :

हम, भारत के लोग, भारत को एक (सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न समाजवादी पथनिरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य) बनाने के लिए, तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति गरिमा और अखंण्डता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवम्बर सन् 1949 ई0 को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

अतः भारत का संविधान एक *"सामाजिक दस्तावेज है।"*[2] और समाज का दर्पण है। हमारा संविधान हमारे राष्ट्रीय जीवन का अंग है। संविधान के सिद्धान्त उसके प्राण हैं, उसके स्पन्दन हैं भारतीय संविधान शासकों को संविधान के सिद्धान्तों के अनुरूप चलने और उसका उपयोग जनहित में करने का आदेश देता है। *"यह एक अकर्मण्ड दस्तावेज नहीं है यह सामाजिक शोषण के विरूद्ध शासन को सकारात्मक कार्यवाही करने की तथा शोधक प्रदान करने की मांग करता है।"*[3] संविधान में वैयक्तिक अधिकारों और सामाजिक अधिकारों दोनों का प्रतिपादन किया गया है। संविधान की उद्देशिका में भारत को *"सम्पूर्ण प्रभुत्वसम्पन्न समाजवादी पंथ निरपेक्ष और लोकतन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया है।"*[4] लोकतन्त्रात्मक शब्द का अर्थ है कि सरकार अपनी शक्ति जनता की इच्छा से प्राप्त करती है सरकार जनता की, जनता के लिए और जनता के द्वारा है। सरकार जनता द्वारा निर्वाचित की जाती है और जनता के प्रतिनिधियों का निकाय है उद्देशिका के अनुसार प्रभुत्ता जनता में निहित है। अतः उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि प्रभुत्ता जनता में निहित है। *"विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका का सृजन और गठन जनता की सेवा करने के लिए किया गया है।"*[5] इससे यह भावना निकलती है कि *"सभी व्यक्ति मूलवंश, धर्म, भाषा लिंग और संस्कृति के लिहाज के बिना समान है।"*[6]

---

[2] ग्रेनिविल आस्टिन, "दि इण्डियन कांस्टिट्यूशन, कार्नस्टोन ऑफ नेशन" 1966 पृष्ठ–50–52
[3] जय–जयराम उपाध्याय, "भारत का संविधान" 2002, (सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद।
[4] 'सामाजिक और पंथनिरपेक्ष पदों को 42वॉ संशोधन अधिनियम 1976 द्वारा जोड़ा गया
[5] एन0 नागेन्द्र "राव एण्ड कम्पनी बनाम आंध्र प्रदेश राज्य" 1994, 6 एस0 सी0 सी0 205, 23
[6] दुर्गादास वसु, "इण्ट्रोडक्शन टू दि कांस्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया" 1954, पृष्ठ–23

संविधान की उद्देशिका में उच्चतम राजनीतिक आदर्शों का प्रतिपादन किया गया है जैसे—सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म, उपासना की स्वतन्त्रता व्यक्ति की गरिमा आदि। इन आदर्शों को प्राप्त करने के लिए संविधान की प्रस्तावना भाग III और IV में प्रवर्तन तंत्र की व्यवस्था करता है जो क्रमशः मूल अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्व कहे जाते हैं।

मूल अधिकार न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है किन्तु राज्य के नीति निर्देशक तत्व न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है फिर भी निर्देशक तत्व मूल अधिकारों से अवर नहीं माने जाते हैं। मूल अधिकारों और निर्देशों में समन्वय स्थापित करना संविधान की आधारिक संरचना का भाग है। संविधान के अनु0 37 के अनुसार यह उपबंध न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं होंगे किन्तु फिर भी इनमें अधिकथित तत्व देश के शासन में मूलभूत हैं। और विधि बनाने में इन तत्वों को लागू करना राज्य का कर्तव्य है। मूल अधिकार और राज्य के नीति निर्देशक तत्व संविधान की अन्तरात्मा का सृजन करते हैं। अतः भारतीय संविधान पर मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का प्रभाव स्पष्ट झलकता है तथा इस बात को उच्चतम न्यायालय ने भी स्वीकार किया है।

केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के बाद में संविधान के भाग—3 में वर्णित मौलिक अधिकारों के विषय में बोलते हुये मुख्य न्यायमूर्ति सीकरी ने कहा था "मैं यह धारित करने में असमर्थ हूँ कि यह अधिकार नैसर्गिक या असंक्रमणीय नहीं है वास्तव में भारत मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा का

पक्षकार था और उच्चतम न्यायालय के आधुनिक निर्णयों में मानवाधिकारों का विस्तृत रूप से निर्देश पाया जाता है।" सुनील वत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन के मामले में न्यायमूर्ति कृष्ण अय्यर ने भी कहा है कि ''मानव अधिकार विधिशास्त्र को भारत में संवैधानिक प्रस्थिति प्राप्त है।''[7]

अतः उच्चतम न्यायालय ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के निर्वाचनात्मक मूल्य को स्वीकार किया है। मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में मानव अधिकारों की परिभाषा तो नहीं दी गई वरन उन्हें मानव परिवार के सभी सदस्यों के समान एवं असंक्रमणीय अधिकार कहा है। इस घोषणा ने भारतीय संविधान के निर्माताओं को बहुत अधिक प्रभावित किया तथा सार्वभौमिक घोषणा में उल्लिखित अधिकारों को संविधान में सम्मिलित किया गया। सिविल तथा राजनैतिक अधिकारों को उन्होंने भाग 3 में मौलिक अधिकारों के रूप में रखा एवं आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक अधिकारों को संविधान के भाग 4 में निर्देशक तत्वों के रूप में सम्मिलित किया जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है।

अधिकार	**सार्वभौमिक घोषणा**	**भारतीय संविधान**
विधि के समक्ष समानता का अधिकार	अनु0 7	अनु0 14
भेदभाव का प्रतिबंध	अनु0 7	अनु0 15 (1)
अवसर की समानता	अनु0 21 (2)	अनु0 16 (1)

[7] दुर्गादास वसु, '''इण्ट्रोक्शन टू दि कांस्टिट्यूशन ऑफ इण्डिया'' 1954, पृष्ठ–94

विचार और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता	अनु0 19	अनु0 16 (1) क
शान्तिपूर्ण सभा की स्वतन्त्रता	अनु0 20 (1)	अनु0 19 (1) ख
संगठन अथवा संघ निर्माण का अधिकार	अनु0 23 (4)	अनु0 19 (1) ग
सीमा के भीतर संचरण का अधिकार	अनु0 13 (1)	अनु0 19 (1) घ
अपराधों से दोष सिद्धि के सम्बन्ध में	अनु0 11 (2)	अनु0 20
प्रण एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का संरक्षण	अनु0 3	अनु0 21
दासता एवं बलात श्रम से संरक्षण	अनु0 4	अनु0 23
अन्तःकरण व धर्म स्वतन्त्रता	अनु0 18	अनु0 25 (1)
अधिकारों के प्रवर्तन हेतु उपचार	अनु0 8	अनु0 32
अल्पसंख्यक संरक्षण	अनु0 22	अनु0 29 (1)
अल्पसंख्यक शिक्षा का अधिकार	अनु0 26 (3)	अनु0 30 (1)
सम्पत्ति का अनिवार्य अर्जन	अनु0 17 (2)	अनु0 30 से 31

भारत का संविधान 26 जनवरी 1950 से प्रारम्भ हुआ और भारत घोषणा पर हस्ताक्षरकर्ता था भारतीय संविधान के निर्माता सार्वभौम घोषणा से प्रभावित थे अतः उन्होंने इसके उपबन्धों को संविधान में स्थान दिया एवं केशवानन्द भारती बनाम केरल राज्य के मामले में सम्प्रेक्षण किया है कि "सार्वभौम घोषणा

वैध रूप से आबद्धकर लिखित न हो परन्तु यह दिखाती है कि भारत ने मानव अधिकारों के स्वरूप को कैसे समझा।"[8] जिस समय संविधान अंगीकृत किया गया।

अतः मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के कुछ अधिकार भारतीय संविधान में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लिखित हैं तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि लोग उन अधिकारों का दावा नहीं कर सकते जो उल्लिखित नहीं है। ऐसी स्थिति प्रारम्भ में थी क्योंकि आरम्भ में गोपालन बनाम मद्रास राज्य (2) के मामले के निर्णय में उच्चतम न्यायालय से सम्प्रेक्षण किया था कि *"भारत के संविधान में विधानमण्डल प्रमुख सम्पन्न है किन्तु उनकी प्रभुत्ता को संविधान द्वारा अभिव्यक्त रूप से या विनिर्दिष्ट रूप से मर्यादित किया गया है।"*[9] न्यायालय द्वारा उनकी प्रभुत्ता पर संविधान की भावना या नैसर्गिक अधिकार अर्थात संविधान के भाग–3 में प्रगणित अधिकारों से भिन्न अधिकार के सिद्धान्तों के आधार पर मर्यादा अधिरोपित नहीं कर सकते इस प्रतिपादना को *"ए0 डी0 एम0 जबलपुर बनाम शिवकान्त शुक्ला (3) में दिये गये निर्णय से बल मिला है।"*[10] कि संविधान के भाग–3 में कुछ अधिकारों को मूल अधिकार के रूप में समाविष्ट किये जाने से कॉमन लॉ पर या अन्यथा आधारित संविधान पूर्व अधिकार अनन्य रूप से अनु0 21 में समाविष्ट है और आज दैहिक स्वतन्तत्रता से वंचित करने वाली विधि की वैधता पर इस कारण आक्षेप नहीं किया जा

---

[8] ए0 आई0 आर0 "1973 एस0 सी0" 1461, 1510

[9] 1950 एस0 सी0 आर0 88

[10] ए0 आई0 आर0 1976 एस0 सी0 1207

सकता है कि कामन लॉ के नियम का उल्लघंन करती है। लेकिन स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं रही क्योंकि कुछ न्यायाधीशों ने इन्दिरा नेहरू गाँधी बनाम राज नारायण (1) के मामले में यह कहा है कि 'विधि शासन' भारतीय संविधान की आधारित संरचना है जो विनिर्दिष्ट और अभिव्यक्त उपबन्धों के अतिरिक्त है।

समयानुक्रम में उच्चतम न्यायालय अपने प्रारम्भिक विचार भारतीय संविधान के भाग–3 में मूल अधिकारों की निशेषकारी (Exhaustive) सूची देता है। वह इससे हटता गया क्योंकि भारत में भी अमेरिकी उच्चतम न्यायालयों के निर्णयों के आधार पर निस्सरण (Emanation) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया। इससे यह अभिप्रेत है कि यद्यपि कोई अधिकार विनिर्दिष्ट रूप से संविधान के भाग–3 में वर्णित नहीं किया गया है फिर भी इसको मूल अधिकार के रूप में माना जा सकता है अर्थात् यह एक नामोद्दिष्ट मूल अधिकार से निःसृत होता है। जैसे अनु0 21 में वर्णित अधिकार की परिधि बड़ी ही व्यापक है तथा कई उपर्युक्त अधिकार जिनका संविधान में विनिर्दिष्ट रूप से उल्लेख नहीं अनु0 21 में सम्मिलित है। विदेश जाने का, गुप्तता का, एकांत कारावास के विरूद्ध, बेड़ी लगने के विरूद्ध, विधिक सहायता, शीघ्र परीक्षण का, हिरासत में हिंसा के विरूद्ध, आश्रय का, स्वास्थ्य, देखभाल, सूचना प्राप्त करने का, प्रतिकर प्राप्त करने बंधुआ श्रमिक के पुनर्वास, क्रूर दण्ड के विरूद्ध अधिकार आदि।

इन अधिकारों को अनु0 21 से निकले हुये या उसके भाग होने को धारित करने के अतिरिक्त उच्चतम न्यायायल ने धारित किया है कि अनु0 21 की परिधि बड़ी ही व्यापक है तथा इसे निम्न क्षेत्रों में भी लागू किया जा सकता

है। दवायें विशेषकर मादक दवायें, पर्यावरण जोखिम वाले रसायन, अस्वस्थ चित्त के व्यक्ति, पासपोर्ट, परमाणु शक्ति, सक्रिय धूल वन, विदेशी महिला से बलात, गरीब किसानों को भूमि से वंचित करना, कार्य करने वाली महिलाओं के अधिकार आदि।

उपयुक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौलिक अधिकारों के रूप में मानव अधिकारों की परिधि सार्वभौमिक घोषणा में उल्लिखित अधिकारों से कहीं अधिक है एवं आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा को भारतीय संविधान के भाग IV में स्थान दिया गया है। जिसमें राज्य के नीति के निदेशक तत्वों को प्रतिपादित किया गया है एवं वे नीति निदेशक तत्व जो आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को समाहित करते हैं मानव अधिकारों के भाग हैं बहुत से अधिकार जो आर्थिक,सामाजिक और सांस्कृतिक प्रसंविदा में उपवर्णित है निर्देशक तत्वों में भी सम्मिलित किये गये हैं उदाहरणार्थ–

अधिकार और सांस्कृतिक	**आर्थिक सामाजिक अधिकारों की प्रसंविदा**	**भारतीय संविधान**
पुरूष एवं स्त्रियों को समान कार्य के लिए समान वेतन	अनु0 27 (1) क	अनु0 (39) घ
काम की न्यायसंगत और मानवोचित दशा	अनु0 7 ख	अनु0 42
प्रसूति सहायता	अनु0 10 (2)	अनु0 42

कामशिक्षा और लोक सहायता का अधिकार	अनु0 6 (1)	अनु0 41
बालकों को स्वतन्त्र और गरिमामय वातावरण	अनु0 10 (3)	अनु0 39 (घ)
बालकों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा	13 (2) क	अनु0 45
कर्मकारों के लिए निर्वाह मजदूरी	7 (क) (1)	अनु0 43
अवकाश का उपभोग	अनु0 7 (5)	अनु0 43
पोषाहार स्तर एवं जीवन स्तर ऊँचा करना	अनु0 11	अनु0 47

आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा के वे सभी उपबन्ध भारत पर आबद्धकर हैं जिन पर भारत ने अंगीकार पत्र में कोई आरक्षण नहीं किया है। आरक्षण से मुक्त उपबन्ध भारत पर आबद्धकर है और आरक्षणाधीन उपबन्ध नहीं। भारत में सिविल और राजनीतिक अधिकारों की प्रसंविदा में प्रगणित अधिकारों की दिशा में व्यापक प्रगति हुई है क्योंकि वे न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय है लेकिन आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों की प्रसंविदा में प्रगणित अधिकारों की दिशा में प्रगति नगण्य है क्योंकि वे न्यायालय द्वारा अप्रवर्तनीय है, लेकिन हर्ष की बात यह है कि भारत में उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय ने *"लोकहितवाद की युक्ति का प्रतिपादन करके सामाजिक और आर्थिक अधिकारों को भी इसके माध्यम से प्रवर्तनीय बना दिया है।"*[11] लोकहितवाद की युक्ति न्यायिक सक्रियतावाद पर

[11] जय–जयराम उपाध्याय, "भारत का संविधान" 2002, पृष्ठ–278

आधारित है। उच्चतम न्यायालय ने मिनर्व मिल्स बनाम भारत संघ के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि मूल अधिकारों और निर्देशक तत्वों में संतुलन भारतीय संविधान की आधारित संरचना का भाग है। ये दोनों प्रकार के अधिकार एक दूसरे के पूरक हैं इस सम्बन्ध में उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति पी० एन० भगवती ने सटीक बात कही है।

"यह केवल सामाजिक और आर्थिक अधिकारों की उपलब्धि से ही है कि सिविल और राजनीतिक अधिकार देश के सभी लोगों के लिए व्यवहारिक यथार्थता हो सकते हैं अन्यथा सिविल और राजनीतिक अधिकार केवल परेशान करने वाले भ्रम और काल्पनिकता का दावा है जनसमूह को धोखा देने और ठगने वाले, कुटिल और कपटी आदर्शो के आशायित प्राक्कथन ही रह जायेंगे।"[12]

आज भारत के लिए यह प्रशंसनीय है कि वह आज बहुत से मानव अधिकार अभिसमयों का भी पक्षकार बन गया है जो निम्न है–

1. सभी प्रकार के भेदभाव के समाप्त करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (1965) इसका अनुसमर्थन भारत ने 3 दिसम्बर 1968 को दिया।
2. रंगभेद के अपराध को दबाने एवं दण्ड के लिए अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (1973) पर भारत द्वारा 22 सितम्बर 1977 को अनुसमर्थन किया गया था। इसके अलावा, खेलों में रंगभेद के विरूद्ध अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय (1985) का अनुसमर्थन 12 सितम्बर 1990 को किया गया।

---

[12] इनागरल एड्रेस ऐट दि सेमिनार "ऑन ह्यूमन राइट्स आर्गनाइज्ड वोड द इलाहाबाद सेंटर ऑफ दि इण्टरनेशनल लॉ एसोसियेशन आन" दिसम्बर 6, 1980

3. नरसंहार (Genocide) के अपराध के निवारण एवं दण्ड पर अभिसमय (1951) का अनुसमर्थन 27 अगस्त 1959 को किया गया।
4. शिशु अधिकार अभिसमय 1989 का अनुसमर्थन 11 दिसम्बर 1992 को किया गया।
5. महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 1979 का अनुसमर्थन 9 जुलाई 1993 को किया गया और महिलाओं के राजनैतिक अधिकारों का अभिसमय 1952 को अनुसमर्थन 2 नवम्बर 1961 को किया गया।
6. अन्तर्राष्ट्रीय दास अभिसमय 1926 को संशोधित करने सम्बन्धी नयाचार (Protocol) का अनुसमर्थन 12 मार्च 1954 को किया गया और दासता, दास व्यापार एवं दासता के समान संस्थाओं के उन्मूलन हेतु पूरक अभिसमय का अनुसमर्थन 23 जून 1960 को किया गया।
7. व्यक्तियों के दुर्व्यापार को दबाने और वेश्यावृत्ति के शोषण पर अभिसमय 1972 का अनुसमर्थन 9 जनवरी 1953 को किया गया था।

इसके अतिरिक्त यातना एवं अन्य क्रूर या अमानवीय अथवा अपमानजनक दण्ड के विरूद्ध अभिसमय पर भारत द्वारा 14 अक्टूबर 1997 को हस्ताक्षर किया गया था फिर भी इसका अनुसमर्थन इसके द्वारा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के 1995–96 एवं 1996–97 के वार्षिक रिपोर्ट में सिफारिश करने के बावजूद भी नहीं किया गया। आयोग अपनी 1997–98 की रिपोर्ट पर यह कहता है कि इस बात की आशंका है कि अभिसमय को स्वीकार कर लेने से अभिसमय के

प्रावधानों विशेष रूप से इसके अनु0 21, 22 एवं 28 के प्रावधानों के विश्लेषण के माध्यम से देश में बाहर से हस्तक्षेप किये जाने की छूट हो जायेगी। अभिसमय का पक्षकार न बनने के लिए उपर्युक्त आधार उचित नहीं प्रतीत होता क्योंकि अनु0 21 एवं 22 वैकल्पिक है। अनु0 28 में यह प्रावधान किया गया है कि कोई राज्य यह घोषणा कर सकता है कि वह अनु0 20 में प्रावधानित समिति की पूर्णता को मान्यता नहीं देता है। इस प्रकार से भारत इन सम्बन्धों में आरक्षण के साथ अभिसमय का पक्षकार बन सकता है।

इस प्रकार इन अभिसमयों का पक्षकार बनकर भारत ने विश्व समुदाय को यह दिखा दिया कि उसकी मानव अधिकार के संरक्षण एवं अभिवृद्धि में आस्था है परन्तु यह कहना अनुचित न होगा कि भारत उपर्युक्त बाध्यताओं को पूरा करने में हमेशा तत्पर नहीं रहा है। और अधिकारों के क्रियान्वयन के प्रति सरकार का दृष्टिकोण वस्तुतः अरूचिपूर्ण और सीमित रहा है। इसका परिणाम यह है कि मानव अधिकार अभिसमयों के अनुसमर्थन के बावजूद मानवाधिकारों का उल्लघंन जारी है।

जबकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना भारत में 27 अगस्त 1993 को उस समय की गई जब भारत के राष्ट्रपति ने आयोग की स्थापना के लिए एक अध्यादेश पारित किया। राज्य स्तर पर भी आयोगों की स्थापना के लिए प्रावधान भी उसी अध्यादेश में किये गये। राष्ट्रपति के अध्यादेश को प्रति स्थापित करने के लिए लोकसभा ने 18 दिसम्बर 1993 को मानव अधिकार संरक्षण विधेयक पारित किया। राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात "8

जनवरी 1994 को उक्त विधेयक एक अधिनियम बन गया जिसे मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के नाम से जाना जाता है।"[13]

इस अधिनियम का उद्देश्य राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग द्वारा राज्यों में राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन तथा मानव अधिकार न्यायालयों के गठन हेतु प्रावधान करना था जो मानव अधिकारों तथा उनसे सम्बद्ध अथवा आनुषांगिक मामलों के बेहतर संरक्षण के लिए था। अधिनियम की धारा 3 में यह अधिकथित है कि केन्द्र सरकार एक ऐसे निकाय का गठन करेगी जिससे राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के नाम से जाना जायेगा। आयोग में 8 सदस्य होंगे और उच्चतम न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश इसके अध्यक्ष होंगे, आयोग के अन्य सदस्य उच्चतम न्यायालय के सेवारत या सेवामुक्त मुख्य न्यायाधीश होंगे मानव अधिकार एवं क्षेत्र में ज्ञान या व्यवहारिक अनुभव रखने वाले दो प्रसिद्ध व्यक्ति, राष्ट्रीय महिला आयोग के अध्यक्ष होंगे आयोग के अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली 6 सदस्यीय समिति की सिफारिश पर की जायेगी। अध्यक्ष और सदस्य अपने पद ग्रहण की तिथि से 5 वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे वे दूसरी पदावधि के लिए पुनः नियुक्ति के लिए अर्ह होंगे कोई भी व्यक्ति 70 वर्ष की आयु तक आयोग की सेवा कर सकता है। आयोग का एक महासचिव होगा जो अपने कार्यों का निर्वहन स्वयं को दी गई शक्तियों को ध्यान में रखकर करेगा।

[13] अधिनियम संख्या 10 वर्ष 1994 अधिनियम को भारत के राजपत्र असाधारण भाग ।। अनुभाग–1 दिनांक 10 जनवरी, 1994 को पृष्ठ–1–16

आयोग के अध्यक्ष अथवा अन्य को हटाने के प्रावधान धारा 5 में दिये गये हैं। जैसे किसी को कदाचार अथवा अक्षमता के आधार पर हटाया जा सकता है।

(क) यदि वह दिवालिया घोषित कर दिया गया हो।

(ख) अपनी पदाविधि के दौरान अपने पद के कर्तव्यों के अतिरिक्त किसी वैतनिक नियोजन से संलग्न रहा हो अथवा

(ग) वह मानसिक या शारीरिक शैथिल्य के कारण अपने पद पर बने रहने के योग्य न रह गया हो अथवा

(घ) किसी सक्षम न्यायालय द्वारा उसे विकृत चित्त घोषित कर दिया गया हो अथवा

(ङ) उसे ऐसे अपराध के लिए दोषसिद्धि या दण्डित किया गया हो जिसमें राष्ट्रपति की राय में नैतिक चरित्रहीनता घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो। अध्यक्ष एवं सदस्यों का कार्यकाल 70 वर्ष की आयु तक रहता है।

आयोग का मुख्यालय दिल्ली में होगा तथा आयोग केन्द्र सरकार की अनुमति लेकर भारत के अन्य स्थानों पर भी अपने कार्यालय स्थापित कर सकेगा। आयोग को कार्य अधिनियम की धारा 12 के अन्तर्गत अनेक शक्तियाँ एवं कार्य आयोग को दिये गये हैं।

1. आयोग स्वप्रेरणा से अथवा पीड़ित व्यक्ति द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा अपने समक्ष प्रस्तुत की गयी याचिका पर (क) मानव अधिकार के उल्लघंन या उसके लिए प्रेरित करने के लिए अथवा (ख)

किसी लोकसेवक द्वारा ऐसे उल्लघंन के निवारण में की गई उपेक्षा के परिवाद की जाँच करेगा।

2. आयोग न्यायालय के समक्ष लम्बित किसी ऐसी कार्यवाही पर नयायालय के अनुमोदन से हस्तक्षेप कर सकता है जिसमें मानव अधिकारों के उल्लघंन का कोई अभिकथन अन्तर्ग्रस्त हो।

3. आयोग राज्य सरकार को सूचना देकर राज्य सरकार के नियन्त्रण में रहने वाले किसी कारागार अथवा अन्य किसी संस्था का जहाँ व्यक्तियों को उपचार सुधार या संरक्षण के लिए निरूद्ध किया जाता हो, अतः वासियों के रहन सहन की स्थितियों का अध्ययन करने के लिए तथा उस पर सिफारिश करने के लिए निरीक्षण करेगा।

4. आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान या तत्समय लागू किसी विधि द्वारा या उसके अधीन प्रावधानित संरक्षणों का पुनर्विलोकन करेगा और उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए उपायों की सिफारिश करेगा।

5. आयोग आतंकवाद की कार्यवाहियों सहित उन कारकों का पुनर्विलोकन करेगा जो किसी मानव अधिकार एवं उस समय लागू संरक्षणों के प्रयोग को प्रतिबद्ध करते हैं तथा उपयुक्त सिफारिशें भी करेगा।

6. आयोग मानव अधिकार से सम्बन्धित संधियों एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय लिखतों का अध्ययन करेगा और उनके प्रभावी क्रियान्वयन हेतु सिफारिश करेगा।

7. आयोग मानव अधिकारों के क्षेत्र में शोध करेगा तथा शोध कार्य को बढ़ावा देगा।

8. आयोग समाज के विभिन्न वर्गों के बीच मानव अधिकार साक्षरता का प्रसार करेगा तथा उन अधिकारों के संरक्षण हेतु उपलब्ध जानकारी एवं संरक्षणों की अभिवृद्धि, प्रकाशन, समाचार माध्यम, सेमिनारों एवं अन्य उपलब्ध संसाधनों के माध्यम से करेगा।

9. आयोग मानव अधिकार के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं एवं गैर सरकारी संगठनों के प्रयासों को प्रोत्साहित करेगा।

10. आयोग ऐसे अन्य कार्यों को भी करेगा जिन्हें वह मानव अधिकारों की अभिवृद्धि हेतु आवश्यक समझेगा।

11. आयोग केन्द्र सरकार एवं सम्बन्धित राज्य सरकार को वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करेगा।

12. आयोग उच्चतम न्यायालय द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में जारी किये गये निर्देशों के अनुसरण में कार्य करेगा।

जबकि राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग को स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह किसी भी तरह की शर्तों से परिसीमित नहीं है एवं आयोग को परिवादों की जांच करते समय सिविल प्रक्रिया संहिता 1908 के अन्तर्गत वाद का विचारण करने वाले सिविल न्यायालय की सभी शक्तियाँ प्राप्त होती है तथा जब नवम्बर 1993 को आयोजित अपनी पहली बैठक में आयोग ने रिपोर्ट पेश की जिसमें पूरे

राज्य से अनेक वाद थे परन्तु सर्वाधिक परिवाद उत्तर प्रदेश से थे और यही क्रमानुसार 1997–98 में उ0 प्र0 से ही केवल 17,638 वाद तथा 1998–99 में 22, 043 वाद प्राप्त हुये थे इसी क्रम में 2005–06 में 49000 केस उ0 प्र0 से थे जो सर्वाधिक थे पूरे भारत वर्ष से मानवाधिकार आयोग के प्राप्त वादों की संख्या निम्न प्रकार है–

1993–94	–	496
1994–95	–	6,987
1995–96	–	10,195
1996–97	–	20,514
1997–98	–	36,791
1998–99	–	40,724

धारा 12 :

आयोग द्वारा प्राप्त वादों की संख्या से स्पष्ट होता है कि देश में मानव अधिकारों का बढ़े पैमाने पर उल्लघंन होता है इस संख्या से यह भी इंगित होता है कि व्यक्तियों ने आयोग पर अपना विश्वास व्यक्त किया है फिर भी आयोग का कार्य आलोचना का विषय रहा है। आयोग प्रस्तुत वादों पर उसी वर्ष विचार करने में समर्थ नहीं रहा है यह वांछनीय है कि परिवादों के विचार किये जाने में कोई विलम्ब नहीं होना चाहिए जबकि एमनेस्टी इण्टरनेशनल के अनुसार भारत में पुलिस यातनाओं से मरने वालों की संख्या 1985 से 1991 के बीच 400 से ऊपर थी परन्तु केवल 12 वादों का निस्तारण आयोग द्वारा किया

गया है जिनमें से 6 को हर्जाना प्राप्त हुआ है तथा यह आंकड़े मानवाधिकार आयोग की स्थिति को दर्शाते हैं। मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम के अध्याय V में राज्यों में राज्य मानव अधिकार आयोग की स्थापना का प्रावधान भी किया गया है जिसमें 5 सदस्य होंगे आयोग के सदस्य 5 वर्ष की अवधि तक अपने पदों पर बने रहेंगे और दूसरे कार्यकाल के लिए पुनः नियुक्त होने के लिए अर्ह होंगे।

S.H.R.C. (State Human Rights Commision) को भी N. H. R. C. (National Human Rights Commision) के समान अधिकार प्राप्त है। परन्तु S.H.R.C. उन मामलों की जांच नहीं करेंगे जो मामले N. H. R. C. अधीन लम्बित है। अब तक राज्य मानवाधिकार आयोग की स्थापना 12 राज्यों में हो चुकी है जम्मू कश्मीर, हिमांचल प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, म0 प्र0, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडू, बेस्ट बंगाल, आसाम, मनीपुर एवं और भी कई राज्यों में अधिसूचना जारी हो चुकी थी। जबकि मानवाधिकार के मामले सर्वाधिक उ0 प्र0 से प्राप्त होते हैं और वहाँ 2002 में अधिसूचना जारी की गई एवं अक्टूबर 2002 में उ0 प्र0 राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन हुआ।

इसी तरह अधिनियम की धारा 30 और 31 के अनुसार प्रत्येक जिले में मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना का प्रावधान है। इतने सब प्रावधानों के पश्चात भी मानवाधिकारों का संरक्षण आज तक नहीं हो पाया है। मानव ने कुछ भी किया हो लेकिन उसे अपने अधिकार नहीं मिले है जिसके पास शक्ति है जो शासक है, जो पैसे वाला है जिसके शरीर में पर्याप्त शक्ति है, जिसके पास

विद्या है, जिसके मष्तिष्क में तीक्ष्ण बुद्धि है उनका एक ही उद्देश्य है अपने से छोटों का शोषण करना। चालाक ढोंग रचाता है बलवान जुल्म करता है। कायर पाप करता है निर्बल भीख माँगता है और चारों ओर इस तरह के भीषण संकट के बीच मनुष्यता खड़ी–खड़ी खिसक रही है।

यदि हम भारतीय संविधान और भारतीय कानूनों पर दृष्टिपात करे तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि मानव मूल्यों से भारतीय संस्कृति जितनी समृद्ध है वह समृद्धता इन कानूनों से परिलक्षित नहीं होती है, और कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि पाश्चात्य दर्शन पर बनाया गया भारतीय कानूनों व संविधान का ढांचा भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में चरमराता दिखाई दे रहा है। पाश्चात्य दर्शन से उघृत कानून एवं संविधान इसलिए भी भारतीय परिवेश में सार्थक प्रतीत नहीं होते हैं क्योंकि जिन देशों को मानक मानकर कानून व संविधान बनाये गये हैं वह व्यावसायिक एवं उपभोक्तावादी संस्कृति के थे जबकि भारतीय दर्शन सर्वथा उदारवादी दृष्टिकोण पर आधारित है। तथा यदि संविधान व कानून का विश्लेषण करने पर जो दृश्य सामने आता है उससे तो यही प्रतीत होता है कि कानून के समक्ष देश के सभी व्यक्ति एक समान है परन्तु व्यवहारिक स्वरूप में कानून व संविधान दो प्रकार के दिखाई देते हैं क्योंकि शक्तिशाली व सम्पन्न व्यक्ति चाहे जितना देश के कानूनों का दुरूपयोग करे वह अपने दाँव पेंच व ताकत के बल पर बाहर निकल आता है वही गरीब व्यक्ति उसके उलझाव में उलझ कर पिस जाते हैं सबसे पहला मानवाधिकारों का हनन तो इसी जगह होता है। दूसरे तौर पर देखें तो यह व्यवस्था इतनी खर्चीली है कि उसे सामान्य

व्यक्ति प्राप्त करने में अपने को अक्षम पाता है और इसके बाद एक ही विकल्प बचता है कि वह ईश्वरवादी होकर अपने ऊपर हुये अत्याचार व अनाचार को सह जाता है।

इस सम्बन्ध में 'एमनेस्टी इण्टरनेशनल' की मानवाधिकारों से सम्बन्धित रिपोर्ट में कहा गया है कि *"भारत के सभी 28 राज्यों में यातनायें रोजमर्रा की बात है, हर रोज पुलिस की कोठरियों और सैनिक बैरको में सरकारी कर्मचारी जानबूझकर लोगों को सताते हैं और बेइज्जत करते हैं, मर्द, औरतें और बच्चे भी अछूते नहीं हैं उन्हें मार मार कर बेहोश कर दिया जाता है बिजली के झटके दिये जाते हैं और भारी बेलनों से उनका शरीर कुचला जाता है बलात्कार समेत अन्य यौन यातनायें भी आम हैं इस तरह पिछले दशक में हजारों नहीं तो सैकड़ों लोगों की जाने जा चुकी हैं।"*[14]

जबकि हमारे संविधान के अनु0 21 को मूलभूत अधिकारों का नाभिबिन्दु माना जाता है इसके शब्द हैं "किसी व्यक्ति को उसके प्राण अथवा दैहिक स्वतन्त्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य किसी प्रकार से वंचित नहीं किया जायेगा।"[15] जीवन और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को सरकार के दमन से मुक्त रखने वाले इस अधिकार का इतिहास काफी लम्बा है 1215, 1217 के मैग्नाकार्टा, 1628 का पिटीशन आफ राईट्स, 1640 का हैवियस कार्पस, 1689 की अमेरिका की स्वतन्त्रता की घोषणा, 1719 का बिल आफ

---

[14] एमनेस्टी इण्टरनेशनल 92 पृष्ठ–35
[15] वही पृष्ठ–137

राईट्स 1789 की फ्रांसीसी क्रांति में इसी अधिकार को सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं मूलभूत अधिकार माना गया।

जीवन के अधिकार को न्यायपालिका के विभिन्न निर्णयों में बहुत व्यापक अर्थ दिया गया है। फ्रांसीसी कोराली बनाम दिल्ली संघ क्षेत्र 1981 में न्यायमूर्ति भगवती ने कहा–"जीवन का मूलभूत अधिकार मानव का सबसे कीमती अधिकार है और यह सब अधिकारों का आधार है।"[16] परमानन्द कटारा बनाम भारत संघ 1989 में दो न्यायधीशों के पीठ ने निर्णय दिया–"मनुष्य के जीवन की सुरक्षा का महत्व सर्वोपरि है क्योंकि यदि जीवन समाप्त हो जाये तो उसे बहाल नहीं किया जा सकता। क्योंकि किसी को पुनर्जीवित करना मनुष्य की क्षमता के बाहर है।"[17]

न्यायमूर्ति भगवती ने कहा था कि यहाँ यह प्रश्न उठता है कि जीवन का अधिकार अंग और क्षमता के संरक्षण तक सीमित है अथवा वह उससे भी आगे जाता है। हमारा मत है कि मानव गरिमा के साथ उससे सम्बद्ध जीने का अधिकार भी शामिल है जिसे जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं भोजन, वस्त्र और आवास की पर्याप्त सुविधा पढ़ने लिखने और विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त करने, स्वतन्त्रता पूर्वक आने जाने और अन्य मनुष्यों से मिलने की सुविधा है। न्यायमूर्ति भगवती ने पुनः पी0 यू0 डी0 आर0 बनाम भारत संघ 1982 में कहा कि "मजदूरों को जीवन की उपर्युक्त स्थितियां और अन्य सुविधायें

---

[16] कैलाश नाथ गुप्त, "मानवाधिकार और उनकी रक्षा" दिल्ली, 2004

[17] मस्तराम कपूर : जीवन का अधिकार और अनु0 21 दरियागंज नई दिल्ली, पृष्ठ 139, 140

उनकी मानव गरिमा के लिए आवश्यक हैं और इन्हें इनसे वंचित करना अनु0 21 का उल्लघंन है।"[18]

इसी तरह विक्रम देव सिंह बनाम विहार (1988) में न्यायमूर्ति पाठक ने व्यवस्था दी 'मानव गरिमा के साथ जीने का अधिकार प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूलभूत अधिकार है। अतः राज्य उन अभागे बच्चों तथा स्त्रियों की देखभाल के लिए संस्थाओं के अनुरक्षण की आवश्यकता स्वीकार करती है जो अपूर्ण सामाजिक व्यवस्था के कारण उपेक्षित होते हैं। इस बारे में सर्वोच्च न्यायालय का अंतिम फैसला मोहिनी जैन बनाम कर्नाटक राज्य 1992 में आया है जिसमें कहा गया है, जीवन के अधिकार में उन सब अधिकारों की एक मुख्य अभिव्यक्ति होती है, जिन्हें जीवन के गरिमापूर्ण उपयोग के लिए बुनियादी मानकर अदालतों को लागू करना चाहिए। इसमें सभी काम आ जाते हैं जिन्हें करने के लिए व्यक्ति स्वतन्त्र होता है शिक्षा का अधिकार जीवन के अधिकार से निःसृत होता है। अनुच्छेद 21 के अन्तर्गत जीवन का अधिकार और व्यक्ति की गरिमा तब तक सुनिश्चित नहीं है जब तक इसके साथ शिक्षा का अधिकार नही मिलता।

अंततः कहा जा सकता है कि हमारे संविधान में दिये गये कानूनों में ही द्वन्द्व की झलक दिखाई देती है यह अपने आप में सम्पूर्ण नहीं है। यह सिर्फ यही बताते हैं कि किसी खास जगह पर किस मानवाधिकार की कितनी कानूनी मान्यता है, इस तरह मानवाधिकारों को कानूनी रक्षा मिल जाती है लेकिन

---

[18] वही, पृष्ठ–147

इसका मतलब ये नहीं कि जिस मानवाधिकार का उल्लेख न हो वह सम्भव नहीं। आज हमारे अधिकारों में समय के साथ–साथ वृद्धि हुई पर जितने अधिक हमें अधिकार दिये गये हैं उतना ही हमारे अधिकारों का हनन हुआ है म0 प्र0 मानवाधिकार आयोग के अध्यक्ष न्यायमूर्ति गुलाब गुप्ता का कहना है कि सरकारें इनके प्रति गंभीर नहीं है जबकि मानवाधिकार हनन के मामले देश भर में बढ़ रहे हैं। एमनेस्टी इण्टरनेशनल की रिपोर्ट के अनुसार 1985 से 1991 के बीच पुलिस और सुरक्षाबलों की हिरासत में 415 लोगों की मौतें, दर्ज की है और इन मामलों के साक्ष्य है कि पीड़ित लोगों को जिनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल हैं, बेदर्दी से पीटा गया था या फिर यातना देकर मार डाला गया था। उनमें से कितनों को न्याय मिल पाता है यह तो हम सब अच्छी तरह जानते हैं।

पिछड़े क्षेत्रों में यह स्थिति और भी भयावह है जहाँ हिरासत में मौत, किसी स्त्री से बलात्कार उसे जलाकर मार डालना, बाल श्रमिक, बंधुआ मजदूरी अन्य तरीकों से उत्पीड़ित करना यह सारे मामले रोज ही सुनने या पढ़ने को मिलते रहते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र भी पिछड़े क्षेत्रों में आता है। यहाँ अधिकतर लोग अशिक्षित है जिसके कारण मानवाधिकारों की स्थिति यहाँ और भी ज्यादा भयावह है। बंधुआ मजदूरों का पूर्णतः उन्मूलन हो चुका है। परन्तु यहाँ यह मामले आज भी देखे जा सकते हैं। पुलिस कस्टडी में मौत तो आम बात है। डाकुओं द्वारा अपहरण रोज ही होते रहते हैं। जिन डाकुओं के इंटरव्यू पत्रकार आये दिन देते रहते हैं उन्हें हमारी पुलिस नहीं पकड़ पाती यहाँ किसी महिला

की बेइज्जती भी कोई बहुत बड़ी बात नहीं जहाँ अधिकारों के नाम पर केवल हमारा हनन होता जा रहा है। एक हाथ से हमें अधिकार दिये जाते हैं तथा दूसरे हाथ से अधिकार छीन लिए जाते हैं। हालांकि सरकार जांच की घोषणायें करती है। अपराधिक अभियोग लगाये जाते हैं परन्तु जांच में अधिकतर कुछ नहीं निकलता क्योंकि न्याय के लिए जो अधिकारी बैठे हैं। उनकी अपनी पृथक समस्यायें हैं उनसे जो ईमानदारी की कल्पना की जाती है। वह उसमें खरे नहीं उतरते और यहाँ भी यही परिदृश्य सामने आते हैं कि प्रभावशाली एवं साधन सम्पन्न व्यक्ति साधारण व्यक्ति पर भारी दिखाई देता है। और व्यवहारिक रूप में यही परिलक्षित होता है कि न्याय करने वाला जैसे स्वयं अन्याय करने के लिए बैठा है। इसके अतिरिक्त एक बात और समझ में आती है कि सिर्फ न्यायपालिका की स्वतन्त्रता और ईमानदारी बनाये रखने से काम नहीं चलने वाला बल्कि राज्य की अन्य संस्थाओं में भी जबावदेही और ईमानदारी की भावना होनी चाहिए। कानून के राज्य, न्यायपालिका की स्वतन्त्रता जैसे सिद्धान्तों के खोखलेपन का आज मानव को एहसास होता जा रहा है।

हाल ही में हुये नर्मदा बचाओ आन्दोलन, टिहरी बचाओ आन्दोलन और दिल्ली के सीलमपुर दंगों, गुजरात दंगों के बारे में दायर मानवाधिकार संगठनों की याचिकाओं के प्रति न्यायपालिका का रवैया हतोत्साहित करने वाला ही रहा है। इसी तरह 1984 में हुये दंगों में मारे गये सिक्खों के बारे में भारतीय कानून और न्यायपालिका में बढ़ते भ्रष्टाचार ने भी यह संकेत दे दिया है कि राज्य की

अन्य संस्थाओं की तरह इसमें भी घुन लग चुका है। इसके बावजूद भी इस दिशा में अब तक कोई कदम नहीं उठाया गया है। यहाँ पर यह बात भी अहम है कि हमने नागरिकों के नाम पर सारे अधिकार और कर्तव्य संस्थाओं को सौंप दिये हैं। मौलिक अधिकारों और मानवाधिकारों की रक्षा संस्थायें ही करेगी और वे ही उसकी व्याख्या करेगी। अतः संस्थाओं के पदों पर बैठे हुये व्यक्ति संस्थाओं के हितों को सर्वोपरि मानते हैं जिससे व्यक्ति गौढ़ हो जाता है और संस्था सर्वोपरि हो जाती है। जिससे व्यक्ति के अधिकारों और गरिमा को वरीयता मिलना भी मुश्किल हो जाता है और मानवाधिकारों का हनन जारी रहता है।

आज अभिव्यक्ति का अधिकार कुछ बड़ी कम्पनियों की मुट्ठी में कैद है, तो वायु तंरगों पर टी0 वी0 कंपनियों की दावेदारी है। व्यवसाय बड़ी कम्पनियों की मुट्ठी में है तो राजनीति पर कुछ गिरोहों का कब्जा है, शिक्षा कुछ शिक्षण संस्थाओं की रहम पर है तो स्वास्थ्य कुछ दवा कम्पनियों और अस्पतालों की मेहरवानी पर है आज हमारे अधिकार अन्य संस्थाओं पर आश्रित हो कर रह गये हैं।

मानवाधिकार चूंकि शक्तिशाली राज्य के विवश व्यक्तियों का अधिकार है इसलिए संस्थाओं को सुधारने और कानूनों को बदलते रहने के अलावा आज व्यक्ति को बदलने उसे गरिमा प्रदान करने और ताकतवर बनाने पर जोर देना होगा, क्योंकि मानव अधिकारों की रक्षा आखिर मानव ही करेगा। इसका तात्पर्य

है कि सैद्धान्तिक रूप से मानवाधिकारों में सर्वप्रथम व्यक्ति की अपनी सुरक्षा व सम्पत्ति की सुरक्षा आती है और जब इन्हीं की सुरक्षा नहीं हो सकती तो आगे के मानवाधिकारों के विषय में कोई भी परिकल्पना यथार्थ प्रतीत नहीं होती, यही कारण है कि गलत तरीके से राष्ट्र विरोधी कार्यों से और राष्ट्र विरोधी गतिविधियों में लिप्त व्यक्ति समाज के साथ कितना भी अन्याय एवं शोषण करके धनार्जन करे उसे न तो देश की कानून व्यवस्था से कोई भय होता है और न ही वहाँ के शासन तंत्र से।

यही कारण है कि आज देश में माफिया संस्कृति भी पनप रही है और जगह–जगह अराजकता और आतंकवाद के दर्शन हो रहे हैं। इसके चलते मानवाधिकारों की कल्पना करना दिवास्वप्न होगा। हालांकि और भी कई प्रश्न है जिनका प्रत्येक क्षेत्र के कानूनों और मानवाधिकारों से सीधा सम्बन्ध है, जैसे शिक्षा प्राथमिक स्तर पर सब को दिलाने की बात है पर आज भी उ0 प्र0 में शिक्षा का स्तर 57.36 प्रतिशत है। चिकित्सा के क्षेत्र में कुपोषण जैसी प्रारम्भिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का सवाल अन्धकार में दिखाई देता है। आज भी व्यक्तिगत असमानता, महिलाओं की असम्मानीय स्थिति, बालश्रम, समान न्याय न मिलना जेसे प्रारम्भिक अधिकारों की स्थिति भयावह है और यह सब पिछड़े क्षेत्रों में और ज्यादा बदत्तर स्थिति में है और इसके पीछे एक प्रमुख कारण है भारतीय संस्कृति की संरचना के विपरीत दर्शन पर तैयार कानून और न्याय व्यवस्था जो हमारे देश में निष्प्रभावी हो कर रह गयी है।आज मानवाधिकार

हनन के मामले सरकार से मांग करते हैं कि मानवाधिकार सम्बन्धी कानूनों को कठोरता से लागू किया जाये, कानूनों का उल्लघंन करने वालों को कड़े से कड़ा दण्ड दिया जाये, जिससे कोई भी, चाहे वह व्यक्ति हो या कोई संस्था, इन कानूनों का उल्लघंन करने से पहले कई बार सोचे।
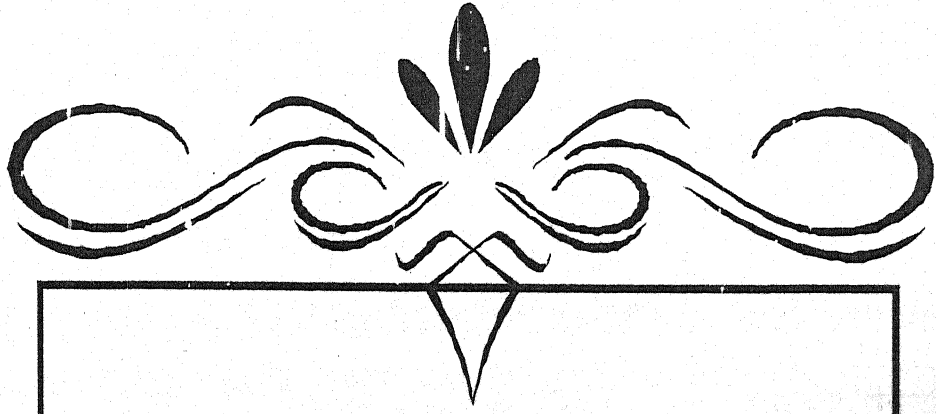
अध्याय- तृतीय

बुन्देली संस्कृति में निहित मानवीय मूल्यों की समीक्षा
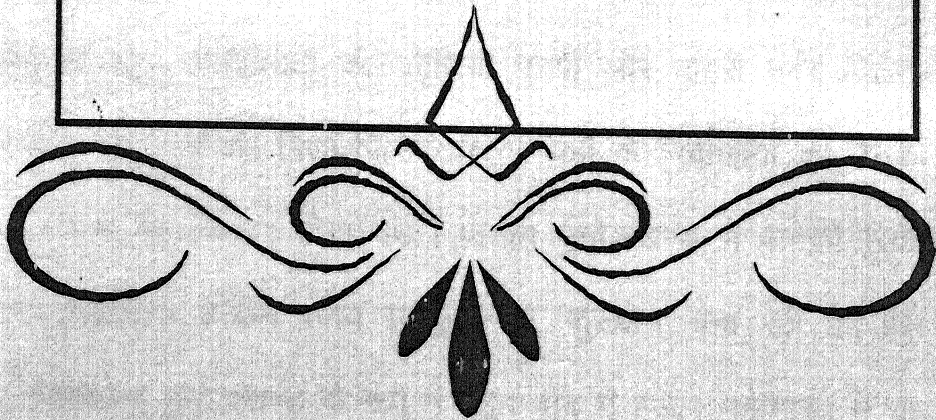
बुन्देली संस्कृति में निहित मानवीय मूल्यों की समीक्षा

बुन्देलखण्ड का सांस्कृतिक स्वरूप त्याग,उत्सर्ग और उच्च मानवीय परम्पराओं का पोषक रहा है। इसने मानवीय सृजनात्मकता के कई आकर्षक आयाम प्रस्तुत किये है लेकिन इन आकर्षक आयामों के अतिरिक्त एवं मानवीय मूल्यों के सम्मान के बाद भी इस अंचल में एक दबे कुचले समाज का चेहरा छुपा हुआ है, जिन्हें शिक्षा से वंचित रखा गया, उनके विकास को दरकिनार किया गया। है जातीय भेदभाव के कारण शोषण एवं अत्याचार किया गया है तथा बाल विवाह, सती प्रथा, कन्या हत्या आदि क्रूर विचारधाराओं से यह क्षेत्र ग्रसित रहा है लेकिन आज अधिकारों की रोशनी में दबे कुचले हुये समाज के कराहने की आवाजें जो सामन्ती व्यवस्थाओं के कारण दब कर रह गई थी ध्वनित हो रही हैं।

जैसा कि हम सब जानते हैं कि प्राचीन काल से ही बुन्देलखण्ड का कृषि एवं कुटीर उद्योगों में महत्वपूर्ण स्थान रहा है जिसके परिणामस्वरूप भावुकता और शांतिप्रियता की प्रवृत्तियाँ पनपीं और बाहरी बर्बर विजेताओं को आक्रमण का निमन्त्रण मिला जिसके कारण यहाँ के निवासियों को उनकी क्रूरता एवं शोषण का शिकार होना पड़ा। प्राचीन बुन्देलखण्ड में अनेकों रियासतें थीं एवं बुन्देलखण्ड प्राचीन समय से युद्धों का 'कुरूक्षेत्र' बना रहा है। इस अंचल का नामकरण बुन्देलखण्ड के रूप में बहुत बाद में हुआ। महाभारत में यह अंचल चेदि राज्य के नाम से जाना जाता था। कहा जाता है कि श्रीकृष्ण के हाथों

मारा गया शिशुपाल इसी चेदिवंश से सम्बन्धित था। बुन्देलखण्ड में आदिवासी गोंड लोग रहा करते थे जिससे इसका नाम गोंडवाना भी रहा। बुन्देलखण्ड के इतिहास के सर्वप्रथम लेखक मुंशी बृजलाल ने 1876 में लिखा है कि 650 वर्ष पूर्व यह क्षेत्र गोंडवाना कहलाता था।

लेकिन बुन्देलखण्ड का ज्ञात इतिहास चंदेल वंशीय राजाओं से ही शुरू माना जा सकता है इस वंश का सबसे प्रतापी राजा जैज्जाक या जयशक्ति था। इसी के नाम से यह क्षेत्र जैज्जाक मुक्ति या जयामुक्ति कहलाया। मदनपुर के सन् 1182 ई0 के एक लेख से पता चलता है कि दिल्ली के पृथ्वीराज चौहान और चंदेल राजा परमाल के युद्ध के समय भी यह अंचल जैज्जाक भुक्ति या जयशक्ति कहलाता था। मदनपुर के शिलालेख में लिखा है– *'अखण्ड राजस्य पौत्रेण श्री सोमेश्वर सुमन, जैज्जाक भुक्ति देशोपम् पृथ्वीराजेन सोमिता।'*[1]

चंदेलों के अधिकार क्षेत्र में धसान नदी के पूर्व और विंध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम का इलाका था। यह राज्य उत्तर में यमुना नदी तक तथा दक्षिण में केन नदी के उद्गम स्थल तक फैला था महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में और अजयगढ़ इसके पूर्व में है। इस प्रदेश में आजकल का बांदा और हमीरपुर जिला तथा चरखारी, छतरपुर, विजावर, जैतपुर, अजयगढ़ और पन्ना जनपद आदि थे। बाद में चंदेलों ने अपनी सीमा बेतवा तक बढ़ा ली थी। चंदेलों के सर्वाधिक प्रतापी राजा जयशक्ति वाकपत का ज्येष्ठ पुत्र था। प्राप्त शिलालेखों में चंदेल राजाओं में नन्नकदेव के पहले वाले राजाओं की कोई

---

[1] बुन्देलखण्ड का इतिहास– प्रतिपाल सिंह

जानकारी नहीं मिलती है। खजुराहो के चतुर्भुज मंदिर में एक और शिलालेख मिला है। यह वि0 स0 1011 में उत्कीर्ण हुआ है। इसमें चंदेल राजाओं की वंशावली नन्नकदेव से दी हुई है।

चंदेलों के समय का उल्लेखनीय दौर तब तक का है जब परमाल राजा थे और उनकी राजधानी थी महोबा। परमाल के समय बहुत युद्ध हुए जिसमें खास बात यह थी कि वे राजा परमाल द्वारा नहीं लड़े गये। वह साहसहीन राजा कहा जाता है और उसके वंशीय आल्हा ऊदल ने ही सारी लड़ाइयाँ लड़ी। आल्हा ऊदल जस्सराज उर्फ हसरथ के पुत्र थे और इनका समय 1167 ई0 से 1182 ई0 तक रहा। आल्हा के समय चंदेल राजाओं के पास 8 किले थे– बारीगढ़, कालिंजर, अजयगढ़, मानियागढ़, मड़प्पा, मौदहा, और गढ़ा जबलपुर। राजा परमाल के साले का नाम माहिलदेव था जो परमाल से वैमनस्य रखता था। आल्हा सदैव परमाल के विश्वासपात्र रहे और उन्होंने अंत तक चंदेलों की सहायता की।

कहा यह जाता है कि चंदेल राजा परमादिदेव की सेना में जस्सराज और बच्छराज नाम के दो भाई उच्च पदों पर तैनात थे। जिनका विवाह कालिंजर दुर्ग के पूर्व आधुनिक बांदा और सतना जिले की सीमांत पर स्थित युवतियों से सम्पन्न हुआ, इनसे उत्पन्न होने वाली सन्तानें 'बनाफर' के नाम से पुकारी जाने लगी जिन्हें कुलीन ठाकुर हेय मानते थे। जस्सराज के दो पुत्र आल्हा ऊदल थे और बच्छराज के दो पुत्र मलखान और सुलखे थे। आल्हा ऊदल की मां का नाम देवल था। बचपन में ही आल्हा ऊदल के पिता

जस्सराज का बध कर दिया गया था। इसके बावजूद भी आल्हा ऊदल बहुत शूरवीर होकर निकले। उन्होंने परमाल की सेना में शामिल होकर दिल्लीपति पृथ्वीराज को परास्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की जिसकी वजह से पृथ्वीराज को अपनी पुत्री बेला का विवाह परमाल के बड़े लड़के परमजीत से करना पड़ा। परमाल की पत्नी महारानी मल्हना इस वजह से आल्हा ऊदल की अत्यंत कृतज्ञ हो गई और उनकी वीरता में वृद्धि के लिए उन्होंने देवी की विशेष आराधना करा दी। मल्हना के भाई माहिल को निम्न जाति के बहादुरों की परमार के दरबार में प्रतिष्ठा हजम, नहीं हुई और उसने अन्य कुलीन क्षत्रियों से मिलकर आल्हा ऊदल के खिलाफ षड्यन्त्र शुरू कर दिये। बहकावे में आकर परमाल ने भी आल्हा ऊदल को देश निष्कासन का दण्ड दे डाला। दुःखी होकर आल्हा ऊदल ने कन्नौज के राजा जयचन्द के यहाँ शरण ले ली। उधर पृथ्वीराज ने पुनः परमाल पर धावा बोल दिया और जब महोबा का राजा खतरे में पड़ गया तो महारानी मल्हना ने आल्हा ऊदल की माता देवल को महोबा की स्थिति के सम्बन्ध में करूणाजनक पत्र कन्नौज भेजा। पत्र का मजमून सुनकर देवल का दिल पसीज गया और उन्होंने अपने बेटे को मातृभूमि की रक्षा के लिए सारे गिले शिकवे भूलकर महोबा जाने को प्रेरित किया।

आल्हा ऊदल उस समय रणभूमि में पहुँचे जब परमाल के पुत्र बृम्हजीत का वध पृथ्वीराज की सेना के हाथों होने वाला था। लेकिन आल्हा ऊदल ने अपने पराक्रम के बल पर युद्ध की बाजी पलट दी और एक बार फिर पृथ्वीराज को करारी शिकस्त देकर महोबा का गौरव बढ़ाया। ईश्वरदत्त प्रतिभा वाले

महाकवि जगनिक ने देवल को अपनी धर्म बहिन माना था और उन्होंने आल्हा खण्ड लिखकर आल्हा ऊदल की कहानियों को बुन्देलखण्ड के जन जन में अमर कर दिया। तथा बनाफरों पर से नीच कौम का धब्बा हटा दिया। बुन्देलखण्ड का इतिहास इस मामले में अनूठा है कि इसने जननायकों को राजनायकों पर वरीयता दी है। इस प्रतिमान को तोड़ा कि नायक का दर्जा केवल सवर्णों के लिए आरक्षित है। बुन्देलखण्ड में तमाम राजवंश हुए लेकिन किसी को इतना याद नहीं किया जाता जितना यहाँ आल्हा ऊदल पर लोग गर्व करते हैं, उन पर श्रद्धा रखते हैं उनसे साहस और स्वाभिमान की प्रेरणा लेते हैं।

सुप्रसिद्ध मार्क्सवादी चिंतक डा0 जयदयाल सक्सेना का मत इस सम्बन्ध में दृष्टव्य है जो इस प्रकार है– आल्हा को अमरत्व का वरदान किसी देवी–देवता, ऋषि मुनि या भगवान ने नहीं दिया। उन्हें जनता जर्नादन जिसके उद्धार और मुक्ति के लिए आल्हा ने अपनी वज्र जैसी छाती पर काल के कठिन आघात आजीवन अविचिलित रहते हुए सहे उस जनता ने उन्हें अमर बनाया है। समाज में दलितों को सम्मानित तथा न्यायोचित स्थान दिलाने के अपराध में आल्हा के परिवार को बनाफर (वन में पलने वाले असभ्य जंगली प्राकृतजन) कहकर अपमानित, किया गया ओछी है। इतना ही नहीं उनका सामाजिक बहिष्कार भी कर दिया गया।

'इनका पानी कोऊ न पीवे

ओछी जाति बनाफर क्यार

ऐसे अपमानों से आल्हा विचलित नहीं हुए।

उल्लेखनीय है कि बुन्देलखण्ड में आज भी यह किवदंती है कि आल्हा की मौत नहीं हुयी, वे आज भी सशरीर जीवित है। जयदयाल जी ने आल्हा के समय की सामाजिक दशा की चिंता करते हुए लिखा है कि 'आल्हा जिस क्रांति पथ पर चले वह सीधा, सपाट, स्पष्ट और सुगम न था। उन्हें विपरीत परिस्थितियों में कंटकाकीर्ण मार्ग को नापना पड़ा। डा० जय दयाल सक्सेना के अनुसार उनके युग में हिन्दू समाज वर्ण व्यवस्था के नाम पर अन्याय तथा उत्पीड़न मूलक जातीय पिरामिड था। जिसके शीर्ष पर प्राचीन ऋषियों के ज्ञान, विज्ञान, शस्त्र और शास्त्रज्ञान की परम्परा से पूरी तरह कटे हुए ब्राह्मण थे। धर्म इनके हाथ में पड़कर अन्याय, शोषण, कूपमण्डूकता, अंधश्रद्धा और विश्वास, अकर्मण्यता, जड़ता और प्रतिगामिता का उपकरण बन कर रह गया था। यह वर्ण स्वयं तो दंभी, पाखण्डी और पिछड़ा था ही अपनी स्वार्थ साधना और अन्याय को छुपाने के लिए शेष जनता को भी अज्ञानी, मूढ़, अशिक्षित बनाये रखता था।

जातीय पिरामिड के दूसरे स्थान पर क्षत्रिय थे। वे लगभग निरक्षर, अशिक्षित, जातीय अहंकार में डूबे थे तथा चाटूकार दरबारियों से घिरे आदमकालीन जड़ मानसिकता से जकड़े थे। जहाँ महिलाओं का भी कोई सम्मान न था, कन्या को जन्मते ही मार दिया जाता था। प्रतिगामी अन्याय मूलक व्यवस्था एवं तत्सम्बन्धित हानिकारक ढकोंसलों कर्मकाण्डों की रक्षा करना ही इनका राजधर्म था। अज्ञानता, कूपमण्डूकता तथा धर्मयुद्ध के मूर्खतापूर्ण नियमों ने क्षत्रियों की सामंती सेनाओं को निर्बल निकम्मा तथा उत्पीड़न का

शस्त्र बना दिया था। विदेशी आक्रांताओं के सामने यह असहाय तथा अप्रभावी प्रमाणित हुई।

तीसरे स्थान पर वैश्य या व्यापारी थे जो डांडी मारना (घटतौली) तथा सूदखोरी को ही व्यापार समझता था। किसान तथा उद्योगों के विकास, शोध की दिशा में इसकी कोई रूचि नहीं थी। शिल्पियों का अधिकतम दोहन करना ही इनकी व्यापारिक कुशलता थी। यह वर्ग धर्मान्ध, कूपण्डूक, जड़, कर्मकाण्डों का घोर प्रतिगामी था। ये लोग लक्ष्मीपति के स्थान पर लक्ष्मी वाहन बन गये थे। वे धन से जीवित रहने के स्थान पर धन के लिए जीवित रहते थे। जातीय पिरामिड के सबसे निचले स्तरों पर अगणित ऊंच नीच जातियों में विभाजित शूद्र थे। यह वर्ण पूरी तरह से अज्ञान, अशिक्षा, संस्कृतिविहीन, पिछड़ी मानसिकता में डूबा हुआ निर्धनता, अन्याय अत्याचार की चक्की में पिसा जाता था और पशुवत जीवन जीने को अभिशप्त था।

सभी वर्णों की महिलायें द्वितीय श्रेणी की नागरिक थीं। द्विज वर्णों की नारियाँ सामाजिक आर्थिक क्रियाकलापों से दूर कर दी गई थीं। उसका कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं रह गया था। वे किसी की पुत्री, पत्नी या माँ के रूप में ही जानी जाती थी। उनकी स्वतन्त्रता पूरी तरह प्रतिबंधित थी इसके विपरीत शूद्र नारियों की स्थिति अपने समाज में तुलनात्मक दृष्टि से अच्छी थी। वे सामाजिक तथा आर्थिक श्रम में पुरूषों का साथ देती थीं। उनकी राय ध्यान से सुनी जाती थी। अपेक्षाकृत उन्हें पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त थी। साथ ही कटु सत्य था कि 'सामंती उत्पीड़न का सबसे अधिक शिकार उन्हीं को बनाया जात था।'

'आल्हा का जन्म इसी प्रदूषित समाज में हुआ था। वे अपने जीवन में जिन उदात्त विचारों और प्रेरणादायी कार्यों के ध्वजावाहक बने उनके लिए उन्हें किसी देवी–देवता से वरदान या आर्शीवाद नहीं मिला था। सौभाग्य से आल्हा को ऐसे तीन पथ प्रदर्शक मिले जिन्होंने उन्हें मुक्ति संघर्ष का अमर योद्धा बना दिया था। आल्हा की मां देवल कबीलाई आदिवासी समाज की बेटी थी। उनका कबीला आर्थिक सामाजिक विषमता और वर्ग विभाजन के अभिशाप से मुक्त था। कबीले का मुखिया सामान्य रूप से मुख्य होता था इससे अधिक कुछ नहीं। राजा परमाल द्वारा पुरस्कार में दी गई राजनर्तकी लाख पातुर (वैश्या) को देवल ने वैश्यावृत्ति से मुक्त ही नहीं किया बल्कि अपनी सहेली बनाकर बराबरी का दर्जा भी दिया। आल्हा ने सामाजिक आर्थिक न्याय का पहला पाठ अपनी माता से ही सीखा। तथा आजीवन आल्हा की प्रेरक ऊर्जा बनी रहीं। आल्हा की पत्नी सुनवां ने देवर ऊदल को माता देवल का महत्व बताते हुए कहा था 'माता देवल सी मिली है, न चाहे लेओ जनम हजार'। ऐसी माता ने आल्हा को आल्हा बनाया था।

और जब आल्हा और उनके चचेरे भाई मलखान लगभग चार साल के अबोध शिशु थे और दोनों के छोटे भाई ऊदल और सुलखान अपनी अपनी माताओं के गर्भ में थे उस समय मांडी (वर्तमान में माण्डु मालवा में) के युवराज करिगी राय (करिया) ने छलपूर्वक आल्हा के पिता और चाचा की हत्या कर दी थी। आल्हा के पिता के घनिष्ठ मित्र मूलतः ईरान या मध्य एशिया के घोड़ों के व्यापारी ताल्हन सैय्यद अपना मित्र धर्म निर्वाह करने के लिए अपने बनारस के

व्यापारिक प्रतिष्ठान को छोड़कर महोबा आ गये थे। सैय्यद ने आल्हा और उनके भाईयों का लालन–पालन शिक्षा दीक्षा का सैन्य प्रशिक्षण का दायित्व अपने ऊपर लिया। सैय्यद ने आल्हा को अल्लाह की नियामत समझकर उसका नाम आल्हा रखा। उनके चचेरे भाईयों के नाम के साथ खान जैसा प्रतिष्ठित उप नाम जोड़कर उन्हें मलखान और सुलखान बनाया।

सैय्यद ने आल्हा के बालपन में हिन्दू समाज की ऊँच नीच आधारित, हृदयहीन शोषक जड़जाति की व्यवस्था की प्रतिगमिता स्पष्ट की। अपने सैनिक प्रशिक्षण प्रतिष्ठान में उन्होंने दलित जातियों के नवयुवकों को सैनिक प्रशिक्षण देकर कुशल सेनानी बनाया। जिन्होंने मांडी विजय अभियान में अपनी सार्थकता सिद्ध कर दी। सैय्यद ने आल्हा के हृदय को इस्लामी भाईचारे और सामाजिक समरसता की ज्योति से आलोकित किया। कृतज्ञ आल्हा ने अपने चाचा सैय्यद को देवत्व प्रदान कर सम्मानित किया। आज भी बुन्देलखण्ड के गांव–गांव में सैय्यद पूजे जाते हैं। सैय्यद से ही प्रेरित होकर आल्हा दलितोद्धार के कठिन मार्ग पर सहजतापूर्वक चल सके।

आल्हा के पिता की जागीर को लूटकर करिया अन्य चीजों के साथ वैश्यावृत्ति से देवल द्वारा मुक्त लाखा को भी बलपूर्वक ले गया था उसने लगभग 16 वर्षों तक लाखा को मांडों की राज सभा में नचाया और वैश्या बनाकर रखा। मांडों में इतने लम्बे समय तक रहने के पश्चात् भी लाखा अपनी मातृभूमि और देवल के उपकार को नहीं भूली। आल्हा ने जब सैय्यद के नेतृत्व में मांडी पर आक्रमण किया तब लाखा ने उनकी बहुत मदद की। गुप्त सूचनायें दी पनिहा

सेतो (जलस्रोतों) को प्रदूषित कर मांडो की सेना को निष्क्रिय बना दिया। लाखा ने असहाय नारी की अद्भूत क्षमता सूक्ष्म तथा प्रत्युत्पन्न बुद्धि का परिचय आल्हा को दिया। लाखा से ही प्रेरणा पाकर आल्हा ने नारी मुक्ति का शंखनाद दिया आल्हा की माता ने लाखा को वैश्यावृत्ति से मुक्त किया और आल्हा ने उसे लाखा मौसी का आदरणीय पद दिया।

डा0 जयदयाल सक्सेना ने आल्हा वृत्तांत को अपने विवेक का प्रयोग करते हुए काफी कुछ यथार्थवादी स्वरूप प्रदान किया है जिससे आल्हा का एक नया चेहरा सामने आया है। यथा रण चातुर्य और कुशल नेतृत्द से संचालित मांडो विजय अभियान ने आल्हा और उनकी सेना की कीर्ति में चार चाँद लगा दिये। महोबा में चंदेल नरेश परमाल ने प्रभावित होकर आल्हा को अपने राज्य का महामंत्री बना दिया और उनके छोटे भाई ऊदल को प्रधान सेनापति के पद पर प्रतिष्ठित किया। मांडो की विजेता दलित–जातीय सेना को उन्होंने महोबा की स्थायी सेना बनाया। इसके प्रमुख सेनानी तत्कालीन समाज द्वारा उपेक्षित, पद दलित, शस्त्र और शास्त्र से वंचित छोटी जातियों से आये थे। उनमें प्रमुख थे– लला तमोली, धनुवा तेली, रूपन बारी, मदन गड़रिया, खुनखुन कोरी, धन्ना गूजर, चन्दर बढ़ई, हल्ला चमार जैसे योद्धा, किन्तु आल्हा ने दलितोद्वार की धुन में द्विजातियों की अवहेलना नहीं की उनमें कुशल तथा विश्वासी साथियों को सेना में कुछ महत्वपूर्ण पद दिये। देवा पंडित (देव कर्ण) जैसे ब्राह्मण आल्हा की सेना में मार्ग दर्शक थे उरई के युवराज परिहार वंशी क्षत्रिय अमई महोबा के

प्रधान सेनापति ऊदल के विश्वस्त सहयोगी थे। मुसलमान ताला सैय्यद और उनके 10 बेटे तो परम विश्वासी थे ही।

उस समय तत्कालीन सामंती सेनायें पंडितों ज्योतिषियों के अंध विश्वासी कर्मकाण्डों में बुरी तरह जकड़ी हुई थी। उन्हीं से पूछकर सैन्य अभियान गठित किये जाते थे। सगुन, मुहूर्त आदि का महत्व था जो प्रायः घातक प्रमाणित होते थे। आल्हा ने अपनी सेना को इन बेड़ियों से मुक्त किया। उन्होंने स्पष्ट किया 'सगुन विचारे बनिया बांटू जो व्यापार बज को जायें और जब दुश्मन पे हल्ला बोले तमई समय है बोई सगुन है।'

आल्हा के प्रयास का महत्व इस कारण है कि उन्होंने कालातीत परम्पराओं और रूढ़ियों से हटकर तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल नये तथा क्रांतिकारी कदम उठाये। सेना को एक विशेष जाति (क्षत्रिय) के चंगुल से मुक्त कर सार्वजनिक स्वरूप प्रदान किया। समाज के दलित उपेक्षित वर्गों को मुख्यधारा से जोड़कर उनमें बोध उत्पन्न किया कि राज्य उनका भी उतना ही है जितना की राजा या अन्य उच्च जातियों का। वे भी राज्य की रक्षा करने में उतने ही सक्षम है जितने की अन्य।

जयदयाल जी ने आल्हा द्वारा राज्य की रक्षा और युद्ध में आल्हा द्वारा महिलाओं को दी गई भूमिका का बहुत ही सशक्त वर्णन किया है उनके अनुसार मांडों अभियान के दौरान लाखा के बुद्धि चातुर्य तथा साहस से प्रेरित होकर महिला गुप्तचर वाहिनी का गठन किया गया जबकि उस समय पुत्री को जन्मते ही मारने की प्रथायें प्रचलित थीं। शूद्र जातियों की महिलाओं के साथ–साथ

उन्होंने द्विजों और उच्च पदस्थ अधिकारियों की युवा बहू बेटियों को भी गुप्तचर वाहिनी में सम्मिलित होने को प्रोत्साहित किया। अपने घर से ही उदाहरण प्रस्तुत किया, आल्हा की पत्नी सुनवां गुप्तचर सेना में सम्मिलित हुई और आगे चलकर सेना की नेत्री बनी। उन्होंने ऐसे काम कर दिखाये जो आल्हा की प्रशिक्षित सेना भी नहीं कर सकी थी। ऊदल को उनके विवाह अभियान के समय शत्रु के बंदी गृह से निकलवाने इन्दल (आल्हा के पुत्र) हरण के उपरांत आल्हा द्वारा ऊदल को दिये गये मृत्युदंड को निष्फल करने, इंदल को खोजने और गाज युद्ध के दौरान शत्रु की अपराजयेता को ध्वस्त करने में सुनवां की गुप्तचर वाहिनी ने निर्णायक भूमिका निभाई। सुनवा के इन अद्‌भुत कारनामों ने अंधविश्वास ग्रसित रजवाड़ों में धारणा उत्पन्न कर दी कि सुनवां जादूगरनी है। दृष्टव्य है कि गुप्तचर वाहिनी में सुनवा का छदम नाम मछला था।

प्राचीन समय में सामंती शासन व्यवस्था प्रचलित थी जहाँ पूरे के पूरे गाँव की जमीन पर सामंतो का कब्जा था और गाँव के लोग मजदूर के रूप में कार्य करते थे, बधुआ मजदूरों की बहुतायत थी। वहीं आल्हा ने सामंतों की जागीरें जब्त कर ली, भूमि कृषकों में वितरित की, शिल्पियों को बिचौलियों के दोहन से मुक्त किया। उन्होंने अंधविश्वास, अंध श्रद्धा, कठमुल्लापन के गढ़, मन्दिरों, मठों की लगी भूमि की आय विद्या मंदिरों को आवंटित कर दी। राज्य के उत्तर पश्चिम तथा दक्षिण पूर्व सीमान्त पर विद्या के 2 बड़े–बड़े केन्द्र स्थापित किये। वहां विद्या की देवी मां शारदा का मंदिर बैरागढ़ तथा मैहर में स्थापित किये।

दूसरी ओर वर्तमान में यह अंचल जिन बुंदेला क्षत्रियों के नाम से बुन्देलखण्ड के रूप में प्रसिद्ध है उनकी उत्पत्ति विषयक कई मिथकीय व्याख्यान प्रचलित हैं जे विश्वसनीय प्रतीत नहीं होते। पर ओरछा गजेटियर के संकेतों व कुछ अन्य विवरणों से यह प्रकाश में आता है कि हरदेव नामक गहरवार क्षत्रिय खैरागढ़ से एक बांदी लाकर ओरछा के समीप बस गया उसी के पुत्र बांदेला अथवा बुन्देला कहलाये। यह फारसी शब्द से बना है जिसका अर्थ दासी या गुलाम होता है इसी क्रम में विभिन्न मतों के अध्ययन से यही निष्कर्ष निकलता है कि वीरभद्र गहरवार के पुत्र पंचमदेव के समय 1256 ई0 के पश्चात् उसकी संताने अपने को बुंदेला कहने लगी। बुंदेला वंश में कई राजा हुए लेकिन इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम तीन है जिन्होंने बादशाह की अधीनता में रहने की बजाए अपनी रियासत खुद मुख्तार और आजाद रखने के लिए कठिन संघर्ष कियां इनमें पहला नाम है वीर सिंह जूदेव का। उनके पिता मधुकर शाह ने ओरछा का राजपाट उनके भाई रामशाह को दिया था जबकि वीर सिंह जूदेव को बरौनी की जागीर दी गई थी। वीर सिंह ने अपने पराक्रम से पावाया, तोमरगढ़, नरवर, कोलारस, बरेछा, करेहरा, हथनैरा, भांडेर और ऐरच सहित ग्वालियर क्षेत्र के अधिकांश हिस्से को अपने कब्जे में कर लिया। वीर सिंह अकबर बादशा के समकालीन थे उनकी ताकत बढ़ती देख अकबर ने ओरछा के राजा रामशाह व ग्वालियर के राजा आसकरन के साथ मुगल सेना भेजकर इन पर आक्रमण करा दिया। वीर सिंह के पास इतनी सेना नही थी कि मुगल सेना का मुकाबला कर पाते। इसलिए उन्होंने छापामार युद्ध का सहारा लिया। बाद में

युद्ध हुआ जिसमें रामशाह के पुरोहित मायाराम और उसके भाई मारे गये। इस कारण से रामशाह और आसकरन वापस आ गये।

उधर मुगलों में घरेलू जंग छिड़ गयी। अकबर के बेटे सलीम ने अपने पिता के खिलाफ बगावत कर दी। इस दौरान वीर सिंह बादशाह से मिलने जा रहे थे पर प्रयाग में सलीम के होने की खबर मिलने पर उन्होंने पहले शहजादे से भेंट की और उन दोनों के बीच ऐसी जमी की वीर सिंह शहजादे के पाले में खड़े हो गये और शहजादे के कहने पर उन्होंने अबुल फजल का सिर काटकर शहजादे को भेंट किया। अकबर ने वीर सिंह को पकड़ने के लिए भारी सेना भेजी पर सलीम ने वीरसिंह को लड़ने के लिए मना किया तो वे बरौनी छोड़कर दतिया चले गये पर उन्हें वहाँ भी चैन नहीं लेने दिया गया। दतिया में घेरा देखकर एरच गये वहाँ भी इन्हें शाही सेना से युद्ध करना पड़ा। भागते हुए वह फिर दतिया लौटे जहाँ उन्हें सलीम मिल गये। वह दोनों एक दूसरे से मिलकर खुश हुए। परन्तु तभी अकबर ने सलीम को आगरा बुला लिया और वीर सिंह ने संग्राम सिंह को हराकर भाण्डेर पर कब्जा कर लिया और जब सलीम बादशाह बना तो उसने वीर सिंह जूदेव को बुन्देलखण्ड का पूरा राज्य और बहुमूल्य परितोषक दिये। वीर सिंह ने खानदान की टकराहट शांत करने के लिए रामशाह को फिर बहका दिया गया और वह कैद हो गया। जहाँ वीर सिंह ने ही उसे छुड़ाया और जहाँगीर ने उसे चंदेरी और बानपुर का राज देकर दोनों में मेल करा दिया। वीर सिंह ने ओरछा का नवीनीकरण कराया और उसका नाम जहाँगीरपुरी रखा।

जहाँगीर की मौत के बाद शाहजहाँ की बादशाहत को वीरसिंह ने मानने से इंकार कर दिया। तब शाहजहाँ ने वीर सिंह को पकड़ने के लिए सेना भेजी पर वह पराजित हुई। दुबारा स्वयं बादशाह ने ही हमला किया और उन्हें हार का मुँह देखना पड़ा। अंतोगत्वा वीरसिंह की मृत्यु के पश्चात् उनके बेटे जुझार सिंह को ओरछा का राजा स्वीकार कर संधि कर ली। इस तरह ओरछा स्वतंत्र राज्य बना। परन्तु बुन्देलखण्ड क्षेत्र के पिछड़ा होने का मुख्य कारण यहाँ आये दिन होने वाले आक्रमण भी थे बुन्देला सूरमाओं में दूसरा प्रमुख नाम चंपतराय का था। जब शाहजहाँ के बीमार पड़ जाने पर उसकी विरासत के लिए शहजादे भिड़े तब चंतपराय ने औरंगजेब का साथ दिया और उसने बादशाह बनने पर चंतपराय को यमुना से ओरछा तक का प्रदेश और 12 हजारी मनसबदारी का पद दिल्ली दरबार में दिया। परन्तु बाद में उन्होंने यह सब वापिस कर उसी की अधीनता में रहना अस्वीकार कर दिया और स्वतन्त्रता का नारा गुंजाकर एक के बाद एक किले जीते। पर औरंगजेब उनके पीछे पड़ गया और अन्य राजाओं की गद्दारी की वजह से उन्हें और उनकी पत्नी को अपनी जान देनी पड़ी।

चम्पतराय के प्रतापी पुत्र छत्रसाल हुए जिनका बचपन बहुत कठिनाईयों में बीता पर उन्होंने अपनी माँ का जेवर बेचकर एक छोटी सी सेना गठित की और विजय पताका फहराई तथा बुंदेला राजाओं के एकीकरण का महती प्रयास किया। उसने औरंगजेब से जमकर टक्कर ली और औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुर शाह से संधि के बाद उनकी सत्ता को सबने स्वीकार किया। हालांकि मुहम्मद बंगस से युद्ध के समय जीवन मरण का सवाल आने पर बाजीराव पेश्वा

से उन्हें जो सहायता मिली उससे कृतज्ञ होकर उन्होंने अपने राज्य का एक तिहाई भाग बाजीराव को पुत्र मानकर मराठों को सौंप दिया।

महाराज छत्रसाल की बुन्देलखण्ड में अलग ही प्रतिष्ठा है। वे भोग विलास में लीन रहने वाले राजा नहीं थे। वे प्रजा के अभिभावक के दायित्व को निभाने के लिए इतने संवेदनशील थे कि लोकोपकार के लिए बड़े से बड़े बलिदान से पीछे नहीं हटते थे। कहा जाता है कि राजा ने जैतपुर में प्रजा के लिए एक तालाब बनवाया जिसमें पानी न आने के कारण जब किसी पण्डित ने बलि का परामर्श दिया तब उन्होंने किसी और को भेट चढ़ाने के बजाय अपनी ही पुत्रवधु का बलिदान कर दिया। महाराजा ने स्त्रियों के लिए पर्दा प्रथा की जकड़न भी समाप्त की। स्त्रियों को अपमानित करने वालों को कठोर दण्ड दिया। उनके दरबार में साधारण व्यक्ति भी अपनी फरियाद लेकर जा सकता था। उनके दरबार में प्रत्येक जाति से 2 प्रतिष्ठित व्यक्ति मनोनीत रहते थे। मुगलों से संग्राम करते हुए छत्रसाल को साम्प्रदायिक दुर्भावना, छू तक नहीं गयी थी। उन्होंने कई मुसलमानों को अपने यहाँ विशेष पदों पर नियुक्त किया। छत्रसाल ने जहाँ भव्य मंदिर बनवाये वही मुसलमानों के लिए मस्जिद बनाने की भी इजाजत दी। उन्होंने समाज में मानवीय मूल्यों की रक्षा की और उन्हें जीवित रखा।

इसी क्रम में लाला हरदौल का शौर्य भी प्रसिद्ध था उन्होंने बादशाह जहाँगीर को झेलम नदी के किनारे महावत खाँ की कैद से छुड़ाने के लिए अपनी जान पर खेलकर जो अभियान किया वह कथा बुन्देलखण्ड के गौरव की

अत्यन्त जाज्वल्यमान कड़ी है। लाला हरदौल का मिजाज अलग ही तरह का था उसे राजसी पहनावे और ठाठ–वाट से घृणा थी, इसी कारण वह एक छोटे से महल में रहते थे। जुझार सिंह प्रायः मुगल दरबार में रहते थे, और ओरछा का राजपाट लाला हरदौल ही चलाते थे। पीड़ित व्यक्ति की फरियाद सुनने के लिए लाला हरदौल हर समय तत्पर थे और प्रजा की परेशानियों का निवारण करते थे।

जब एरच के निकट शाहजहाँ के काल में बुन्देलों की सेना ने मुगलों की शाही सेना को धूल चटा दी तो बादशाह शाहजहाँ बुन्देलों को मिटाने पर तुल गया। उसने अपने भेदिये हिदायत खाँ को जो षडयंत्रों में सिद्धहस्त था राजा जुझार सिंह का विश्वास जीतने में लगा दिया। जब हिदायत खाँ का जादू राजा जुझार सिंह पर चल गया तो उसे एक दिन राजा जुझार सिंह की महारानी पार्वती और हरदौल के बीच सम्बन्धों को लेकर महाराज के मन में संदेह का विष घोल दिया। महाराज ने रानी से सफाई मांगी। रानी ने लाख कहा कि वह हरदौल को बेटे की तरह मानती है पर महाराज को विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने रानी को अपनी निष्कलंकता साबित करने के लिए हरदौल को भोजन में विष मिलाकर देने को मजबूर किया। लाला हरदौल को भी भोजन ग्रहण करने के पूर्व विष की बात ज्ञात हो गई लेकिन उन्होंने अपनी भाभी के सम्मान की रक्षा के लिए वह भोजन चुपचाप खाया और मृत्यु को गले लगा लिया। बाद में इस षडयन्त्र का भेद खुला, तब राजा को बहुत पछतावा हुआ।

लाला हरदौल इस बलिदान से बुन्देलखण्ड के जनजीवन में अमर हो गये। बुन्देलखण्ड के गाँव–गाँव में उनके चबूतरे बने है जहाँ उनकी पूजा होती है। कहा जाता है कि लाला हरदौल प्रेतयोनि में आज भी जीवित है और प्रत्यक्ष प्रकट भी होते हैं। कुल, वंश और जाति गौरव के मिथ्याभिमान को यहाँ कोई महत्व नहीं दिया गया। बुन्देला बांदी पुत्र होने के कारण वंश गौरव के कायल कुलीन क्षत्रियों में हेय दृष्टि से देखे जाते थे। वे उनसे रोटी बेटी का सम्बन्ध नहीं रखना चाहते थे लेकिन आल्हा ऊदल की तरह बुन्देला वीरों ने कुल गौरव की विरासत न होने के बावजूद अपने पुरूषार्थ और पराक्रम के बल पर स्वयं की मान्यता कराई और कुलीन क्षत्रिय उनसे अपनी बेटियों का सम्बन्ध करने को बाध्य हुए।

आल्हा ऊदल हो या वीर सिंह बुन्देला, चम्पत राय और छत्रसाल यहाँ के धरती पुत्रों ने अपनी मातृभूमि की शान और स्वतन्त्रता के लिए अदम्य जिजीविषा दिखाई और इस कारण उन्होंने राजपाट का विलास भोगने में रूचि नहीं ली बल्कि अपने पूरे जीवन को युद्ध मैदानों में झोंक दिया। अंध धार्मिकता, मनोरंजन और श्रृंगारिका को बुन्देली संस्कृति के अवयवों और तत्वों के रूप में प्रस्तुत करना न्याय संगत नहीं है। धरती पुत्रों को ही वास्तविक नायकों का आदर देने की यहाँ की परम्परा इस बात को सिद्ध करती है कि मानव मात्र यहाँ की संस्कृति के केन्द्र में है।

स्पष्ट है कि इस कारण यहाँ के लोक गीतों लोक–नृत्यों और कहावतों में मानवीय मूल्यों के प्रति झुकाव के कारण माधुर्य और लालित्य है। बलिदानों

के प्रति जनजीवन में सहज आकर्षण है लेकिन जब भी इस संस्कृति की आड में गुमराह करने के प्रयास हुए सती प्रथा बाल विवाह, कन्या हत्या जैसी कुरीतियों को जन्म मिला, स्त्रियों का अपमान हुआ। निम्न जाति के लोगों को हेय दृष्टि से देखा गया उनके साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया गया जबकि इस संस्कृति में स्त्री के अस्तित्व के प्रति संवेदनशीलता का संदेश निहित है। जाति के आधार पर कृत्रिम ऊँच नीच के नकारे जाने का भाव है। स्वतन्त्रता के मूल्यों की सर्वोपरिता है। यह संयोग नहीं है कि प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय अंग्रेजों को सबसे कठिन चुनौती बुन्देलखण्ड की धरती पर दी गई थी जिसका दण्ड उन्होंने बुन्देलखण्ड को अपने साम्राज्य में उन्नति के सभी अवसरों से वंचित करके दिया। बुन्देली संस्कृति मानवाधिकारों के स्रोत के रूप में ग्राह्य है बशर्ते इसका निरूपण सही तरीके से हो।
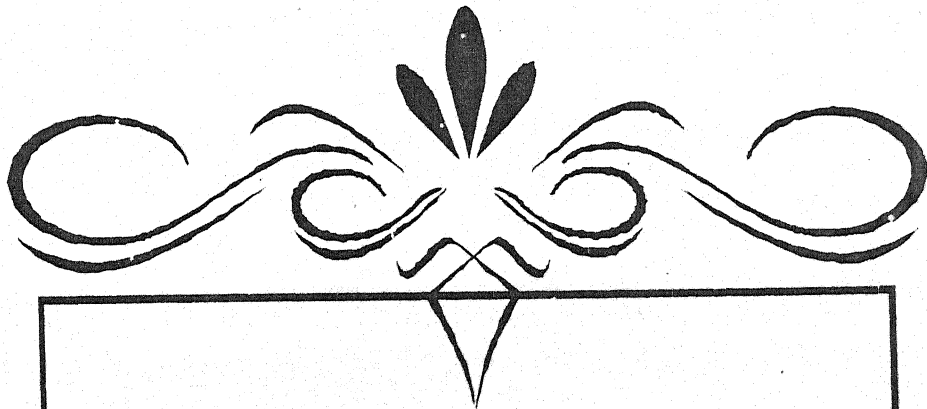
अध्याय- चतुर्थ

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मानवाधिकारों की समस्या के विभिन्न पहलू
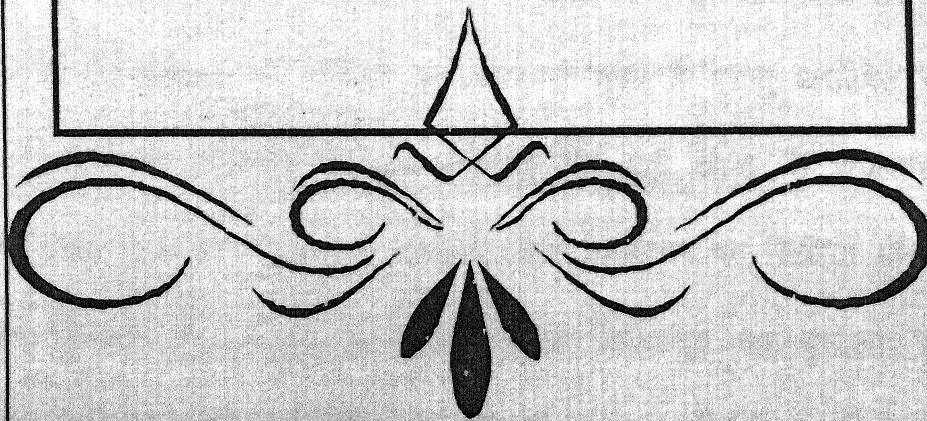
बुन्देलखण्ड क्षेत्र में मानवाधिकारों की समस्या के विभिन्न पहलू

सैद्धान्तिक स्तर पर बुन्देलखण्ड सामाजिक शालीन परम्परावादी आस्तिक समाज के रूप में प्रस्तुत किया जाता है परन्तु व्यवहारिक रूप में यहां मानवाधिकारों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है। मानव के प्रति शोषण एवं अत्याचार यहाँ प्रत्येक स्थान पर परिलक्षित हो रहा है जिसके अन्तर्गत मानवाधिकार हनन के कुछ महत्वपूर्ण पहलू विचारणीय हैं जो निम्न है–

(क) सामन्तवादी व्यवस्था :

बुन्देलखण्ड अपनी सांस्कृतिक विरासत शस्य श्यामला भूमि एवं गौरवपूर्ण इतिहास के कारण एक अलग पहचान रखता है। व्यवसाय की दृष्टि से यह कृषि प्रधान क्षेत्र है। यहाँ की सत्तर प्रतिशत जनसंख्या के जीवनयापन का साधन कृषि या कृषेत्तर कार्य हैं परन्तु कृषि क्षेत्र पर अधिकतर अधिकार पच्चीस से पैंतीस प्रतिशत लोगों का ही है। अधिकतर लोग खेतिहर मजदूर हैं। चूंकि बुन्देलखण्ड में आज भी राजसी एवं सामन्ती व्यवस्था के अवशेष मौजूद हैं और यहाँ पुराने समय के जमींदार और सामन्त आज भी देखे जा सकते हैं। घोषित रूप से तो सामन्तवादी व्यवस्था का अन्त हो चुका है परन्तु अघोषित रूप में बुन्देलखण्ड के परिदृश्य से ज्ञात होता है कि यहाँ आज भी राजशाही एवं सामन्तवाद को सहेज कर रखा गया है। चाहे ग्वालियर का सिंधिया परिवार हो राजा समथर हों, दतिया के राजा हों या ललितपुर का बुन्देला परिवार, जगम्मनपुर के राजा यह सब आज भले ही राजा न हो परन्तु उनके राजसी

वैभव में कहीं कोई कमी नहीं आयी है वरन उनका राजनीति में आज भी दखल रहता है। और जनता भी उनका सम्मान करती है। इसी प्रकार बुन्देलखण्ड के अधिकतर गांवों में लोगों से बात करने पर वहां के छोटे–छोटे राजा एवं जमींदारों के विषय में पता चलता है। वास्तव में वे राजा या सामन्त न रहे हों पर वह आज भी वही कहलाते है। ललितपुर जिले के तो प्रत्येक ठाकुर को आज भी राजा कहकर पुकारते हैं, जबकि समयानुक्रम में परिवर्तन के साथ–साथ स्थितियों में भी परिवर्तन आया है एवं शोषण के तरीके बदल गये हैं। आधुनिक सामन्तवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि (सवर्ण लोग, जमींदार नया पूंजीपति वर्ग) लोगों के कारण ही आज भी हमारे समाज में शोषण का क्रम जारी है।

सामन्ती व्यवस्था के परिणाम स्वरूप यहाँ खेतिहर मजदूरों की संख्या बहुत अधिक है। सरकारी नियमानुसार तो खेती गरीब किसानों को पट्टे के रूप में दी जाती है। परन्तु अधिकतर सामन्तवर्ग उसको फर्जी लोगों के, रिश्तेदारों के मन्दिरों, मस्जिदों के नाम करके बचाने में कामयाब हो जाते हैं और सौ, दो सौ बीघा खेती के मालिक बने रहते हैं। सैद्धान्तिक रूप में यह खेती कई लोगों के नाम पर होती है पर उसका उपभोग सामन्त परिवार द्वारा ही होता है। इस व्यवस्था में उत्पादन का साधन कृषि है और शोषक सामन्त वर्ग। सामन्त वर्ग चूंकि दूसरों का शोषण करने को अपना अधिकार मानता है और यह पुराने रीति को आज के परिवेश में भी सहेजना चाहता है यह दलित और दमितों को

अशिक्षित रखकर उन पर अनापेक्षित अत्याचारों को जारी रखना चाहता। जिनसे बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अखबार प्रतिदिन भरे रहते हैं।

उदाहरण स्वरूप बांदा जिले के बबेरू गांव में किसी सामन्त के खिलाफ गवाही देने के कारण उस परिवार की महिला को निर्वस्त्र करके उसका अपमान करना, किसी सामन्त की बात न मानने पर जालौन के हरदोई ग्राम में एक परिवार के लोगों की पिटाई की गई जिनमें महिलायें भी शामिल थीं। और तो और किसी पुरूष की गलती पर महिलाओं को प्रताड़ित करना भी यहाँ आम बात है। किसी मामूली सी गलती के लिये किसी निर्बल को इतना मारना कि वह मरणासन्न अवस्था में पहुंच जाये। इसी प्रकार माधौगढ़ की एक घटना के अनुसार किसी उच्चकुल की लड़की के निम्न कुल के लड़के से विवाह कर लेने के कारण उन दोनों की गोली मारकर हत्या कर देना ये सारे क्रूरतम अपराध हमारी नवीनतम सामन्तवादी व्यवस्था के परिचायक हैं। यह अपराध दर्शाते हैं कि बुन्देलखण्ड क्षेत्र के इन जिलों की क्या स्थिति है। सामन्ती परिवेश के कारण ही यहाँ शिक्षा की स्थिति भी इतनी दयनीय बनी हुई है। क्योंकि यहाँ के सामन्तों ने कभी यहाँ के लोगों को शिक्षित करना ही नहीं चाहा, वरन् उन्हें शिक्षा से वंचित रखा और इन निर्बल एवं गरीबों को मात्र थोड़ा सा अनाज या पैसा देकर स्वयं अतिरिक्त लाभ कमाते रहे। यहाँ मार्क्स का अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त लागू होता है। यहाँ जमींदारों तथा सामन्तों से नव पूंजीपति वर्ग का उदय हुआ और मजदूरों की स्थिति अत्यन्त दयनीय होती चली गई। अशिक्षा,

गरीबी, विकास की धीमी गति, अत्यधिक जनसंख्या वृद्धि के कारण भी मानवाधिकार हनन के मामलों में बेतहाशा वृद्धि हुई है। सर्वाधिक अत्याचारों एवं शोषण का शिकार कमजोर वर्ग एवं पिछड़ी जातियों के लोग ही होते रहे हैं।

भूमि पर इजारेदारी के मामले के कारण ही यहाँ आज तक कृषि का न्यायोचित वितरण नहीं हो पाया है और भूमि सुधार कानूनी कागजों तक ही सीमित है जिसके कारण यदा–कदा बंधुआ मजदूर भी देखे जा सकते हैं। यानि इनकी मजदूरी के जो कायदे कानून हैं वे पूर्णरूपेण शोषण की प्रक्रिया पर आधारित है और ये भी सामन्तवादी व्यवस्था की देन हैं। इसी प्रकार बालश्रम भी यहाँ आज की समस्या नहीं प्राचीन समय से ही माता–पिता जब सामन्तों के यहाँ काम करने जाते थे तो साथ में बच्चे भी जाते थे। और कुछ न कुछ काम करते थे अतः जनसंख्या वृद्धि के साथ यह समस्या बढ़ती ही गई और आज निर्धन व्यक्ति अपने बच्चों से काम कराने के लिए ही उन्हें जनमते हैं और बुन्देलखण्ड के सातों जिलों में यह समस्या विकराल रूप से फैली है अनेकों नियम कानून सब यहाँ नकारा साबित हो रहे हैं।

बुन्देलखण्ड में लैगिक अनुपात भी अत्यन्त असंतुलित है। यह भगवान की देन का परिणाम नहीं बल्कि इनके लिए यहाँ की सामन्ती क्रूर प्रथायें जिम्मेदार है। यहाँ के अधिकतर सामन्त अपने यहाँ कन्या शिशु की हत्या जन्म लेते ही कर देते थे आज यह प्रथा भ्रूण हत्या के रूप में प्रत्येक जगह व्याप्त हैं चाहे वह बुन्देलखण्ड प्रदेश हो या देश हो। अतः उ0 प्र0 एवं बुन्देलखण्ड में महिला पुरूष

अनुपात 2001 की गणना के अनुसार 1000 : 898 और क्रमशः 1000 : 852[1] यह अन्तर अन्य राज्यों की अपेक्षा अधिक है। कुछ लोग भ्रूण हत्या वर पक्ष के आगे न झुकने के कारण करवाते हैं और कुछ दहेज न दे सकने के कारण। कारण जो भी हो पर आज समाज इसे अपराध नहीं मानता परिणाम महिलाओं की संख्या दिन व दिन कम होती जा रही है।

इस सबके बाद भी महिला उत्पीड़न जो सामन्ती व्यवस्थाओं में होता रहा बुन्देलखण्ड में आज के युग में भी कम नहीं हुआ है। तब भी महिलाओं को भोग विलास की वस्तु समझा जाता था और आज भी। महिलाओं को अधिकार तो मिले हैं लेकिन इनका हनन भी जारी है। एक रिपोर्ट के अनुसार "प्रतिदिन 33% महिलायें अत्याचार व शोषण का शिकार होती हैं और केवल बुन्देलखण्ड में ही एक महिला प्रतिदिन बलात्कार का शिकार होती है"[2] अधिकतर शोषण एवं अत्याचार का शिकार भी दलित एवं कमजोर वर्ग की महिलायें ही होती हैं ऐसा बुद्धिजीवियों का मानना है। कहीं नारी को तंदूर में जलाया जा रहा है, कहीं दहेज की बलि वेदी पर आज नारी की अस्मिता असुरक्षित होती जा रही है। सामन्तवादी व्यवस्था पुरूषवादी व्यवस्था भी कहलाती है जो महिलाओं को कभी समान अधिकार नहीं दे सकती। वह तो महिला को केवल एक वस्तु तुल्य मानती है और बुरे से बुरा व्यवहार करते हुये उसे अनुगामिनी ही बनाये रखना चाहती है।

---

[1] स्मारिका "महिला अधिकार" लखनऊ, 2008
[2] अमर उजाला 28–09–07

अधिकतर सामन्त उच्च वर्गों के हैं जिसके कारण मानवीय गरिमा के साथ बहुत ज्यादा खिलवाड़ हुआ है क्योंकि यहाँ सातों जिलों में ज्यादातर आबादी सामाजिक अन्याय की शिकार निम्न जातियों की है जो हमेशा से तिरस्कृत और अपमानित होते रहे हैं आज भी उनको सवर्णों के बराबर बैठने का अधिकार नहीं। फलस्वरूप उनको विकास का अवसर नहीं मिल पाया और वे अपने ऊपर हुये अत्याचारों को अपनी नियति मानते हुये बरदाश्त करते जा रहे हैं। शिक्षा के प्रति नीरसता भी शत प्रतिशत नामांकन के उद्देश्य को गलत प्रमाणित कर रही है जबकि सरकार का उद्देश्य 14 वर्ष तक के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देना है। यद्यपि इसका कोई सुफल नहीं निकल पा रहा है और अशिक्षा यहाँ सबसे बड़ा अभिशाप परिलक्षित हो रही है। बुन्देलखण्ड के इन जिलों में शिक्षा का स्तर उन्नचास प्रतिशत से छियाछठ प्रतिशत तक ही है।

अशिक्षा के कारण यहाँ समाज में रूढ़िया एवं अंधविश्वास व्याप्त है जिसके कारण यहाँ आये दिन देवियों का जन्म, मजारों पर भूत उतारने, एवं भूतों को झाड़ने के कार्य होते रहते हैं। इन मानसिक रोगियों को भूखा रखकर उनके जीवन के मूल अधिकारों का हनन किया जाता है। ये सब अंधविश्वास पूर्ण कार्य आज के वैज्ञानिक युग में हास्यास्पद ही प्रतीत होते हैं। अशिक्षा एवं विकास के प्रतिमान में पिछड़े रहने का सबसे बड़ा कारण यहां की रूढ़िवादी सामन्ती व्यवस्था है। यहां दस्युओं का जन्म इसी व्यवस्था का परिणाम रहा है। क्योंकि जब लोगों के अधिकारों की रक्षा नहीं होती उसका हनन होता है तब

लोग अपने अधिकारों की रक्षा के तरीके स्वयं ढूंढ़ लेते हैं। जो प्रायः हिंसा पर आधारित होते हैं। चाहे फूलन देवी हो या ददुआ इनके दस्यु बनने के पीछे सामन्ती व्यवस्था का अत्याचार ही था जिसके कारण यह क्षेत्र दस्यु प्रभावित क्षेत्र कहा जाने लगा और यहां पुलिस उत्पीड़न के मामलों में भी वृद्धि हुई है।

पुलिस की कार्यप्रणाली भी सामन्ती व्यवस्था पर आधारित है जिसमें अधिकतर सामान्य नागरिक का शोषण होता है। आज सामान्तवादी प्रवृत्ति प्रत्येक जाति, धर्म के लोगों में बढ़ती जा रही है। वे पुराने सामन्तों का आज के युग में भी अनुकरण चाहते हैं। 1960 की हरित क्रांति में भूमि सुधार एवं जमींदारी उन्मूलन के बाद बुन्देलखण्ड में नव सामन्तों का उदय हुआ। ये अधिकतर पिछड़ी जातियों के थे जैसे यादव, कुर्मी, राजपूत लोधी, गुर्जर आदि इन्होंने भी क्रूरता की नई मिशालें स्थापित की और समाज पर अपना वर्चस्व बनाया। राजनीतिक महात्वाकांक्षा के चलते इन्होंने अपना सामाजिक आर्थिक अस्तित्व बढ़ाने के कारण इन जिलों में दलितों तथा अन्य कमजोर वर्गों पर शोषण तथा अत्याचार किये। इनके लिए भी महिला मात्र भोग विलास की वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं थी। दर्ज की सत्तर के दशक में अत्यधिक गरीबी बढ़ती गई और समाज में लोगों का जीवन पशुवत हो गया। अस्सी से नब्बे के दशक में सर्वाधिक दहेज हत्यायें दर्ज की गई, नब्बे तथा दो हजार तक भ्रूण हत्याओं का प्रचलन प्रारम्भ हो चुका है क्योंकि सामन्तवाद दूसरे को झुकाना चाहता है स्वयं झुकना नहीं चाहता, खेती का अधिग्रहण तो चाहता है पर खेती

में सुधार नहीं। भूमण्डलीकरण के कारण पूंजीवाद उपभोक्तावाद में परिवर्तित हो गया है। आज अनन्त इच्छाओं का जन्म हुआ है एवं नव धनाढ्य वर्ग अनेक कुप्रवृत्तियों जुआ, सट्टा, लाटरी, वेश्यावृत्ति की प्रवृत्ति में लिप्त होता जा रहा है। ये व्यवस्था समाज को अस्त व्यस्त करने में लगी है। मानवाधिकारों से युक्त जीवन लुप्त सा होता जा रहा है। धन का असमान वितरण, धनलोलुप्ता, व्याप्त भ्रष्टाचार के चलते, व्यक्तिगत हित सर्वोपरि होते जा रहे हैं। समाज तथा समाज में रहने वाले गौण। क्योंकि आज भी बुन्देलखण्ड में आधी जनसंख्या ऐसे लोगों की है जो भोजन तथा वस्त्र के लिए दूसरों के द्वारा शोषण एवं अत्याचार का शिकार हो रही हैं।

मानवाधिकारों से सम्बन्धित तथा बुन्देलखण्ड से राज्य मानवाधिकार आयोग में पंजीकृत मामलों की संख्या लगातार बढ़ रही है यद्यपि अधिकारों के प्रति जागरूकता तो बढ़ी है लेकिन अधिकारों का हनन भी लगातार जारी है।

2004–05 600 वाद

2005–06 610 वाद

2007–08 764 वाद[3]

जबकि इन आंकड़ों से चार गुने अधिक वाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में पंजीकृत होते हैं। ये भी हम सब जानते हैं कि जहाँ आधी जनसंख्या निरक्षर है वहाँ अधिकारों का क्या महत्व क्योंकि अधिकतर उत्पीड़न के मामले तो आज भी दर्ज नहीं होते। अतः जातीय उत्पीड़न, महिला उत्पीड़न विकास को अवरूद्ध

[3] "राज्य मानवाधिकार आयोग" 2007–08

प्रक्रिया, अशिक्षा, खेती का अनुचित वितरण यह सब समाज में सामन्ती व्यवस्था का ही परिणाम है।

चूंकि विकास के प्रतिमान कुछ लोगों के साथ जुड़े हैं। आधी जनसंख्या तो आज भी अधिकार विहीन नारकीय जीवन जी रही है। एक और व्यक्ति चाँद पर जा पहुंचा है और मंगल पर जाने की तैयारी में है और दूसरी ओर एक विशिष्ट वर्ग आज भी पेट भर भोजन और वस्त्र के लिए समाज में संघर्ष कर रहा है। बुन्देलखण्ड में आर्थिक विकास की अवरूद्ध प्रक्रिया के कारण ही शोषण की घटनायें दिन व दिन बढ़ती जा रही हैं और शोषित वर्ग समाज पर प्रश्न चिन्ह की तरह खड़ा है क्योंकि इनका विकास किये बिना समाज का विकास अधूरा है।

(ख) बधुंआ मजदूरी :

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अनेकों कुप्रथायें प्राचीन समय से व्याप्त थीं। इनमें से एक है बधुंआ मजदूरी, सरकारी आंकड़ों के अनुसार तो इसका पूर्णतः उन्मूलन हो चुका है पर यह पद्धति बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आज भी उपस्थित है जिसके अन्तर्गत कर्जदार को या उसके वंशजो को ऋण चुकाने के लिए उचित मजदूरी या मजदूरी के बिना ऋणदाता के लिए कार्य करना पड़ता है। इस पद्धति का उदय समाज के असमान ढांचे से उस समय हुआ जब यहां सामन्तवादी और अर्धसामन्तवादी परिस्थितियाँ विद्यमान थीं। यह प्रथागत वाध्यताओं, जबरन मजदूरी बेगार या ऋणग्रस्तता जो लम्बे समय से चली आ रही कि कुछ श्रेणियों

का परिणाम है जिसमें समाज के कुछ आर्थिक रूप से शोषित, लाचार और कमजोर वर्ग शामिल हैं। वे ऋणदाता को ऋण के बदले अपनी सेवायें देने को सहमत होते हैं। कई बार एक छोटी सी राशि जिसे उनके पूर्वजों द्वारा अक्सर ऊँची ब्याज दरों पर लिया गया था को अदा करने के लिए उनकी कई पीढ़ियां दासता में गुजरती हैं। यह पद्धति बुनियादी मानव अधिकारों का उल्लघंन है और इसमें मानव को गुलाम की तरह जीवनयापन करना पड़ता है।

हमारे यहां के कुछ पुराने रीति रिवाज भी हमें इसमें जकड़ने में सहायक का कार्य करते हैं। भले ही हम पेट भर भोजन न कर पाते हों परन्तु किसी बच्चे के जन्म पर किसी की मृत्यु पर विवाह होने पर सारे समाज को भोजन कराना कहां तक सही प्रतीत होता है। चाहे वह ऋण लेकर ही हो। बंधुआ मजदूरी की समस्या कृषि क्षेत्र के ग्रामीणों में प्रायः अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों/पिछड़ी जातियों एवं पिछड़े क्षेत्रों में अधिक देखने को मिलती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र जो विकास के मानकों में पिछड़ा है जहां काम के अवसर सीमित हैं भूमिहीन मजदूरों की मजदूरी काफी कम है, कृषि में नुकसान जैसे—सूखा पड़ जाना या बाढ़ आ जाना, कृषि सुधारों की दोषपूर्ण नीति, जिनमें भूमिहीन मजदूरों को जमीन के दी जाती है। पर वास्तव में इसमें फायदा यहां दबंग या सामन्तों को ही होता है। क्योंकि वह फर्जी लोगों के नाम पर पट्टे करवा देते हैं और भूमिहीन मजदूरों की स्थिति जस की तस बनी रहती है। यानि यहां भी सवल निर्बल पर भारी पड़ता है। जातीय भेदभाव के तो यहां

उदाहरण भरे पड़े हैं क्योंकि सबसे अधिक निरक्षरता, गरीबी इन्हीं पिछड़ी जातियों एवं निम्न तबके के लोगों में है। और मानवाधिकार हनन का यह महत्वपूर्ण पहलू है।

जबकि बुन्देलखण्ड क्या पूरे प्रदेश एवं देश में बंधुआ मजदूरों पर कोई प्रमाणिक आंकड़े मौजूद नहीं है हालांकि ज्यादातर राज्यों में यह प्रथा जारी है। देश के 13 राज्यों के 172 जिलों में बंधुआ मजदूरों की पहचान की गई थी। क्योंकि अधिकतर राज्यों में छिपे रूप में आज भी बंधुआ मजदूरी प्रचलित है। "वर्तमान में 17 राज्यों में 190 जिले ऐसे हैं जिनमें बंधुआ मजदूर पाये जाने की सम्भावना है।[4]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बंधुआ मजदूरी के अनेकों कारक मौजूद है परिवार पर आकस्मिक संकट या किसी का निधन, प्राकृतिक आपदायें– सूखा, बाढ़, पाला मार जाना कोई अन्य दुर्घटना, अचानक रोजगार छिन जाना, साहूकारों द्वारा धोखा और कर्ज की ऊँची ब्याजदर विवाह एवं अन्य सामाजिक समारोहों पर असहनीय खर्च शराब एवं जुये की लत या किसी व्यापार में अचानक नुकसान हो जाना जिनके कारण लोग ऋण लेते हैं। और इन ऋणों की ब्याजदर कभी–कभी इतनी अधिक होती है कि इन्हें चुकाते–चुकाते व्यक्ति की उम्र कट जाती है। और जब वह नहीं चुका पाता और उसकी मृत्यु हो जाती है तब यह ऋण स्वाभाविक रूप से उसके बच्चों को चुकाना पड़ता है। और यह क्रम चलता रहता है जब तक ऋण की अदायगी नहीं हो जाती है। बंधुआ

मजदूर कृषि प्रधान क्षेत्रों में आसानी से देखे जा सकते हैं। और बुन्देलखण्ड की आर्थिक व्यवस्था पूर्णतः कृषि प्रधान है। यहाँ अधिकतर लोगों का व्यवसाय कृषि है और बंधुआ मजदूरी सामंती एवं अर्द्ध सामन्ती सामाजिक ढांचे से गहराई तक जुड़ी है। यह पूंजीवादी लक्षण वाले विकसित कृषि और कृषेत्तर क्षेत्रों में भी व्याप्त है।

आज जबकि बंधुआ मजदूरों की मौजूदगी के प्रमाण पाये जा रहे हैं तब भी अपने–अपने राज्यों में बंधुआ मजदूरी की शिकायतों के प्रति प्राधिकारियों को अनुक्रियाशील नहीं पाया जाता बल्कि देखा जाता है कि अधिकारी ऐसी शिकायतों पर तत्परता के साथ कार्य करने और बंधुआ मजदूरों की पहचान और उनकी मुक्ति करने की बजाय वे बंधुआ मजदूरों का जल्दी से हिसाब करवाकर उनको इधर–उधर करने और गायब करने में बंधुआ मजदूरों को रखने वालों की सहायता करते हैं। जबकि बंधुआ मजदूरों की पहचान कर उन्हें मुक्त कराया जाना चाहिए। और उन्हें "मुक्त कराने पर उचित ढंग से उनका पुनर्वास किया जाना चाहिए राज्य की ओर से बंधुआ मजदूरी पद्धति अधिनियम, 1976 के प्रावधानों को लागू करने में किसी प्रकार की चूक भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 और 23 का उल्लघंन होगा।"[5]

अतः सर्वप्रथम बंधुआ मजदूरी का मुद्दा राष्ट्रीय राजनीति में उस समय उभर कर सामने आया जब इसे 1975 में पुराने 20 सूत्री कार्यक्रम में शामिल

---

[4] श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

[5] नीरज चौधरी बनाम "म0 प्र0 राज्य 1984" 3 एस सी सी 243

किया गया। इसके बाद सर्वाधिक उपबन्धों के आधार पर 1975 में बंधुआ मजदूरी पद्धति उन्मूलन अध्यादेश की घोषणा की गई जिसके स्थान पर बाद में बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम 1976 को लागू किया गया। कोई भी व्यक्ति जो 24 अक्टूबर 1975 को बंधुआ मजदूर था उस तारीख से बंधुआ सेवा और ऋण के भुगतान के दायित्व से मुक्त और स्वतन्त्र कर दिया गया। उसके द्वारा लिये गये कर्ज/ऋण/अग्रिम की परवाह किए बिना वह स्वतन्त्र किया जाता है।''[6]

जबकि विश्व स्तर पर इसे समाप्त करने के लिए 25 जून 1957 को एक अभिसमय को लागू किया गया तथा भारत ने 1963 में बलात श्रम (सं0 29) आई0 एल0 ओ0 अभिसमय पर अनुसमर्थन किया है और चार्टर के अनुसार बंधुआ मजदूरी मानवाधिकारों का उल्लघंन है। और ''इस अधिसमय के पक्षकार बलात्श्रम या बाध्यकर श्रम के शीघ्र और पूर्ण उन्मूलन के लिये प्रभावी कदम उठाने के लिये वचनबद्ध है।''[7]

बुन्देलखण्ड में बंधुआ मजदूरी यहाँ की सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था की देन है जो इतने कठोर अधिनियम के बाद भी जारी है। जबकि इस अधिनियम में किसी प्रकार के बंधुआ–ऋण देने वाले को तीन साल तक की जेल और रू0 2000/– का जुर्माना करने का उपबंध है। परन्तु यहां कृषि क्षेत्र अधिक होने के कारण बंधुआ मजदूर अभी भी पाये जाते हैं। जबकि अन्य व्यवसाय में भी यह

---

[6] रा0 मा0 अ0 आयोग ''अपने अधिकार जाने'' पृ0 5

[7] ''बलात्श्रम उन्मूलन अभिसमय'' 1957, अनु0 2

उपलबध है। शासन द्वारा इनके शून्य होने की पुष्टि की जा रही है। जबकि 2005–06 की राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट के अनुसार आयोग में उ0 प्र0 से 26 वाद बंधुआ मजदूरी के निस्तारित किये गये थे। और उ0 प्र0 को उन 18 राज्यों में चिन्हित किया गया है जहाँ बंधुआ मजदूर है। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा करवाये गये सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश से 237 बंधुआ मजदूर चिन्हित किये गये। और पूरे देश में 286642 बंधुआ मजदूरों की पुष्टि की गई। अतः केन्द्रीय विधान के अन्तंर्गत नियम है कि बंधुआ मजदूरों की पहचान करके उन्हें मुक्त कराने की जिम्मेदारी तथा मुक्त कराये गये बंधुआ मजदूरों के लिए पुनर्वास की जिम्मेदारी अधिनियम के कार्यान्वयन में जिला मजिस्ट्रेटों की मौलिक भूमिका है चूंकि इस अधिनियम के अन्तर्गत उन्हें न्यायिक शक्तियाँ सौंपी गई है। मुक्त कराये गये बंधुआ मजदूरों के प्रत्यक्ष और मनोवैज्ञानिक पुनर्वास कार्यों में राज्य सरकारों की सहायता करने हेतु बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास हेतु मई 1978 में श्रम मंत्रालय ने 50–50 आधार पर केन्द्रीय रूप से प्रायोजित योजना शुरू की इस योजना में समय–समय पर गुणात्मक सुधार किये गये हैं और इसे उत्तरोत्तर उदार बनाया जा रहा है।

चूंकि मई 2000 से पुनर्वास सहायता को बढ़ाकर प्रति बंधुआ मजदूर 20000 कर दिया गया है। आशोधित योजना के अनुसार बंधुआ मजदूरों का सर्वेक्षण करने जागरूकता पैदा करने वाली गतिविधियों और प्रभाव मूल्यांकन के लिए राज्य सरकारों/संघ राज्य क्षेत्रों को वित्तीय सहायता भी उपलब्ध कराई

जाती है। इस योजना के कार्यान्वयन हेतु विस्तृत दिशा निर्देश भी जारी किये गये हैं। स्वर्ण जयंती ग्राम स्वराज्य रोजगार योजना अनुसूचित जातियों के लिये विशेष घटक योजना, जनजाति उप–योजना आदि जैसी चल रही अन्य गरीबी उन्मूलन योजनाओं के साथ–साथ बंधुआ मजदूरों के पुनर्वास हेतु केन्द्रीय रूप से आयोजित योजना के साथ एकीकृत/समन्वय करने के लिए राज्य सरकारों को सलाह दी गई है ताकि बंधुआ मजदूरों के सार्थक पुनर्वास के लिए संसाधनों को एकत्रित किया जा सके।

(ग) बाल मजदूरी प्रथा :

'ये वे किशोर नहीं है जो दिन के कुछ घंटे खेले और पढ़ाई से निकलकर जेब खर्च के लिए काम करते हैं। ये वे बच्चे भी नहीं जो पारिवारिक जमीन पर खेती में मदद करते हैं; बल्कि ये वे मासूम बच्चे हैं जो वयस्कों की जिंदगी बिताने को मजबूर है, दस से अठारह घंटे काम करके कम पैसों में अधिक श्रम बेचते हैं, बुनियादी शिक्षा और खेल से वंचित और कभी–कभी परिवारों से अलग होकर रहते हैं।''[8]

बालश्रम उन गम्भीर समस्याओं में से एक समस्या है जिनका अंतर्राष्ट्रीय समुदाय काफी समय से सामना कर रहा है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) के अनुसार 5 से 14 वर्ष आयु के बीच के कतिपय 250 करोड़ बच्चे विकासशील देशों में कार्य करते हैं। जिसमें से लगभग आधे पूरे समय कार्य करते हैं।

---

[8] पुष्पलता तनेजा ''मानवाधिकार और बालशोषण'' 2001

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक दूसरे सर्वेक्षण से यह निष्कर्ष निकलता है कि 5 से 11 वर्ष की आयु के बीच के लगभग 50 से 60 करोड़ बच्चे पूरे विश्व में खतरनाक परिस्थितियों में कार्य कर रहे हैं।

बुन्देलखण्ड में बाल श्रमिकों का अस्तित्व वर्तमान समय की समस्या नहीं है, परन्तु यहाँ प्राचीन काल से ही बाल श्रमिक व्यवस्था का प्रचलन रहा है। इसका मुख्य कारण गरीबी है जो माता–पिता अपने बच्चों का पालन पोषण करने में असमर्थ होते थे, वे अपने बच्चों को सम्पन्न परिवारों में नौकर के रूप में रख देते थे आज भी घरों में बाल श्रमिक होते हैं! आल इंडिया सर्विस कंडक्ट रूल में ऐसा कोई नियम नहीं है जो घरों में नौकरी के सम्बन्ध में दखल दे। इसलिए प्राचीन काल की भाँति आज भी धनी परिवारों में बच्चे नौकर रखे जाते हैं। देहातों में बहुत से गरीब बच्चे पशु चराने का कार्य किया करते थे। उस समय ऐसा भी प्रचलन था कि एक गिरोह दूसरे पर आक्रमण किया करता था परिणाम स्वरूप जीतने वाला गिरोह पराजित गिरोह की स्त्रियों व बच्चों को लूटकर अपने साथ ले लेता था। ये स्त्रियाँ और बच्चे उनके गुलाम कहे जाते थे। इनसे अपराध हो जाने पर बड़े क्रूर दंड दिये जाते थे। यहां तक मृत्यु दंड भी दिया जाता था। गुलाम भयवश आवाज नहीं उठाते थे सभ्य समाज में यह प्रथा बढ़ती गयी।

आज मौलिक अधिकारों से वंचित समाज में करोड़ों बच्चे हैं। निसंदेह जन्म लेने वाला प्रत्येक बच्चा अपने कुछ मौलिक अधिकार भी साथ लाता है।

उसे मूलभूत सुविधाओं के साथ जीने का उतना ही अधिकार है जितना प्रौढ़ों को अथवा सम्पन्न वर्गों के बच्चों को। शिक्षा तथा पौष्टिक आहार की प्राप्ति, स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवाओं की सुलभता, खेल के ऐसे अधिकार हैं, जिन्हें किसी भी स्थिति में अनदेखा नहीं किया जाना चाहिए। बुन्देलखण्ड ही नहीं प्रदेश, देश एवं पूरे विश्व में इनके मौलिक अधिकारों का उल्लघंन हो रहा है।

जिन्हें विद्यालयों में होना चाहिए था वे किसी ढावे, होटल या उद्योग में जान झोंकते दिखाई दे रहे हैं। गरीब बच्चों के अधिकारों का हनन जितने बड़े स्तर पर हो रहा है, उससे इन बच्चों का भविष्य अंधकारमय हो गया है। भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण भी यह समस्या और भी भयावह रूप लेती जा रही है गरीबी में जीवनयापन करने वाले दंपती सिर्फ इसलिए अधिक बच्चे पैदा करते हैं कि उनके वे बच्चे होश संभालते ही परिवार में कुछ न कुछ कमाकर लायेंगे। ऐसे में बाल श्रमिकों की स्थिति के बारे में अन्दाजा लगाया जा सकता है।

यह एक कटु सत्य है कि भारत में इस समय दस करोड़ से भी ज्यादा बाल मजदूर हैं। सन् 1991 की जनगणना के अनुसार हर चौथे घर एवं दुकान पर बाल श्रमिक मौजूद है जो कि सप्ताह में सातों दिन काम करते हैं और ठीक यही स्थिति बुन्देलखण्ड की है। "ये तथ्य हाल में जारी भारत में बाल शोषण 2007 शीर्षक रिपोर्ट से सामने आये हैं। केन्द्रीय महिला एवं बाल विकास मंत्रालय की पहल पर यूनिसेफ सेव दि चिल्ड्रेन और गैर सरकारी संगठन प्रयास के सहयोग से तैयार इस रिपोर्ट के अनुसार देश में 522 प्रतिशत बाल मजदूरों

को सप्ताह में सातों दिन काम करना पड़ता है। सातों दिन काम करने वालों में सर्वाधिक संख्या उन बच्चों की है जिनकी आयु 5 से 12 वर्ष के बीच है।

देश में ही नहीं बल्कि दुनिया में बच्चों की स्थिति पर सम्भवता पहली बार व्यापक स्तर पर तैयार इस रिपार्ट के अनुसार करीब 36.5 प्रतिशत बच्चे सप्ताह में छैः दिन तथा मात्र 13.3 प्रतिशत पांच दिन काम करते हैं। घरेलू कामगारों पर **Save the Childrens** की **Report** में भी इस बात की पुष्टि हुई है कि घरेलू नौकर नौकरानियों का काम करने वाले करीब 31 प्रतिशत बच्चों को दिन में बिल्कुल आराम नहीं मिलता जबकि 41 प्रतिशत को दिन में दो घंटे की फुर्सत मिलती है। ये बच्चे सुबह पांच बचे से रात के नौ बजे तक लगातार काम करते रहते हैं रिपोर्ट के मुताबिक 33.1 प्रतिशत बच्चे हफ्ते में 32 घंटे तथा 36.2 प्रतिशत 33 से 56 घंटे और शेष 58 घंटे काम करते हैं। रिपोर्ट के अनुसार 56 प्रतिशत से ज्यादा बच्चे खतरनाक एवं अवैध पेशों में काम कर रहे हैं जिनमें घरेलू नौकर, रेस्तरा, ढावों में काम मिस्त्री की दुकानों पर, कालीन बनाना, बीड़ी एवं ताले बनाना, चाय के होटलों पर बर्तन धोना आदि काम शामिल हैं। करीब 58.79 प्रतिशत काम करने वाले बच्चे शारीरिक प्रताड़ना का शिकार होते हैं जिनमें लड़कों का प्रतिशत 52.70 और लड़कियों का 47.30 है।"[9] बाल मजदूरी उन्मूलन कानून 1986 में पारित हो गया था इसके बनने के 21 वर्ष बीत जाने के बाद भी बाल मजदूरों की स्थिति जस की तस है। जबकि

---

[9] दैनिक आज 20 अप्रैल, 2007 (सप्ताह में सात दिन काम करते बाल मजदूर)

पुलिस आफिसों आदि में बालश्रम से सम्बन्धित मुकदमों की स्थिति शून्य होने की पुष्टि की गई है।''कालपी के ही एक अधिवक्ता श्री विश्नोई जी के अनुसार बच्चे किसी नेता का वोट बैंक न होने के कारण ही इस दयनीय स्थिति में है।''[10]

बाल श्रम में सहायक अनेक कारक हैं जो बुन्देलखण्ड में बाल श्रमिकों की स्थिति को और भी बदत्तर बनाते हैं जैसे अधिक जनसंख्या गरीबी, भूख, शिक्षा की कमी, दुःख, जमींदारी व्यवस्था, जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं का पूरा न होना, तनाव, बेरोजगारी, खेती का अच्छा न होना आदि के कारण भी समाज में बाल श्रमिकों की संख्या कम होने की बजाय लगातार बढ़ रही है। इसका एक मुख्य कारण यह भी है कि गाँव में खेती के बाद कोई काम न होने के कारण गाँव से आने वाले बच्चे भी शहरों में बाल श्रमिकों की संख्या को बढ़ाते हैं। जिस आशा से वे शहर में घर परिवार से दूर कुछ बनने के लिए आते हैं वह मृग मरीचिका ही साबित होती है। कलम पकड़ने वाले इनके नन्हें हाथ कठोर श्रम से थके हुये से नजर आते हैं जरा सोचिये हम इन्हें क्या दे रहे हैं ? सिर्फ आधा पेट खाना, आधा तन ढकने के कपड़े सोने के लिए सड़क जहाँ मौसम भी इन पर दया नहीं करता।

सरकार का सबको शिक्षा, भोजन का नारा केवल एक नारा ही बनकर रह गया है। जबकि बालकों के अधिकारों के विषय में संयुक्त राष्ट्र ने चिंता करना 1946 से ही प्रारम्भ कर दिया था जब आर्थिक सामाजिक परिषद के

---

[10] आज 26 मई, 2007

अस्थाई सामाजिक आयोग ने विश्व युद्ध के पश्चात इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रसंघ के तत्वाधान में निर्मित जेनेवा घोषणा, 1924 को विश्व के सभी लोगों पर आवद्धकर बना दिया जाये। राष्ट्रसंघ द्वारा पारित जेनेवा घोषणा के पांच बिन्दु इस प्रकार हैं–

"1. बालक के सामान्य विकास तात्विक और आध्यात्मिक के लिए अपेक्षित साधनों को प्रदान किया जाना चाहिए।

2. वह बालक जो भूखा है उसे खिलाया जाना चाहिए, उस बालक को जो बीमार है, उसे सहायता दी जानी चाहिए, वह बालक जो पिछड़ा है, उसे सहायता दी जानी चाहिए अपराधी बालक को सुधारना चाहिए।

3. संकट के समय बालक को सबसे पहले राहत मिलनी चाहिए।

4. बालक को ऐसी स्थिति में रखा जाये कि वह जीविकोपार्जन कर सके और हर प्रकार के शोषण के विरूद्ध उसकी रक्षा की जानी चाहिए।

5. बालक का पालन पोषण इस चेतना से करना चाहिए कि उसकी प्रतिभा साथ के मनुष्यों की सेवा की तरफ लगे।"[11]

इन पांच बिन्दुओं के आधार पर अस्थाई सामाजिक आयोग ने 1950 में बालक के अधिकारों की प्रारूप घोषणा को पारित किया। बाद में महासभा ने 20 नवम्बर 1959 में इसे अंगीकार कर लिया। इसी क्रम में बालक के अधिकारों का अभिसमय, महासभा द्वारा 20 सितम्बर 1989 को पारित किया गया जो कि 2

[11] डा0 एच0 ओ0 अग्रवाल "मानव अधिकार" इलाहाबाद, 2002 पृ0 97

सितम्बर, 1990 को प्रवृत्त हो गया वर्तमान समय में इस अभिसमय के 191 राज्य पक्षकार है। अभिसमय में 54 अनु0 है जिसके अन्तर्गत निम्न अधिकार हैं–

1. प्राण का अधिकार – अनु0 6, परिच्छेद ।
2. राष्ट्रीयता अर्जित करने का – अनु0 7
3. अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का– अनु0 13
4. विचार, अंतरात्मा और धर्म की स्वतन्त्रता का अधिकार– अनु0 14
5. संगम की स्वतन्त्रता और शांतिपूर्वक सम्मेलन की स्वतन्त्रता का अधिकार– अनु0 15
6. शिक्षा का अधिकार– अनु0 16
7. सामाजिक सुरक्षा से हित का अधिकार– अनु0 26
8. बालक के शारीरिक, मानसिक, अध्यात्मिक और सामाजिक विकास के लिए पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार– अनु0 27
9. स्वास्थ्य के बारे में उच्चतम प्राप्य मानक के उपभोग और बीमारी में उपचार की सुविधाओं और स्वास्थ्य बहाली का अधिकार–अनु0 24
10. उसके या उसकी एकांतता, परिवार घर या पत्राचार के साथ मनमानी या अवैध हस्तक्षेप के विरुद्ध विधि के संरक्षण का अधिकार– अनु0 16''[12]

क्योंकि भारत इस अभिसमय का पक्षकार है इसीलिए भारत में मानवाधिकार आयोग ने कुछ महत्वपूर्ण योजनायें प्रारम्भ की हैं–राष्ट्रीय बालश्रम

---

[12] डा0 जय–जयराम उपाध्याय ''मानव अधिकार'' इलाहाबाद, 1999 पृ0 50

नीति (National Child Labour Policies) की 1987 में घोषणा की समाप्ति हेतु बनी राष्ट्रीय अथारिटी National Authority for the Eliment of Child Labour (N.C.E.C.L.) को देश के अनेकानेक क्षेत्रों में लेने के बाद भी बालश्रम समाप्त करने का ध्येय अधूरा ही रहा। आशा तो यह कि जा रही थी कि बालश्रम से छुटकारा पाने का सबसे उत्तम तरीका निःशुल्क एवं अनविार्य शिक्षा है जैसा कि अनु0 45 में दिया गया है। लेकिन गरीबी एवं बेरोजगारी के कारण यह एक नारा ही बनकर रह गया क्योंकि अब तक हम सभी बच्चों को विद्यालय तक लाने में सफल नहीं हो पाये हैं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सरकारी आंकड़े भले ही शत प्रतिशत नामांकन का दावा करते हों परन्तु सत्य कुछ और ही है आज भी बच्चे कूड़े के ढेरों में कूड़ा बीनकर (संदीप आयु 10 वर्ष, भोला 12 वर्ष) अपना और अपने परिवार का पेट पालते हैं। बुन्देलखण्ड में ऐसे कितने ही बच्चों के नाम दिये जा सकते हैं। कूड़े के ढेरों पर बैठे ये मासूम, मैकेनिक की दुकानों पर काम करते, कालीन उद्योग में लगे हुये ये बच्चे 300, 400 रूपये के लिए 12 से 14 घण्टे तक कार्य करते हैं। अन्यथा कि स्थिति में इन्हें भूखा ही सोना पड़ सकता है।

बुन्देलखण्ड में इन बच्चों की संख्या इतनी है कि प्रत्येक तीसरी चौथी दुकान में बाल मजदूरों को देखा जा सकता है। और इनकी वास्तविक संख्या बता पाना बहुत कठिन है। ये बच्चे गुलामों की तरह दिन रात लगे रहते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जाति व्यवस्था भी निम्न जाति के बच्चों को मजदूरी के

दलदल में धकेलती है। परम्परावादी माहौल के कारण इन्हें शिक्षा देकर इनका अज्ञान दूर करने की चिंता उच्च वर्गों को नहीं होती और न ही बच्चों को खेलने या अन्य मनोरंजन आदि का समय दिया जाता है। उनकी स्थिति कुएँ के मेढ़क के समान होती है। बाल मजदूरी के कारण बच्चे शिक्षा के अभाव में अकुशल रह जाते हैं और उनके परिवारों की कई पीढ़िया अकुशल श्रम और अज्ञानता का जीवन जीती हैं। जबकि संविधान के अनु0 24 में व्यवस्था की गई है कि ''चौदह वर्ष से कम आयु के किसी भी बच्चे को किसी खतरनाक व्यवसाय में नहीं लगाया जा सकता और अनु0 39 में बच्चों के दुरूपयोग न करने का संकल्प किया गया है।''[13]

सन् 1979 का वर्ष पूरे विश्व में बाल वर्ष के रूप में मनाया गया। भारत मे उस वर्ष सोलह सदस्यों की 'बालश्रम समिति' का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य मौजूदा कानूनों की समीक्षा करना था इस समिति में सांसद, बच्चों के मामलों से सम्बद्ध संस्थाओं के प्रतिनिधि और राज्य तथा केन्द्रीय श्रम विभागों के अधिकारी शामिल थे। तत्कालीन श्रममंत्री ने उक्त समिति की पहली बैठक में इस तथ्य पर जोर दिया कि सरकार ने बालश्रम पर प्रतिबंध लगाने वाले कानूनों को लागू नहीं किया। समिति की रिपोर्ट में भी उल्लेख किया गया कि अधिकांश कानून लागू नहीं किए गये। सरकार से अनुरोध किया गया कि कानून लागू करने की ओर ध्यान दिया जाये।

---

[13] कैलाश नाथ गुप्त ''मानवाधिकार और उनकी रक्षा'' दिल्ली, 2004 पृ0 36

केन्द्रीय सरकार के बालश्रम (निषेध और विनिमय) अधिनियम 1986 के तहत चौदह वर्ष से कम उम्र के बच्चों को कुछ रोजगारों में लगाने का निषेध किया गया। जो निम्न है–

1. "रेलवे द्वारा यात्री माल व डाक परिवहन।
2. गलीचों की बुनाई।
3. अधजले कोयले की चुनाई, राख के गड्ढ़ों की सफाई।
4. भवन निर्माण।
5. सीमेंट उत्पादन।
6. कपड़ों की छपाई।
7. रंगाई बुनाई।
8. माचिस, विस्फोटक सामान।
9. बीड़ी निर्माण।
10. माइका कटिंग।
11. ऊन की सफाई।
12. कसाई खाना।
13. मुद्रण।
14. काजू के छिल्के निकालना।
15. इलैक्ट्रानिक उद्योगों में सोल्डरिंग।"[14]

---

[14] राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग "अपने अधिकार जाने" दिल्ली 2004, 05

इस सबके उपरांत भी एक सर्वेक्षण के अनुसार लगभग पचास हजार बच्चे फिरोजाबाद के चूड़ी उद्योग में 500, 700 डिग्री सेल्सियस के तापमान में भट्टी में काम करते हैं। हजारों बच्चे बुन्देलखण्ड में ही तम्बाकू उद्योग, कालीन उद्योग, मिस्त्री की दुकानों, ढावों, होटलों में मजदूरी करते दिखते हैं।यहाँ अधिक बेरोजगारी, गरीबी, शिक्षा का निम्न स्तर अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजातियों की संख्या अधिक होने के कारण भी बाल मजदूरों की संख्या बहुत अधिक है। इनके साथ जानवरों के समान व्यवहार किया जाता है।

बाल मजदूरी को हम सभी शोषण का कार्य मानते हैं पर समाज के ही लोग हैं जो इन मासूमों का शोषण करने से पीछे नहीं हटते। पूरे विश्व से 1994 में यूनिसेफ से 7 करोड़ सत्तर लाख की सहायता मिली जो बच्चों की शिक्षा स्वास्थ्य, सामुदायिक विकास आदि कार्यों के लिए थी। इसी क्रम में चौदह वर्षों से कम उम्र के बच्चों के श्रम को समाप्त करने के लिए 2 अक्टूबर, 1994 को आगामी छह वर्षों के लिए आठ सौ पचास करोड़ रूपये व्यय करने की योजना तैयार की गई; परन्तु इस योजना के कोई ठोस परिणाम नहीं दिखाई दिये। 13 सितम्बर, 1995–96 को तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री नरसिंह राव की अध्यक्षता में हुई एक सौ जनपदों के जिलाधिकारियों की एक बैठक में बालश्रम समाप्त करने के लिए चौतीस करोड़ रूपये व्यय करने का प्रावधान रखा। आशा तो की गई कि सन 2000 तक खतरनाक उद्योगों से बालश्रमिकों को हटाया जाये, तथा 2010 तक पूर्ण रूप से बाल मजदूरों का उन्मूलन किया जा सके।

"यदि हमारे देश में बच्चों के अधिकारों को सुनिश्चित किया जा सके, तो वह दिन दूर नहीं होगा, जब हमारे देश में बुनियादी अधिकारों का हनन पूर्णतया समाप्त हो जायेगा और इसके लिए आवश्यक है कि हमारी सरकार गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से निःशुल्क शिक्षा प्रदान कराये।"[15]

अतः बुन्देलखण्ड में हम कह सकते हैं कि अनिवार्य शिक्षा को बढ़ावा देने के कार्य तथा निर्धन परिवारों के स्तर को ऊँचा उठाने के कार्यक्रमों पर ध्यान देना भी आवश्यक प्रतीत होता है। 10 दिसम्बर, 1996 के एक ऐतिहासिक निर्णय में बालश्रम पर पावंदी लगाते हुये निर्देश दिया कि इस सिलसिले में एक कल्याण कोष बनाया जाये, जिसमें कानून का उल्लघंन करने वाले मालिक तथा सरकार का प्रत्येक बच्चे के लिए योगदान क्रमशः बीस हजार व पाँच हजार रूपये हो। जिससे बच्चे के पढ़ने एवं खाने का इंतजाम किया जाये।

यद्यपि बालश्रमिकों पर रोक तो लगा दी गई परन्तु उनके भविष्य के बारे में सरकार द्वारा कोई ठोस कदम नहीं उठाये जा रहे हैं जिससे बाल मजदूरों का भविष्य अनिश्चित बना हुआ है। यानि उन्हें आजाद कराने के बाद उनके लिए खाने रहने की व्यवस्था, अन्यथा इस स्थिति में फिर वह वही करते नजर आयेंगे। इसके लिए इस अंचल में सरकार, स्वयंसेवी संस्थायें, समाज के सम्मानीय नागरिक एवं पुलिस मिलकर काम करे तो ही बालश्रम को समाज से

---

[15] प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी बाजपेयी "मानवाधिकार की सार्वभौमिक घोषणा की 50वीं जयंती पर घोषणा"

खत्म किया जा सकता है। क्योंकि सरकार द्वारा किये गये प्रयास तो ऊँट के मुंह में जीरा ही साबित हो रहे हैं।

मानवाधिकार आयोग ने भी बालश्रम के उन्मूलन के लिए राज्यों और जिला प्रशासकों को अधिक सतर्क और समर्पित रहने की हिदायत दी है। प्रत्येक जिले में भी विशेष स्कूल खोले गये है। परन्तु बाल मजदूरों की संख्या इतनी ज्यादा है कि यह स्कूल उनके लिए बहुत कम है अतः प्रशासन गैर सरकारी संगठन, पूंजीपति वर्ग एवं अभिभावक आदि मिलकर जब बालश्रमिकों के पुनर्वास के लिए व्यवस्था करेंगे तभी यहाँ से बालश्रम का उन्मूलन हो सकता है। आज आवश्यकता है कि सरकार अपनी शिक्षा नीति एवं रोजगार से सम्बन्धित नीतियों में परिवर्तन करे। राजनेताओं को केवल भाषण में नहीं वरन् कार्यरूप में करने की आवश्यकता है क्योंकि बालश्रम पर प्रतिबंध लगाने वाले कानूनों को लागू करने के लिए राजनीतिक समर्थन भी दिया जा सकता है। सब को साक्षर बनाकर एवं रोजगार देकर ही बालश्रम की समाप्ति हो सकती है। समाज के सभी लोग एक जुट होकर ही इस समस्या का समाधान कर सकते हैं। और इन मासूस बच्चों को उनका बचपन लौटा सकते हैं। तथा एक नये समाज का सृजन कर सकते हैं।

(घ) जातीय उत्पीड़न :

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अधिकतर जनसंख्या अनुसूचित जाति एवं पिछड़ी जातियों की है जो कि आर्थिक रूप से कमजोर हैं जिन्हें आज भी भरपेट भोजन

नसीब नहीं होता। और वे मजदूरी करके अपना व अपने परिवार का जीवनयापन करते हैं जबकि आज भी समाज के शीर्ष पर उच्च जाति के लोगों का वर्चस्व है। सरकार द्वारा इतने प्रयास इनके उत्थान के लिये किये जाते हैं पर समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण उन प्रयासों का दसवाँ हिस्सा भी उन तक नहीं पहुंच पाता और उनकी स्थिति जैसी की तैसी है। अधिकतर इसी तबके के लोग मानवाधिकार हनन का अधिक शिकार होते हैं। और यह आज की ही बात नहीं वरन् यह लोग मानव सभ्यता के आदि से ही अन्याय का शिकार होते रहे हैं। सामंती व्यवस्था के कारण इन लोगों को गुलाम बनाया गया और जरा से अनाज के लिए इनकी पीढ़ियों को बंधुआ (मजदूर) बनाया गया। इन्हें भिन्न तरह की श्रेणी में रखा गया जो जन्म से ही समान नागरिकता के हकदार नहीं माने गये। विश्व पर दृष्टि डालने से भी इस तरह के भेदभाव का पता चला। उदाहरण स्वरूप गुलामी पर आधारित सभ्यता वाले राज्य यूनान का महान दार्शनिक अरस्तू गुलामों की भिन्नता के प्रति इतना आश्वस्त था, कि उसकी निगाह में गुलाम ऐसे औजार भर थे जो बोल सकते थे। इसी का आधुनिक संस्करण नस्लों की सभ्यता का सिद्धान्त है जिसने हिटलर के शासनकाल में जर्मनों के लिए 60 लाख यहूदियों एवं अन्य निम्न मनुष्यों की सामूहिक हत्या करना उचित ठहरा दिया।

अन्य पश्चिमी यूरोप के सभी सभ्रांत लोकतंत्रों–ब्रिटेन, जर्मनी फ्रांस आदि में गैर यूरोपीय मूल के लोगों को समान मनुष्य नहीं माना जाता और उन्हें

लगातार प्रत्यक्ष हिंसा या परोक्ष भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। आज समाज में मानव अधिकारों का उल्लघंन एक मानव समूह द्वारा दूसरे मानव समूहों की समान मानवीयता को अस्वीकार कर हो रहा है। इसके लिए चमड़ी का रंग एवं धर्म से जुड़ी जीवन की भिन्न मान्यताओं एवं जीवन प्रणालियों को आधार बनाया जा रहा है। जिसके चलते अस्पृश्यता के रूप में दलित के रूप में समाज के एक बहुत बड़े हिस्से को शिक्षा विहीन व स्वाभिमान विहीन करके समाज से काट दिया गया ताकि वह मुखर होकर विद्रोह न कर सके। यही स्थिति गांधी जी के द्वारा चलाये जा रहे स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन में ऊर्जा पाकर गुलामी से उबरने के लिये सामने आई थी। चूंकि महात्मा गांधी युग पुरूष थे। उन्होंने इस तबके को जाग्रत करने के लिए अस्पृश्यता निवारण व गन्दी बस्तियों में सफाई व रोग निवारण जैसे कार्यक्रम व स्वदेशी वस्तुओं के निर्माण व उपयोग के रूप में एक आन्दोलन चलाया और विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गई। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि पराधीनता में जो दलित समाज सामने आया उसका कारण था कुटीर उद्योग–धन्धों का विनाश जिससे यह तबका अपने जीविकोपार्जन के लिए गन्दे–से गन्दे कार्य करने पर मजबूर हुआ। भारत के बहुत सारे लोग जिन्हें अनुसूचित जाति या आदिवासियों के रूप में जानते हैं।

बुन्देलखण्ड में सर्वाधिक जनसंख्या अनुसूचित जाति/पिछड़ी जाति की है जिन्हें संविधान द्वारा दलितों के रूप में मान्यता प्रदान की गई है। 'दलित'

जिसका अर्थ है दमित या प्रताड़ित– ये लोग ही सबसे अधिक निर्धन और निरक्षर है इसीलिए ऐसे लोगों के रूप में मान्यता दी गई है। जिन्हें अतिरिक्त सुरक्षा की आवश्यकता है और इसी बात को ध्यान में रखते हुये संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की। उद्देशिका लिखने के पश्चात अनुच्छेद 4 में लिखा था किसी भी व्यक्ति को दास या गुलाम नहीं रखा जायेगा। तथा ऐसे वक्त में उनको सुरक्षा देने की समस्या बहुत गम्भीर थी। इस समस्या को डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने पहली बार अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उठाया था। संयोगवश उन्हें 1942 में इन्स्टीट्यूट आफ पैसिफिक रिलेशन्स के चेयरमैन की तरफ से भारत के दलितों या अछूतों की समस्या पर कनाडा के क्यूबेक के मान्ट ट्रम्बलैन्ट में होने वाली कान्फ्रेन्स में एक पेपर पढ़ने के लिए आमंत्रित किया गया था। बाद में उन्होंने इस पेपर को 'मि0 गाँधी एण्ड दि कार्पोरेशन आफ दि अनटचेबल्स' शीर्षक से छपवाया तथा इसमें उन्होंने बताया कि भारत में अछूतों की मुसीबतें विश्व में अन्यत्र नीग्रो और यहूदियों की मुसीबतों से कम नहीं। उन्होंने अछूतों या दलितों की माँ बनकर शोर मचा दिया था कि मेरे बच्चे खा लिये गये हैं और उनके इसी दबाव के कारण भारत के संविधान के अनु0 17 में मानव अधिकारों के सार्वभौमिक 'घोषणा' से अधिक और अलग एक नया आयाम जोड़ते हुये लिखा गया कि–"अस्पृश्यता का अन्त किया जाता है और उसका किसी भी रूप में आचरण

निषिद्ध किया जाता है। अस्पृश्यता से उपजी किसी निर्योग्यता को लागू करना अपराध होगा जो विधि के अनुसार दण्डनीय होगा।"[16]

अतः यहाँ यह कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता का नारा मानव अधिकारों से जुड़ा हुआ है। हमारे समाज के उच्च्य वर्ग के लोग दलितों को बहुत घृणा से देखते हैं। वे उन्हें समाज पर लगे हुये एक कलंक के रूप में मानते है तथा उनका शोषण करते हैं। हिन्दू समाज के मन मस्तिष्क और व्यवहार में अस्पृश्यता की पहचान सबसे सरल थी। परन्तु डा० अम्बेडकर को अस्पृश्यता की परिभाषा निश्चित करवाने में संघर्ष करना पड़ा क्योंकि जब उन्होंने अछूतों के प्रतिनिधित्व की बात राजनीति और प्रशासन के स्तर पर हिन्दुस्तान और विश्व भर में उठाई तो उनके विरोधी राजनेताओं ने अस्पृश्यता की एक सर्वमान्य परिभाषा खड़ी करने में रूकावटें खड़ी कर दी। विरोधियों ने ये तर्क दिया कि उसी व्यक्ति को पूर्ण रूप से अस्पृश्य माना जाये जिसे छुआ न जा सके, देखा न जा सके या उसके नजदीक न पहुंचा जा सके।

इस परिभाषा के पीछे उनका उद्देश्य यह था कि इससे अस्पृश्यों की जनसंख्या कम हो जायेगी तथा जनसंख्या के कारण प्रतिनिधित्व का प्रतिशत भी कम हो जायेगा। लेकिन अम्बेडकर ने 1919 में साउथ बोरो समिति के सामने अपना लिखित साक्ष्य प्रस्तुत करते हुये अस्पृश्यता की परिभाषा दी थी कि–"यह

---

[16] धर्मवीर "अस्पृष्य किस देश के नागरिक है" राजकिशोर (सम्पादित) मानवाधिकारों का संघर्ष 210 दरियागंज, नई दिल्ली 1995 पृ0 77–78

वह व्यक्ति है जिसके छूने से धर्म भ्रष्ट हो जाता है, पर्याप्त रूप से एक संतोष जनक परिभाषा है।"[17]

डा0 वी0 आर0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के बारे में मनु के धर्म का उदाहरण दिया है जिससे मनु ने अपनी सामाजिक अवस्था में केवल चार वर्ण ही माने है ये हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। मनु ने अस्पृश्यों को हिन्दू सामाजिक व्यवस्था से बाहर रखा है क्योंकि उन्होंने अस्पृश्यों को 6 वर्ण ब्रह्म के नाम से पुकारा है इस प्रकार धार्मिक अध्ययन करने के पश्चात डा0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता की परिभाषा इस प्रकार की है–"अस्पृश्यता आन्तरिक तिरस्कार की बाहरी अभिव्यक्ति है जो एक हिन्दू किसी निश्चित व्यक्ति के बारे में महसूस करता है। इस परिभाषा से हिन्दू का व्यवहार नहीं बल्कि उसकी मानसिकता पकड़ी जाती है।"[18]

डा0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता को दासता से भी बदतर माना है। क्योंकि दासता से तो व्यक्ति एक बार आजाद हो सकता है लेकिन मनुष्य अछूत पैदा हुआ तो सदा के लिए अछूत हो जाता है।

बुन्देलखण्ड में अनुसूचित जातियों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति अन्य नागरिकों और अल्पसंख्यकों की तुलना में इतनी खराब है कि उन्हें उस संरक्षण के अलावा जिसे नागरिकों तथा अल्पसंख्यकों के नाते लोग प्राप्त करेंगे। इसके अतिरिक्त बहुसंख्यकों के भेदभाव व अत्याचार के विरूद्ध विशेष

---

[17] वही पृ0 79
[18] वही पृ0 80

सुरक्षा उपायों की जरूरत होगी। अनुसूचित जातियों के लिए यह मांग औचित्यपूर्ण है कि इन्हें नागरिकों के मूल अधिकारों की समस्त सुविधायें, अल्पसंख्यकों की रक्षण सम्बन्धी समस्त सुविधायें दी जाये और साथ ही उनके लिए विशेष सुरक्षा उपाय किये जाये। डा0 अम्बेडकर के प्रयासों से दलितों को कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई जिससे अस्पृश्यों के साथ दुर्वव्यवहार करने वाले द्विज हिन्दुओं को समझाया नहीं जायेगा और न ही उनके हृदय परिवर्तन का इन्तजार किया जायेगा। वरन् उन्हें दण्ड दिया जायेगा।

और उनकी मांग थी कि दलितों को सामाजिक अल्पसंख्यकों को दर्जा दिया जाये जिससे अल्पसंख्यक माने जाने पर वे भारतीय संविधान के 'अनुच्छेद 29' के दायरे में आकर अपनी विशेष पहचान प्राप्त कर सके और अपनी दलित संस्कृति को बचाये और बनाये रखने का अधिकार पा सके। दलितों की कोई पहचान न होना एक समस्या है। क्योंकि जब हिन्दू धर्म पर आपत्ति आती है तो उन्हे अपना अभिन्न अंग मानने लगते हैं। तथा जब उनके धर्म पर कोई आपत्ति नहीं होती तो वे उन्हें अपने से अलग कर देते है और उनके साथ दुर्वव्यवहार करते हैं। उन्हें अछूत कहकर अपने से अलग कर देते हैं। अतः उनकी कथनी और करनी में अन्तर है क्योंकि इक्कीसवीं सदी में भी सचिवालयों में पानी दो जगह आज भी रखा जाता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में आज भी गाँवों में दलित सवर्णों के नीचे बैठते हैं। वह बेरोजगार होने के कारण उनके खेतों में बंधुआ मजदूरों की तरह काम करते

हैं। और दलित महिलाओं को तो और भी अधिक निम्न दृष्टि से देखा जाता है। क्योंकि प्रथम तो वह महिला और वह भी दलित तो यह एक यातना देने का प्रथम कारण हो जाता है। क्योंकि हमारी सामाजिक व्यवस्था ने दलितों को आर्थिक रूप से इस स्थिति में नहीं रखा कि वह अपनी पत्नी और लड़कियों को घर में सुरक्षित रख सके। उन्हें मजदूरी करने के लिए घर से बाहर जाना ही पड़ता है इस तरह दूसरों के घरों में झाडू पोंछा तथा चौका वर्तन करने वाली महिलाएं ईंट भट्ठों एवं भवन निर्माण में मजदूरी करने वाली महिलाएं सबसे ज्यादा शोषण और यौन उत्पीड़न का शिकार होती है।

दलित महिलाओं पर बलात्कार और हत्या की घटनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है। यह बलात्कार और हत्यायें किसी रूग्ण चित्त के विकार नहीं है वरन् दलित स्वाभिमान को कुचलने के लिए स्वस्थ चित्त के लोग करते हैं। अधिकतर इन लोगों में दबंग सवर्ण, पूंजीपति और नेता आदि होते हैं।''मध्य प्रदेश के खरगोन जिले के एक गाँव में सरपंच महिला को इसलिए निर्वस्त्र करके अपमानित किया गया था क्योंकि वह तिरंगा फहराने जा रही थी कई दलित महिलाओं को सरपंच बनने पर बलात्कार की सजा भोगनी पड़ी जिनमें कई महिलाओं ने आत्महत्या तक कर ली।''[19]

उ0 प्र0 मानवाधिकार आयोग के गठन के बाद 2002—03 एवं 2003—04 एवं वार्षिक प्रतिवेदन के अनुसार दलितों के वादों की संख्या क्रमशः 93, 506

[19] कंवल भारती ''दलित महिलाओं का दर्द न जाने कोय'' अमर उजाला, कानपुर 11 अप्रैल 1999 पृ0 6

थी। यानि आयोग पर लोगों का विश्वास बढ़ा है परन्तु दलितों से सम्बन्धित अपराध में अभी भी कोई अधिक कमी नहीं आयी है। बल्कि यह अपवाद अभी भी अपवाद वर्षों को छोड़कर प्रतिवर्ष बढ़ ही रहे हैं। बल्कि अस्पृश्यता को पूर्ण रूप से समाप्त करने का जो सपना डा० अम्बेडकर ने देखा था वो आज तक पूरा नहीं हुआ है क्योंकि आज भी इन जातियों में शिक्षा का स्तर अत्यधिक निम्न है। सरकार के इतने प्रयासों के बाद भी इनकी स्थिति में अधिक सुधार नहीं हुआ है क्योंकि ये हीनता से अत्यधिक ग्रसित हैं अधिकतर लोग इनको हीन बुद्धि मानते हैं। जबकि मानवतावादी विचारक एम० एन० राय ने अपने विचार इस सम्बन्ध में देते हुये कहा था– कि–"जटिल मानव प्राणी जैविक पदार्थ के विकास का सबसे उत्कृष्ट रूप है जो स्वयं निर्जीव पदार्थ में एक विशेष शारीरिक रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम है। बुद्धि शरीर विज्ञान की क्रिया है, मस्तिष्क विचार का यन्त्र है तथा विचार मस्तिष्क का कृत्य है। एम० एन० राय ने इसे मानवतावादी दर्शन की व्याख्या करते हुये सामान्य मनुष्य और महापुरूष के बीच अंतर करते हुये लिखा था कि एक सामान्य मनुष्य और महापुरूष में जो अंतर है वह मात्र डिग्रियों का अंतर है। यह अन्तर इस कारण भी हो सकता है कि महापुरूष के पास सामान्य मनुष्य के मुकाबले में अपनी सम्भावनाओं को विकसित करने के लिए ज्यादा अवसर प्राप्त होते हैं।"[20]

बुन्देलखण्ड क्षेत्र जहाँ आज भी अघोषित सामन्ती व्यवस्था के दर्शन किये जा सकते हैं तथा एक तिहाई जनसंख्या दलितों की निवास करती है। और

[20] दैनिक जागरण, मेरठ 3 मई, 95

जिन्हें यहाँ की वर्णवादी व्यवस्था आज तक पशु तुल्य मानती। वहाँ मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद 1 को कठोरता से लागू करना होगा जिसमें सभी मनुष्यों को जन्म गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से समान कहा गया है। जबकि यहाँ दलितों को सम्मान की दृष्टि से आज भी नही देखा जाता है। कुछ समाज के ठेकेदार तो उन्हें समाज पर कलंक मानते हैं। यह आज भी अपने अधिकारों से वंचित है। और अपने ऊपर हो रहे अत्याचारों को अपना भाग्य समझकर भोग रहे हैं। एक और हम इक्कीसवीं सदी में पहुंच चुके हैं जो संचार और क्रांति का युग है। वहीं दूसरी ओर समाज का एक बड़ा हिस्सा अभी भी आदिम युग में खड़ा है और अपने लिए पेट भर भोजन, वस्त्र और सम्मानपूर्ण जीवन जीने के लिये संघर्ष कर रहा है। बुन्देलखण्ड का वास्तविक विकास पूरे समाज का विकास करके ही हो सकता है न कि एक समाज को अलग छोड़कर क्योंकि शरीर का कोई भी अंग यदि बीमार है तो शरीर स्वस्थ नहीं कहा जा सकता क्योंकि शरीर तभी स्वस्थ होगा जब शरीर के सभी अंग स्वस्थ होंगे।

यही सोचते हुये हमारे विकसित समाज को इस कमजोर एवं निम्न वर्ग को विकास की धारा में जोड़ना होगा और अपनी अर्द्ध सामन्ती सोच को छोड़ते हुये एक विकसित एवं साम्यवादी सोच जाग्रत करनी होगी। बुन्देलखण्ड का विकास सही मायनों में तभी पूर्ण हो सकता है। जब यह दलित, दमित, अशिक्षित वर्ग वास्तविकता में अपने अधिकारों का उपभोग कर सकेगा।

(ङ) असंतुलित लैंगिक अनुपात :

स्त्रियों के साथ बढ़ता अत्याचार हमारे दैनिक समाचारों का एक हिस्सा हो गया है, परन्तु यह जानकारी लोगों को बहुत ही कम है कि जितनी स्त्रियाँ बलात्कार, दहेज और अन्य मानसिक और शारीरिक अत्याचारों से उत्पीड़ित की जाती हैं, उनसे कई सौ गुना ज्यादा तो जन्म लेने से पहले ही मार दी जाती हैं। वस्तुतः वह आज स्त्रियों के प्रति प्रभेदकारी समाज की आधुनिक तकनीकों के सहारे की जाने वाली चरम बर्बरता है। नारी समाज का मुख्य अंग है परन्तु उसके अधिकारों का संघर्ष उसकी भ्रूणावस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" देववाणी की उपर्युक्त उक्ति से परिलक्षित तो होता है तथा उसे सुख और समृद्धि का प्रतीक भी माना जाता रहा है। परन्तु वस्तुतः प्राचीन काल से वर्तमान काल तक स्त्रियों को समाज में वस्तु की तरह प्रयुक्त किया जाता है तथा किया जाता रहेगा। समाज में उनका विकास व उन्नति अपने नैसर्गिक वातावरण में नहीं होने दी जाती है। स्त्री की इस सामाजिक स्थिति का वर्णन कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने इस प्रकार किया है–"अबला तेरी यही कहानी आंचल में है दूध, दृगों में पानी।" जबकि मानव अधिकारों की सार्वभौम घोषणा में लिंग भेद के बिना सबको समान रूप से अधिकारों को सुनिश्चित करने की घोषणा तो की गई, लेकिन स्त्रियों के प्रति विभेद जारी रहा, 1981 और 1991 की जनगणना के आंकड़ों की तुलना करें तो हम पायेंगे कि इन दस वर्षों में तीन करोड़ से ज्यादा स्त्रियाँ लुप्त हो गई हैं।

1901 में जहाँ प्रति 1000 पुरूषों पर 972 स्त्रियाँ थी आज सिर्फ 927 हैं आधुनिक स्वास्थ्य और शिक्षा सुविधाओं के बावजूद ऐसा क्यों हो रहा है ? इसका जबाव हमें अपने इतिहास और परम्परा में मिलेगा।

जबकि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में भारतीय और चीनी सभ्यताएं ही ऐसी हैं जिनकी सामुदायिक परम्परा, अविच्छिन्न है आज भी हम अपने पाँच हजार साल पुराने मंत्रों और आचारों में से अनेक का पालन करते हैं प्रातः काल के सूर्य नमस्कार से लेकर विवाह और दाह संस्कार के मंत्र आज भी वही है परन्तु जहाँ स्त्री जाति को बराबर स्थान देने की बात कही गयी थी, वे वाक्य, कहावतें और आचार धीरे–धीरे हमारे समाज की स्मृति से लुप्त हो गये। स्त्रियों के प्रति निषेधात्मक उपपत्तियाँ क्यों प्रचलित की गयी– यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु उसके परिणाम इसके लगभग डेढ़ हजार साल बाद हमें पुराणों में साफ दिखाई देते हैं वराह पुराण में कहा गया है 'स्त्रीबालविप्रगोहंता सर्वकर्मबहिष्कृतः।। सः याति नरकाम् धोरन् याव दिद्राश्चतुर्दश।।'

यानी जो मनुष्य स्त्री बाल हत्या, ब्राह्मणों की हत्या या गो हत्या करे, वह घोर अपराधी है। और जब तक चौदह इंद्र वर्तमान है; उसे घोर नरक से स्थान मिलेगा। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' भी स्त्री बाल हत्या, गो हत्या और ब्राह्मण हत्या को बराबर मानती है। अग्नि पुराण तो यहाँ तक कहता है कि "अंतर्जले त्रिरावर्त्य गायत्री प्रयतोजपेत।। मुत्त्यते पातकैः सवैर्यदिन भ्रूणहा भवेत।' अर्थात् नदी में खड़े होकर निरन्तर गायत्री मंत्र जपने से भ्रूण हत्या के अलावा सभी पापों से

मुक्ति पायी जा सकती है। भ्रूण और बाल हत्या की निन्दा पद्भ पुराण ब्रह्म वैवर्त्य पुराण, भगवत पुराण आदि में भी की गई है। इससे हम दो बातों का अनुमान लगा सकते हैं। पहली बात यह कि स्त्री बाल और भ्रूण हत्या की घटनाएं समाज में शुरू हो चुकी थीं। इस कारण से इसके दंड का प्रावधान इन ग्रन्थों में हमें मिलता है।

कितने आश्चर्य की बात हे कि आज जहाँ हमारे देश में गौहत्या को लेकर दंगे शुरू हो जाते हैं, वही मानव भ्रूण हत्या को सिर्फ एक आर्थिक और सामाजिक मजबूरी भर ही समझा जाता है। आज के समाज में स्त्रियों का महत्व और सम्मान क्या जानवरों से भी कम हो गया है। बुन्देलखण्ड में महिला पुरूष अनुपात में काफी अन्तर है। इसके कई कारण हैं यह समस्या नई नहीं है प्राचीन काल की राजशाही व्यवस्था में भी यह समस्या अपना सिर उठाने लगी थी इसके गजेटियरों में उसकी जानकरी मिलती है। कि उस समय भी लोग कन्या के जन्मते ही उसे मार दिया करते थे जिससे कि उन्हें वर पक्ष के आगे कभी झुकना न पड़े। और वर्तमान परिस्थितियों में अभी भी कन्या भ्रूण हत्या दहेज की व्यवस्था न करनी पड़े इसलिये की जाती है।

एक रिपोर्ट के अनुसार केवल उ0 प्र0 में ही प्रतिवर्ष छः वर्ष तक की कोई छः लाख लड़कियाँ इन्हीं कारणों से खत्म कर दी जाती हैं। कन्या भ्रूणों की हत्या मानव अधिकारों का घोर उल्लघंन है तथा गर्भवती महिलाओं के मौलिक अधिकारों पर खुला आक्रमण है तथा यह गर्भ में पलने वाली शिशु

कन्या को जीवित रहने के अधिकार से वंचित कर हत्या के अपराध का कारण बन रहा है। कन्या अपहरण जैसे अपराधों में भी वृद्धि हो रही है। वास्तव में सभी मानव अधिकार सार्वभौमिक, अविभाज्य, परस्पर सम्बद्ध और परस्पर निर्भर है।

प्रधानमंत्री श्री अटल विहारी बाजपेयी ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की 50वीं जयंती पर बोलते हुये कहा—''जब कोई शिशु जन्म लेते ही या पाँच साल का होते–होते मर जाता है, तो उस शिशु को जीने का अधिकार नहीं मिल पाता है इसी प्रकार जब कोई बच्चा निरक्षरता के अंधेरे में विश्व में पलता बढ़ता है तो बच्चे को अपने अधिकार नहीं दिये जाते हैं। जब कोई व्यक्ति बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं के अभाव में मर जाता है तो उस व्यक्ति को उसके अधिकारों से वंचित रखा जाता है। हमें उस शिशु उस बच्चे और उस व्यक्ति को संरक्षण देने का प्रण लेना होगा।''

यूनिसेफ की एक रिपोर्ट में बताया गया है कि बालिका, शिशु तथा कन्या भ्रूणों की हत्या ही वास्तव में भारत में स्त्री पुरूषों की जनसंख्या में असंतुलन का कारण बन रहा है। रिपोर्ट में यह भी कहा गया है कि अगर जन्म से पहले कन्यांओं के मार डालने की प्रवृत्ति पर रोक न लगाई गई तो स्त्री–पुरूषों की जनसंख्या का अनुपात इतना कम हो जायेगा कि इससे मानव अधिकारों की दूसरी समस्यायें तथा यौन अराजकता के पैदा हो जाने का भय है।

बुन्देलखण्ड के इन अंधविश्वासों के चलते स्त्री अपना अस्तित्व खो बैठी है और वह सिर्फ पुत्री, पत्नी, माँ या देवी बन कर रह गई है। अगर समाज की आधी जनसंख्या (स्त्री) पुरूषों पर अपनी आर्थिक और मानसिक जरूरतों के लिए अवलम्बित हो जाये, तो निश्चित है कि समाज का संतुलन बिगड़ जायेगा और पितृसतात्मक समाज अपने भार को कम करने के लिए मुसीबत की जड़ को ही खत्म करने की कोशिश करेगा। शायद इसीलिए भ्रूण और कन्या शिशु हत्या इतनी प्रचलित हो गई।

कन्या शिशु हत्या का पहला उल्लेख हमें 1789 में सर जोनाधन डंकन के लेख में मिलता है। उन्होंने वाराणसी के बारे में लिखा कि राजकुमार नामक राजपूत कन्या शिशु के जन्मते ही उसे घर के पिछवाड़े छोड़ देते थे वहीं पर वह भूख, गर्मी या सर्दी से मर जाती थी। उनका कहना था कि वह ऐसा इसलिए करते थे क्योंकि उन्हें दहेज अधिक देना पड़ता था। इसी क्षेत्र के पास जौनपुर के राजकीय परिवार भी कन्या शिशु की हत्या कर देते थे जिससे दामाद के परिवार के सामने सिर न झुकाना पड़े। इसी तरह बुन्देलखण्ड के सामन्तों के बारे में भी यही प्रचलित था कि वे कन्या को पलंग के पाये के नीचे या मुंह में नमक भरके मार देते थे।

22 मई 1795 में प्रथम रेग्यूलेशन एक्ट पास करवाया गया था। इसमें कन्या हत्या को आम हत्या के बराबर ही माना गया। पर इसका ज्यादा असर नहीं हुआ। थामसन नामक सैनिक ने तो यहाँ तक कहा था कि राजपूतों की

बिरादरी में 10000 परिवारों में कोई कन्या नहीं थी। इसी तरह सिख परिवारों में तो वह शिशु कन्या हत्या को बताने में संकोच भी नहीं करते। 1852 में पूरे पंजाब में सिर्फ 50 लड़कियां एक से 5 वर्ष की पाई गई परन्तु इनमें कोई बेदी घराने की नहीं थी।

कन्या शिशु हत्या को रोकने के कई प्रयास ब्रिटिश सरकार ने किये परन्तु वह सफल नहीं हुये। तब 1870 में एक अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा जिस गांव में लड़कों की तुलना में लड़किया 40 प्रतिशत या उससे कम हो उसे संदिग्ध गांव का दरजा दिया गया। ऐसे गांव सिर्फ संयुक्त प्रान्त (उत्तर प्रदेश) में 4959 थे। इन गांवों में पुलिस डाक्टर और दाई की मदद से गर्भवती स्त्री पर नजर रखी जाती एवं बच्ची होने पर उसकी खबर सरपंच को दी जाती। और बच्ची की मृत्यु हो जाने पर लिखित रूप से डाक्टर को इसका कारण देना पड़ता। इस तरह 1890 तक इन संदिग्ध गांवों में लड़कियों की संख्या लड़कों के बराबर हो गई और 1906 में यह अधिनियम निरस्त कर दिया गया।

लेकिन जहां तक राष्ट्रीय अनुपात का सवाल है 1901 के बाद प्रति हजार पुरूषों पर स्त्रियों की संख्या दो मामूली अपवाद वर्षों को छोडकर गिरती गयी है जो निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है–

"1901 – 972

1911 – 964

1921	—	955
1931	—	950
1941	—	945
1951	—	946
1961	—	941
1971	—	930
1981	—	929
1991	--	929
2001	—	927”[21]

उ0 प्र0 में 1991 में 1000 पुरूषों पर 876 महिलायें थीं। जो महिला पुरूष अनुपात की स्थिति को दर्शाता है। जिला जालौन में यह संख्या केवल 829 थी। 2001 तक यह बढ़कर 847 तक हुई है जो कि काफी कम है यानि प्रति 1000 पुरूषों पर कम से कम 150 महिलायें कम हैं जो भगवान की देन नहीं समाज की कुरीतियों का परिणाम हैं। बुन्देलखण्ड में 1901 से आज तक पुरूषों के अनुपात के रूप में स्त्रियों की संख्या घटती ही जा रही है। वैज्ञानिक आर्थिक प्रगति और स्वास्थ्य सुविधाएं बढ़ने पर भी स्त्रियों के प्रति हजारों सालों से चले आ रहे दृष्टिकोण में कुछ खास फर्क नहीं आया है। आज आधुनिक तकनीकों से इस अन्तर को कम करने में कोई सफलता मिली नहीं वरन् इस अन्तर को

[21] दैनिक जागरण 17 जून, 2003

बढ़ाने में ही सफलता मिली व प्रोत्साहन भी है जो हमारे समाज के लिये शर्मनाक है।

सर्वप्रथम 1977 में एमनियों सेंटेसिस का इस्तेमाल पहली बार बम्बई के हरकिशनदास अस्पताल में भ्रूण हत्या के लिए किया गया। इस अस्पताल में 1978 और 1992 के बीच 8000 स्त्रियों ने यह जांच करायी। बी0 बी0 सी0 पर भ्रूण हत्या पर दिखाई गई एक डाक्युमेन्ट्री फिल्म 'बार्न टू डाई' में डाक्टर प्रमिला बंसल कहती है कि जब एमनियोंसेंटेसिस आम आदमी की पहुंच में नही था तो वे मजबूरी में अपनी लड़कियों को पालने पर मजबूर थे, पर अब जब यह लिंग जांच 500 रूपये में उपलब्ध है, तो कन्या पैदा करने या रखने का कोई तुक या कारण नहीं है। जिला– जालौन, बाँदा में भ्रूण हत्या ज्यादा है। परिणाम स्वरूप यहाँ महिलाओं का अनुपात पुरूषों के अनुपात में काफी कम है। बुन्देलखण्ड में आज भी कन्या के जन्म पर कोई खुशी नही मनायी जाती है जबकि पुत्र के जन्म पर तवे आज भी बजाये जाते हैं।

पी0 पी0 एन0 डी0 टी0 एक्ट के तहत 1 जनवरी 1994 को भ्रूण हत्या को अपराध घोषित किया गया है और पहली बार भ्रूण हत्या में पकड़े जाने पर 10,000 जुर्माना और 3 वर्ष की सजा। तथा दूसरी बार 50,000 जुर्माना तथा 5 वर्ष की कैद की सजा तय की गई है। परन्तु कितने ही कानून बनने के बाद भी भ्रूण हत्यायें आसानी से की जा रही हैं। पुत्रों की अपेक्षा पुत्रियाँ माता पिता तथा भाई–बहिनों पर स्नेहिल व्यवहार रखती है। परन्तु इस सबके पश्चात भी

बुन्देलखण्ड के परिवेश में लड़का–लड़की के बीच गहरा भेदभाव है और यह भेदभाव सामन्ती शासन से लेकर आज तक चला आ रहा है। एक ओर तो हम कन्या को देवी के रूप में पूजते हैं और दूसरी ओर हम उसकी हत्या करने में जरा भी नहीं हिचकते यह कैसी बिडम्बना है। गौ हत्या पर तो आये दिन बवाल होते रहे हैं परन्तु कन्या भ्रूण हत्या पर क्यों नहीं कोई सवाल उठाता है न ही विरोध करता है ऐसे ही समय पर पता नहीं क्यों शरीफ, बुद्धिजीवी, दयालु, बेहद धार्मिक व संवेदनशील समाज की बुद्धि क्यों नहीं उद्वेलित होती है। क्यों इनकी सोचने समझने की क्षमता तथा संवेदनशीलता पर जंग लग जाती है।

(छ) स्त्री विरोधी मानसिकता :

''साल के 365 दिन, यकीनन 364 दिन पुरूषों के होते होंगे तभी तो सिर्फ एक दिन किया गया है महिलाओं के नाम 8 मार्च यानी अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस। हर साल की तरह इस साल भी इस दिन महिलाओं की स्थिति के बारे में चर्चाओं का दौर शुरू होगा। सेमिनार, गोष्ठियाँ और रैली आयोजित होगी। जहां बात होगी महिलाओं के अधिकारों की उनके शोषण की, असमानता की, उसके जीवन के वंचित पक्ष उसकी पीड़ा और उसकी वेदना की, यानि सामाजिक, आर्थिक और मानसिक स्तर पर उसके साथ हो रहे दोयम दर्जे के व्यवहार पर लम्बे–लम्बे भाषण दिये जायेंगे। उंगलियों पर गिनाई जा सकने वाली चन्द सफलतम् महिलाओं के नाम पर भी चर्चा होगी जिसमें महिलाओं के

साथ–साथ पुरुष भी शामिल होंगे लेकिन यह सारा तमाशा रहेगा सिर्फ एक दिन।"[22]

बुन्देलखण्ड ही नहीं पूरे देश में नारी अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिये संघर्ष आज से नही प्राचीन काल से करती चली आ रही है। साहित्यकारों ने भी कहीं तो नारी को देवी के समान कहा है, ओर कहीं उसे 'दासों के समान माना। तुलसीदास जी ने भी नारी के बारे में कुछ ऐसा ही कहा–

"ढोर गवांर शूद्र पशु नारी,

सकल ताड़ना के अधिकारी।"[23]

कबीर दास ने भी कहा है कि–

"नारी की झाँई परत अंधा होत भुजंग"

क्या कहती है यह चौपाई ? जिस प्रकार से ढोल का काम है बजना लेकिन जब तक उसकी पिटाई न की जाये वह बजता नहीं, उसी प्रकार से गवाँर, शूद्र, पशु और नारी से काम लेने के लिए उसकी पिटाई या ताड़ना आवश्यक है। जबकि पंडित रामनरेश त्रिपाठी एवं अन्य विद्वानों ने इस बात पर बार–बार बल दिया है कि उपर्युक्त कथन गर्ग मुनि के एक नीति श्लोक का रूपान्तर मात्र है। इस तरह इस चौपाई के प्रसंग में तुलसीदास नारी विद्वेष के आरोप से बरी कर दिये गये। पर इस प्रताड़ना का सबसे भीषण रूप है स्वयं इन उत्पादक और उत्पीड़ित वर्गों के मन में यह बैठा देना कि वे उसी सलूक

---

[22] आज "महिला सशक्तीकरण : दशा और दिश ा" पृ0 4
[23] तुलसीदास : "रामचरित मानस"

के लायक हैं जो उनके साथ हो रहा है मेरा मानना है कि इन बुद्धिजीवियों ने नारी के बारे में यह कहकर उसे हीन व अपमानित ही नहीं किया है वरन् अत्यन्त तुच्छता भी प्रदान की है फिर आम व्यक्ति तो उनका अनुसरण करता ही है।

फिर भी प्राचीन काल या मध्य युग में नारी की हीन दशा के विरूद्ध कोई आन्दोलन नहीं चलाया गया। नारी के अधिकारों के संघर्ष का सिलसिला अट्ठारवीं शताब्दी में यूरोपीय देशों में सर्वप्रथम प्रकाश मे आया। उदारवादी परम्परा के अन्तर्गत 'मेरी काल्स्टन क्राफ्ट' की कृति ''विन्डीकेशन ऑफ द राइट्स ऑफ बूमेन'' 1793 में स्त्रियों को कानूनी राजनीतिक और शैक्षिक क्षेत्रों में समानता प्रदान करने के लिए जोर डाला गया। कालस्टन क्राफ्ट ने विशेष रूप से स्त्री पुरूष के लिये पृथक–पृथक सद्‌गुणों की प्रचलित धारणाओं को चुनौती देते हुये सामाजिक जीवन में स्त्री–पुरूष की एक जैसी भूमिका की मांग की। जान स्टुअर्ट मिल ने भी अपनी एक महत्वपूर्ण कृति ''सब्जेक्शन ऑफ वोमेन'' (स्त्रियों की पराधीनता) 1969 के अन्तर्गत यह तर्क दिया कि स्त्री पुरूष का सम्बन्ध मैत्री पर आधारित होना चाहिए प्रभुत्व पर नहीं। मिल ने विशेष रूप से विवाह कानून में सुधार और स्त्री मताधिकार पर बल देते हुये सुयोग्य एवं प्रतिभाशाली स्त्रियों को समान अवसर प्रदान करने की बात की थी।

1970 से शुरू होने वाले दशक में यूरोप और अमेरिका की अनेक जागरूक महिलाओं ने अनुभव किया कि स्त्रियों के मताधिकार आंदोलनों और

स्त्रियों की स्थिति के प्रति उदारवादी एवं समाजवादी दोनों विचार परम्पराओं में इतनी सजगता के बावजूद पश्चिमी संस्कृति के भीतर स्त्रियों की पराधीनता का अंत करने की दिशा में कोई ठोस प्रगति नहीं हो पाई थी। तभी से नारी अधिकारों के लिए एक नये आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

परिणाम स्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा नारी के मानवाधिकारों की रक्षा के लिए एक आयोग की स्थापना की गई। जिसमें स्त्रियों के साथ भेदभाव के विरूद्ध उन्हें कुछ अधिकार दिये गये जिनसे समाज में उनके प्रति हो रहे शोषण एवं अत्याचारों को रोका जा सके तथा उनके साथ जो दूसरे दर्जे का व्यवहार होता है वो न हो। उन्हें भी मनुष्य माना जाये और उनकी अस्मिता व गरिमा की रक्षा की जा सके।

''महासभा ने 7 नवम्बर, 1967 को महिलाओं के विरूद्ध भेदभाव की समाप्ति की घोषणा–3 को (Declaration on the Flimination of Discrimination Against Women) अंगीकार किया'', और घोषणा में प्रस्तावित सिद्धान्तों के कार्यान्वयन के लिए महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति पर अभिसमय 18 दिसम्बर, 1979 को महासभा द्वारा अंगीकार किया गयां अभिसमय 1981 को प्रवृत्त हुआ और 12 जून, 2002 तक इसके 169 राज्य पक्षकार बन चुके हैं।

चूंकि भारत भी इसका पक्षकार है इसीलिए यह नियम भारत पर भी लागू होते हैं–

1. "स्त्रियों के साथ भेदभाव समाप्त किये जायेंगे तथा उन्हें पुरूषों के समान अधिकार देने से इंकार करना या उसकी सीमा निश्चित करना बुनियादी रूप से अन्यायपूर्ण है। और मानवीय गरिमा के खिलाफ अपराध है।

2. स्त्रियों के खिलाफ प्रचलित कानूनों रिवाजों नियमों और व्यवहारों को समाप्त करने के लिए सभी उचित कदम उठाये जायेंगे तथा स्त्रियों और पुरूषों के समानता के अधिकार को पर्याप्त कानूनी संरक्षण दिया जायेगा।

3. महिलाओं को हीन मानने के विचार पर आधारित सभी तरह की प्रथाओं और प्रचलनों को मिटाने और पूर्वाग्रहों को समाप्त करने की दिशा में जनमत को शिक्षित करने के लिए तथा राष्ट्रीय भावनाओं को इस दिशा में मोड़ने के लिए सभी उचित उपाय किये जायेंगे।

4. स्त्रियों को पुरूषों की ही तरह राष्ट्रीयता प्राप्त करने बदलने या बरकरार रखने का अधिकार होगा। किसी विदेशी से विवाह करने पर पत्नी की राष्ट्रीयता पर अपने आप कोई प्रभाव नहीं होगा न वह राज्य विहीन होगी और न ही उस पर अपने पति की राष्ट्रीयता आरोपित की जायेगी।

5. पति और पत्नी की समानता के सिद्धान्त को सुनिश्चित करने के लिए सभी उचित कदम उठाये जायेंगे और खास तौर से (अ) महिलाओं को अपना जीवन साथी चुनने और अपनी पूर्ण तथा स्वतन्त्र सहमति से ही विवाह करने की पुरूषों जैसी स्वाधीनता का अधिकार होगा। (ब) विवाह

के दौरान और विवाह के विच्छेद के समय स्त्रियों के अधिकार पुरूषों की तरह ही होंगे सभी मामलों में बच्चों का हित सर्वोच्च होगा। (स) बच्चों के मामले में माता पिता के अधिकार व कर्तव्य बराबर होंगे।

6. स्त्रियों की खरीद बिक्री के सभी रूपों तथा स्त्रियों की वैश्यावृत्ति को रोकने के लिए कानून बनाने सहित सभी उचित उपाय किये जायेंगे।"[24]

भारत सहित अनेकों देशों ने अधिकारों की घोषणा की। पर वास्तव में यह अधिकार स्त्रियों को नहीं दिये गये। समाज द्वारा नारी का शोषण उसी प्रकार आज भी किया जा रहा है जैसा अधिकारों के मिलने से पहले हो रहा था और वर्तमान समय में महिलाओं की स्थिति और भी अधिक मार्मिक होती जा रही है। भारतीय राष्ट्रीय महिला आयोग के आंकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में गत वर्ष महिला उत्पीड़न के कुल 18920 मामले दर्ज किये गये। इसमें 31.8 प्रतिशत दहेज हत्यायें, 13.2 प्रतिशत मामलों में पति या अन्य घरेलू सदस्यों ने परिवार की महिला के साथ क्रूरता पूर्ण व्यवहार किया। 18.3 प्रतिशत महिलाओं को अगवा किया गया। शेष 28.7 प्रतिशत मामले यौन उत्पीड़न के हैं।"[25]

इससे बदतर स्थिति बुन्देलखण्ड क्षेत्र की है। जहाँ पिछड़ी एवं निम्न जाति के लोग अधिक निवास करते हैं जहाँ स्त्रियों के साथ जानवरों के समान व्यवहार किया जाता है। प्रश्न उठता है इस इक्कीसवीं सदी के दौर में जब प्रत्येक बुद्धिजीवी विचारक (स्त्री पुरुष) यह स्वीकार करता है कि प्राकृतिक तौर

[24] महासभा प्रस्ताव 2263 (XXII) दिनांक 7 नवम्बर, 1967

पर स्त्री पुरूषों के बीच कम से कम बौद्धिक रूप से कोई असमानता नहीं है, फिर भी शारीरिक एवं मानसिक उत्पीड़न समाप्त क्यों नहीं होता हैं ? इसका एक उत्तर तो यह दिया जा सकता है कि आज भी यहां के लोगों की सोच अर्द्धसामन्ती है। वे आज भी स्त्रियों को अपने से निम्न देखना चाहते हैं यहां की सामाजिक सोच सामाजिक आचार संहितायें, धार्मिक रुढ़ियाँ, संस्कार ग्रस्तता सभी पुरूष प्रधान हैं। वे महिलाओं को दूसरे दर्जे का नागरिक मानती हैं। और महिला शोषण को अपना अधिकार। किन्तु केरल राज्य हमारे लिए उदाहरण है जहाँ महिला उत्पीड़न शून्य है। उत्तर प्रदेश हो या बुन्देलखण्ड यहाँ 2006–07 में 1073 मामले महिला उत्पीड़न के आयोग में पंजीकृत हुये। जबकि बुन्देलखण्ड से लगभग 70 मामले 2006–07 में दर्ज हुये। 2005–06 में उ0 प्र0 से 896 मामले एवं बुन्देलखण्ड से 64 मामले पंजीकृत हुये। यह संख्या प्रत्येक साल बढ़ रही है जबकि ये तो हम सब जानते हैं कि वस्तुतः कितने लोग मामले दर्ज कराते हैं बल्कि वे तो अपने ऊपर हुये अत्याचारों को चुपचाप सह जाते हैं और अत्याचार, अपराध बढ़ते ही रहते हैं।

इस सन्दर्भ में मुझे नोवल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन का यह कहना सही प्रतीत होता है कि अपराधों की जड़ में शिक्षा का न होना एक बड़ा कारण है। जबकि मेरा मानना है कि शिक्षा और मानवाधिकारों का आपस में मजबूत रिश्ता है इसी सन्दर्भ में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने स्त्री और पुरूषों की समानता

---

[25] अरिहन जैन : 'मानवाधिकारों की एक सूची' राजकिशोर (सम्पादित) ''मानवाधिकारों का संघर्ष'' 21 ई0 दरियागंज, नई दिल्ली, 1995 पृ0 22, 23

के विषय में कहा था कि "स्त्रियों के अधिकारों के सवाल पर मैं किसी तरह का समझौता स्वीकार नहीं कर सकता। पुत्रों और पुत्रियों में कोई भेद नहीं होना चाहिए। उनके साथ पूर्ण समानता का व्यवहार होना चाहिए।"[26]

महिलाओं को इतने अधिकार मिलने के बाद भी केन्द्रीय महिला और बाल विकास मन्त्रालय के प्रकाशित आंकड़े महिला उत्पीड़न की स्थिति को और भी भवावह बताते हैं–

1. प्रत्येक 54 मिनट पर एक – बलात्कार
2. प्रत्येक 26 मिनट पर एक – छेड़खानी
3. प्रत्येक 43 मिनट पर एक – अपहरण
4. प्रत्येक 51 मिनट पर एक – उत्पीड़न
5. प्रत्येक 60 मिनट पर एक – दहेज हत्या
6. प्रत्येक 33 मिनट पर निर्मम– व्यवहार
7. प्रत्येक 7 मिनट पर महिलाओं के विरूद्ध– एक घटना

आंकड़े यह भी बताते है–भारत में प्रतिवर्ष लगभग 5 हजार महिलायें दहेज के कारण मौत का शिकार होती हैं। प्रतिवर्ष 5 हजार से ज्यादा बलात्कार के मामले आते हैं। जबकि हर बलात्कार का मामला दर्ज नहीं किया जाता है। ये मामले प्रतिवर्ष अपवाद वर्ष को छोड़कर लगातार बढ़ते जा रहे हैं। जैसे– झाँसी के ही आँकड़ों पर नजर डालकर यह पता चलता है।

2005 2006 2007

---

[26] आज "समाप्त क्यों नहीं होता महिला उत्पीड़न ?" डा0 प्रभा दीक्षित, 23 मार्च, 2007

दहेज हत्या	13	21	28
बलात्कार	3	8	10
अपहरण	8	6	12
छेड़खानी	37	45	55
शीलभंग	14	19	38

जिला झाँसी की एक घटना के अनुसार– रामजीवन राजपूत के द्वारा 6 वर्ष की मासूम बच्ची के साथ ग्राम बढ़ौरा में बलात्कार किया, शकील खाँ के द्वारा अपनी ही 3 वर्षीय बच्ची के साथ बलात्कार किया गया। ये केवल एक साधारण सी दुर्घटना मात्र नहीं है ये तो कलंक है समाज के ऊपर। जहाँ मानसिक उन्माद से ग्रस्त लोग छोटे–छोटे मासूमों को भी अपनी हवस का शिकार बना डालते हैं इस प्रकार के केस यहाँ प्रतिदिन ही घटित होते हैं कितने केस तो ऐसे होते हैं जो पुलिस में दर्ज ही नहीं कराये जाते हैं। अधिकतर यह केस निचले तबके के लोगों एवं पिछड़े क्षेत्रों में अधिक होते हैं। बलात्कार में संलग्न लोगों में 3 से 4 प्रतिशत को ही सजा मिलती है। इस स्थिति के लिए और कोई नहीं मात्र भ्रष्ट पुलिस प्रशासन ही जिम्मेदार है जो इन कृत्यों के लिए जिम्मेदार लोगों को गिरफ्तार ही नहीं कर पाता या गिरफ्तार ही नहीं करता।

"बलात्कार का शिकार होने वालों में 0–10 वर्ष की उम्रवालों का 25 प्रतिशत, 11–15 वर्ष की उम्र वालों का 26 प्रतिशत, 16–20 वर्ष की उम्र वालों

का 24 प्रतिशत, 21–25 वर्ष की उम्र वालों का 12 प्रतिशत, 26–30 वर्ष की उम्र वालों का 7 प्रतिशत तथा 31–40 वर्ष की उम्र वालों का 5 प्रतिशत है। बलात्कार के दोषी लोगो में 8 प्रतिशत करीबी रिश्तेदार, 56 प्रतिशत अन्य जानकार लोग एवं 33 प्रतिशत अनजान लोग होते हैं।"[27]

इसी तरह बुन्देलखण्ड में व्याप्त कुरीतियों में दहेज प्रथा भी काफी पुरानी है और बुन्देलखण्ड में यह अपने वीभत्स रूप में विद्यमान है। इसके कारण यहां महिलाओं को कई प्रकार की यातनाओं का शिकार होना पड़ता है। समाज में दहेज लेना और दहेज देना दोनों ही भारतीय कानून के दहेज प्रतिरोध अधिनियम 1991 (संशोधित 1984) की धारा 4 में दहेज की मांग करने को भी दण्डनीय अपराध माना गया है। परन्तु इतने नियम होने के बाद भी हमारे यहां खुलकर दहेज दिया और लिया जाता है। दहेज हत्याओं की संख्या में भी लगातार कमी होने की अपेक्षा वृद्धि होती जा रही है। एवं दहेज के लिए शारीरिक एवं मानसिक प्रताड़ना देने की घटनाओं में उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुई है ऐसा लगता है कि जैसे–जैसे समाज में सामाजिक विकास को गति मिली, वैसे–वैसे समाज में इन कुरीतियों की जड़ें गहरी होती जा रही हैं।

बुन्देलखण्ड में महिलाओं का साक्षरता प्रतिशत जो 1951 में सिर्फ 8.86 प्रतिशत था। वह वर्ष 2001 तक 42.16 प्रतिशत हो गया परन्तु यह अभी भी सन्तोषजनक नहीं है। आवश्यकता है महिलाओं में शिक्षा प्रसार के साथ वर्तमान

---

[27] एम0 ए0 अन्सारी– "राष्ट्रीय आयोग और भारतीय नारी" जयपुर, पृ0 200, 225

कानूनों को और अधिक सख्त बनाने की अन्यथा इसी प्रकार महिलाओं के मानवाधिकारों का हनन होता रहेगा।

अतः आज भी जिस देश में यह घोषणा दोहरायी जाती है कि "स्त्रियों को वेद पाठ का अधिकार नहीं है। यह घोषणा धार्मिक गुरू आदि शंकराचार्य करते हैं और लोग सुनते हैं। नारी उत्पीड़न हमारे धर्म के सीखचों में महफूज है इसीलिए जिस ताकत के खेल में स्त्री ही स्त्री को जन्म देने में हिचकती है, उसी खेल में स्त्री के शोषण का सबसे बड़ा अस्त्र स्त्री है। पुरूष प्रधान समाज की ताकत बहुत सीमा तक स्त्री के द्वारा ही स्त्री को गुलाम बनाती है।"[28]

हमारी परम्परा रही है कि नारी को शक्ति के रूप में पूजा जाता है। और फिर यही नारी अपने को अबला समझकर नीर भरी दुःख की बदली बन जाती है। कहां चला जाता है उस समय नारी का अपना दिव्य शक्ति रूप?"जब पुरूष नारी को भ्रूण अवस्था में ही मिटाना चाहता है तो कहीं जन्म के थोड़ी देर पश्चात् मुंह में नमक भरकर या ईंट का टुकड़ा ठूंसकर मार देता है, और तब माँ रूप नारी पुरूष से कोई प्रतिकार नहीं करती अपनी आत्मजा के नष्ट किये जाने पर। कभी नारी माता–पिता के लिये बोझ बनी आत्महत्या करने पर विवश हो जाती है, तो कभी चाँदी के टुकड़ों के अभाव में दहेज की बलि वेदी पर सुला दी जाती है। शिक्षा दीप जो समाज में प्रज्जवलित होता है उससे महिला ही क्यों आलोकित होने से बची है ? वह अपनी महिला संतान के लिए पुरूष समाज से क्यों नहीं लड़ पाती। नारी को बेचा जाता है, वेश्यावृत्ति कराई जाती

है नारी के साथ बलात्कार होता है नारी को भगाकर ले जाया जाता है और बलात् विवाह किया जाता है। नारी तो नारी से दया की भीख मांगती है।

किन्तु निष्ठुर नारी आगे होकर नारी के पतन की परिभाषा लिखने में पुरूष का सहयोग करती है। यहां तक कि पुरूष को प्रेरित करती है। पुरूष देवदास क्यों नहीं बनाया जाता ? नारी ही देवदासी क्यों ?"[29] हमारे समाज में नारी के लिए एक सीमा रेखा तय कर दी है। नारी को शक्ति, देवी जननी आदि नाम देकर झूठ ही महिमा मण्डित करके उसको मूर्ख बनाया जाता रहा है जिससे वह मूक बनी रहे और पुरूष वर्ग उसका शोषण करते रहे। दशकों में स्त्रियों का उत्पीड़न रोकने और उन्हें हक दिलाने के बारे में बड़ी संख्या में कानून पास हुये हैं। और यह सिलसिला इस दशक में भी जारी है। अगर इतने कानूनों का सचमुच पालन होता, तो बुन्देलखण्ड हो या भारतवर्ष प्रत्येक स्थान पर स्त्रियों के साथ भेदभाव और अत्याचार अब तक खत्म हो जाना था। दहेज हत्या, सती, बलात्कार या सम्पत्ति में उत्तराधिकार सम्बन्धी प्रतिनिधि घटनायें जब–जब देश के मानस को झकझोरती हैं, तब–तब संसद एक नया कानून पास कर देती है। इससे महिला संगठन और स्त्रियों के प्रति हमदर्दी रखने वाले खुश होकर खामोश हो जाते हैं। लेकिन व्यापक समाज में कानून और आचरण के बीच गहरी खाई है।

---

[28] आज "मानवाधिकारों की कसौटी पर महिलायें" योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, 13 मार्च, 2007
[29] रवीन्द्र वर्मा "ताकत का खेल (राजकिशोर सम्पादित) स्त्री के लिए जगह" 2000 नई दिल्ली, पृ0 110, 11

कानून जिसे अपराध मानता है बुन्देलखण्ड में सामन्ती व्यवस्था उसे अपनी परंपरा और रीति–रिवाज का दर्जा देती है। विकास के कई स्तरों पर जी रहे हमारे समाज में बाहरी हस्तक्षेप से आयी विकृतियाँ भी अपनी भूमिका निभाती हैं। इतनी पेचीदा स्थितियों में राज्य की संस्थायें भी पुरूष प्रधान मानसिकता से चलती हैं यानि किसी भी कानून का पूरी तरह से पालन होने के बजाय ढेर सारे कानूनों को थोड़ा सा पालन होता है।

"सख्त से सख्त कानूनों के बावजूद अत्याचार नहीं रूकते। वे कम होने के बजाय बढ़ते जाते हैं। कुछ साल बाद इन कानूनों की समीक्षा होती है तथा सजा के प्रावधान और कड़े कर दिये जाते हैं। जुर्माना बढ़ा दिया जाता है लेकिन परिणाम फिर वही। दहेज हत्या, बलात्कार घरेलू हिंसा और वेश्यावृत्ति की घटनाओं में कमी आने के बजाय बढ़ोत्तरी होती जाती है। इसके अलावा इन कानूनों से सजा पाने वालों की तादाद भी नगण्य होती है।"[30]

स्त्री अधिकारों के प्रति बढ़ती चेतना के इस दौर में पास हुये तमाम कानून सही मायने में उपयोगी होने के बजाय सजावट की वस्तु साबित हुये हैं। उन्होंने स्त्रियों को अधिकार–सम्पन्न बनाने के बजाय राज्यों को ज्यादा अधिकार सम्पन्न बनाया है। परिणाम स्वरूप स्त्री स्वतन्त्र होने के बजाय और लाचार हुई है। फिर महिला, गरीब और अल्पसंख्यक विरोधी मानसिकता से ग्रस्त राज्य से न्याय की उम्मीद कैसे की जाये। समय–समय पर पास होने वाले इन कानूनों की सबसे बड़ी उपलब्धि यही रही है कि वे सामाजिक आक्रोश के लिये 'सेफ्टी

वाल्व' साबित हुये हैं। इस तरह स्त्री के अधिकारों के बारे में विचारधारात्मक बहस अवरूद्ध हो जाती है।

आज आवश्यकता है कि समाज में स्त्री विरोधी मानसिकता को बदला जाये, बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में शिक्षा का स्तर बढ़ाया जाये। शिक्षित होने से तात्पर्य जैसे केवल नाम लिख लेना मात्र नहीं वरन् मानसिक और बौद्धिक विकास है। स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होना होगा। उसकी जो अस्मिता, प्रतिष्ठा, व्यक्तित्व खो गया है, जो छीन लिया गया है उसे साधिकार पाने की क्षमता स्त्री को अपने में लानी है। अपने अधिकारों के लिए प्रयासरत होना ही प्रबुद्धता है।

आज नारी को यथार्थवादी होना ही होगा। उसे आदर्श व यथार्थ के बीच का मध्यम मार्ग अपनाना होगा। नारी सिद्धान्त भी है व व्यवहार भी है। वह जीवन भी है व जगत भी है। वह माया है तो साक्षात जीवन दायिनी प्रकृति भी। नारी को अपने सच्चे स्वरूप को समझना होगा। उसे उन्नति के सन्दर्भ में शिक्षित बनकर कर्तव्य व उत्तरदायित्व की सही परिभाषा समझकर कर्मरत होना है, वह निर्माणकर्ता है वह सृजिका, पालिका व भार्या भी है। उसे अपने व्यक्तित्व का सकारात्मक रूप में विकास इस प्रकार करना है, ताकि पुरूषवर्ग उसको निर्बल व अक्षम न समझ पाये। सामूहिक उन्नति की धारणा के साथ उसे अपना विकास करना है परमार्थ भाव के साथ जीवन जीने की कामना ले वह यदि

---

[30] एम0 ए0 अन्सारी "नारी सुरक्षा एवं राष्ट्रीय महिला आयोग" 2000 पृ0 67

पुरूष अन्याय व अधर्म के समक्ष न झुकने का संकल्प ले लें, तो वह अपना स्थान भौतिकवादी आर्थिक प्रतिस्पर्धा के समाज में बना सकती है।

और "यदि वह सचेत है, प्रयासरत है प्रबुद्ध है तो वह सब कुछ पा सकती है, जिसे पुरूष ने उससे बलात् व छलावा देकर छीन लिया है।"[31]

(छ) पुलिस द्वारा अत्यधिक उत्पीड़ित क्षेत्र :

"मैं ये बात बड़े साफ तौर पर कहना चाहता हूँ कि हम किसी को यातनायें नहीं देते। हमें जहाँ कहीं भी यातनायें देने की शिकायतें मिली, हमने उनकी जांच करवाई और पाया कि वे सच नहीं थीं।"[32] यद्यपि भारत में उत्पीड़न के व्यापक स्तर पर जारी रहने का एक मुख्य कारण यही है कि यहाँ शीर्षस्थ सरकारी अधिकारी और प्रतिनिधि, इन मामलों से निपटना तो दूर यह तक मानने के लिये तैयार नहीं होते कि उत्पीड़न होता है। न्यायधीशों, पत्रकारों, विशेषज्ञ टीकाकारों तथा खुद पुलिस अधिकारियों और सरकारी आयोगों द्वारा उत्पीड़न के मामलों का सत्यापन किये जाने के बावजूद सरकार अपनी स्थिति पर अड़ी रहती है। जबकि देश की एक अरब की आबादी में बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिनके अधिकारों का हनन राज्य, राज्य से निकली संस्थायें या व्यक्तिगत रूप से नहीं होता है।

वास्तव में मानव अधिकार मानव जाति के अधिकार हैं मानव अधिकार समय एवं स्थान से परिबद्ध नहीं है। एवं मानव जाति जो समय व स्थान की

---

[31] वही पृ0 69, 70
[32] एमनेस्टी इण्टर नेशनल "भूमिका" लन्दन 92 पृ0 1

परिधि में बंधी है, उसे कोई क्षति नहीं पहुंचा सकता उससे लाभांवित होने में बाधा नहीं डाल सकता। मानव अधिकारों के विरूद्ध उठाये गये कदम घातक सिद्ध हो सकते हैं एवं उनका विरोध होना निश्चित है। इससे विद्रोह व युद्ध छिड़ सकता है। लोगों ने खासकर पुलिस ने इन्हें बर्बाद व खंडित करने के प्रयास किये हैं पर ये सार्वभौम अनंत तथा लोगों के जन्म सिद्ध अधिकार है। अतः ऐसे प्रयासों में न तो सफलता मिली है न मिलेगी, क्योंकि मानव अधिकार मानव निर्मित नहीं है।

मानव अधिकार मानव जीवन के विकास की लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है अतः भारतीय संविधान में इन्हें वर्णित किया गया है और राज्यों को दिशा निर्देश दिया गया है कि इनका पालन किया जाना चाहिए जिससे सामाजिक व्यवस्था की प्राप्ति हो सके। सर्वसम्मत मानवाधिकारों का सम्मान और मानवीय गरिमा की रक्षा करना शासन का कर्तव्य व दायित्व है और शासन के कार्यकारी अंग के रूप में इसके पालन का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पुलिस बल के ऊपर आता है। यही कारण है कि मानवाधिकार हनन के अनेक आरोप पुलिस बल के ऊपर लगाए जाते रहे हैं जबकि मानवाधिकारों की रक्षा करना ही इनका प्रमुख कर्तव्य है इसके लिए इन्हें अपने दशाब्दियों पुराने दृष्टिकोण व अभिवृत्ति में परिवर्तन करना होगा। जब तक यह बदलाव दृष्टिगोचर नहीं होगा, तब तक वर्तमान समय में पुलिस अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन सुचारू रूप से नहीं कर पायेगी।

निःसन्देह विश्व में मानवाधिकारों की सुरक्षा पर विशेष बल दिया जा रहा है जिन देशों में मानवाधिकारों के हनन की अधिक घटनायें होती हैं, उनको विश्व जनमत का विपरीत प्रभाव झेलना पड़ता है। उसका प्रभाव सम्बन्धित देश की अर्थव्यवस्था पर भी पड़ता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हमारी पुलिस भी मानवाधिकारों के संरक्षण के प्रति बराबर सजग रहे पूरे देश में मानवाधिकारों के सर्वाधिक मामले उ0 प्र0 से ही आते हैं। बुन्देलखण्ड क्षेत्र को तो पुलिस बाहुल्य क्षेत्र ही कहा जाता है बरिष्ठ पत्रकार के0 पी0 सिंह के अनुसार तो सामान्य आदमी को गुण्डा बनाने का कार्य पुलिस तंत्र द्वारा आमतौर पर किया जाता है। क्योंकि इनकी कार्य प्रणाली सामन्ती प्रणाली पर आधारित है। पुलिस हिरासत में अभियुक्तों की प्रताड़ना भीड़ आदि को नियंत्रित करने में आवश्यकता से अधिक बल प्रयोग करना, महिलाओं, बच्चों तथा सामन्य नागरिकों से पुलिसजनों द्वारा दुर्व्यवहार करने, कानून द्वारा दिये गये अधिकारों का अतिक्रमण कर पुलिस विभाग की धौंस से गलत कार्य करने आदि सम्बन्धित ऐसे बिन्दु हैं, जिनका मानवाधिकारों के हनन से तो सम्बन्ध है ही तथा साथ ही ऐसे कृत्यों से पुलिस की छवि धूमिल होती है। पुलिस की भूमिका के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए डा0 राजेन्द्र प्रसाद ने कहा था– " हमारे देश की वर्तमान व्यवस्था में अन्य लोगों की अपेक्षा पुलिस का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण है।

अंग्रेजों के शासन काल में पुलिस थी और अब भी है। अपराधों का पता लगाने तथा शांति स्थापित करने और अपराधियों को दंड दिलाने के लिए पुलिस का होना अनिवार्य था। पुलिस द्वारा किये जाने वाले यह सब कार्य आज भी पहले की भांति हैं लेकिन एक मूलभूत और महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ है। बहुत से ऐसे अप्रिय कार्य हैं जो पुलिस कर्मचारियों को करने पड़ते हैं उन्हें सभी व्यक्तियों के साथ सोच समझकर उचित और न्यायपूर्ण व्यवहार करना पड़ता है। उन्हें इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि लोगों के मन में अपने घर में रहते हुये, अपनी ड्यूटी करते समय किसी प्रकार की चिंता न रहे यह सभी कार्य पुलिस को करने होते हैं। किंतु मेरे विचार से पुलिस के कर्मचारियों में एक मूलभूत परिवर्तन यह होना चाहिए कि वे अपना व्यवहार उसी प्रकार का रखें जैसा कि एक चिकित्सक का होता है एक चिकित्सक व्यक्ति के स्वास्थ्य का ध्यान रखता है डाक्टर न केवल बीमार व्यक्ति का इलाज ही करता है बल्कि इस बात का भी ध्यान रखता है कि बच्चों को बीमार पड़ने से रोका जा सके। इसी प्रकार से पुलिस के सिपाहियों को भी चाहिए कि वे किसी अपराधी को किये गये अपराध के लिए दंड दिलाने के साथ–साथ व्यक्तियों द्वारा किये जाने वाले अपराध को रोकने के प्रयास भी करे लेकिन यह कार्य केवल पुलिस का ही नहीं है इस कार्य में समाज को पूर्ण रूप से सहयोग देना चाहिए और इस लक्ष्य की प्राप्ति के प्रयत्नों में अपनी भूमिका अदा करनी चाहिए।"[33]

---

[33] करनाल में 21–08–1959 को पुलिस क्वाटरों के उद्घाटन के सम्बन्ध में दिया गया डा0 राजेन्द्र प्रसाद का भाषण 'द हिन्दू से'

विकास के प्रतिमानों में पिछड़े बुन्देलखण्ड क्षेत्र की स्थिति इस समय बहुत दयनीय बनी हुई है लगातार पानी की कमी, (वर्षो से पड़ने वाला सूख) बेरोजगारी, दलित जातियो एवं गरीबों का निम्न जीवन स्तर शिक्षा की कमी, भूख से मरने वालों की संख्या में वृद्धि होना यह सब यहाँ की बदतर स्थिति को दर्शाते है। अधिकतर बेरोजगारी के कारण यहाँ के युवक गलत आदतों में पड़कर अपराध कार्य करने लगते हैं। जहाँ से पुलिस का कार्य शुरू होता है यानि पुलिस का सर्वोपरि कर्तव्य है अपराध की रोकथाम करना तथा ऐसे प्रयास करना जिससे कि अपराध घटित न हों। अगर अपराध घटित हो जाते हैं तो पुलिस का यह परम कर्तव्य है कि अभियुक्तों को गिरफ्तार किया जाये तथा उन्हें न्यायालय से उचित सजाएं दिलाई जायें। अगर किसी प्रकार जांच कार्य में समयाभाव के नाते किसी कमी के कारण अथवा किसी अन्य कारणवश न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को बिना सजा दिये छोड़ दिया जाता है तो इससे अभियुक्तों के हौंसले और बुलंद हो जाते हैं। तथा अपराध बढ़ने लगते हैं इससे समाज में कुव्यवस्था फैलने लगती है। परन्तु आज की स्थिति से तो ऐसा प्रतीत होता है सर्वाधिक मानवाधिकारों का हनन पुलिस के द्वारा ही किया जाता है।

त्रिवेणी दत्त पाण्डेय के अनुसार–"पुलिस द्वारा मानवाधिकार का अतिक्रमण आज एक बदनुमा धब्बे की तरह पुलिस पर चस्पा होता जा रहा है।" आये दिन विभिन्न पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से पुलिस बल द्वारा मानवाधिकार के उल्लघंन की बातें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से

सामने आ रही है। इतना ही नहीं हमारे देश की सभी प्रदेशों की पुलिस एवं सुरक्षा बलों पर सेनाओं पर भी मानवाधिकार हनन के कीचड़ उछाले जा रहे हैं। इसी प्रकार आये दिन बुन्देलखण्ड मे भी पुलिस अभिरक्षा में मृत्यु, बलात्कार, हिंसा, शारीरिक यातना, बिना लिखा–पढ़ी 24 घंटे से अधिक बन्दियों को अपनी अभिरक्षा में रखना, फर्जी मुठभेड़ दिखकर हत्या, जमानतीय अपराधों में जमानत न लेना, बन्दी को उसके गिरफ्तारी एवं जमानत सम्बन्धी सूचना न देना, सूचना रिपोर्ट का अंकन न करना, दीवानी न्यायालय के प्रकरणों में हस्तक्षेप अनेक दिशाओं में मानवाधिकारों का पुलिस बल द्वारा हनन किया जा रहा है।

यद्यपि इसके लिए केवल पुलिस ही उत्तरदायी नहीं बल्कि हम सब भी दोषी हैं क्योंकि हम सबको ही केवल अपने अधिकार याद रहते हैं। कर्तव्य नहीं और समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण भी मानवाधिकारों की स्थिति दयनीय बनी हुई है। **कैलाश नाथ गुप्त (मानवाधिकार आयोग में परामर्शदाता) के अनुसार**–पुलिस के नित्य प्रति के कार्य से जहाँ प्रत्यक्ष रूप में मानवाधिकार के अतिक्रमण की बातें दृष्टिगत होती हैं। ये सब कार्य हम सभी के साथ कहीं न कहीं घटित होते रहते हैं जो बुन्देलखण्ड में भी प्रायः देखने को मिलते हैं–

1. ''प्रथम सूचना रिपोर्ट का अंकन न करना, धाराओं का अल्पीकरण करना।
2. बिना विवेचना से अपराध प्रमाणित हुए यदा–कदा गिरफ्तारी कर लेना, साक्ष्य न मिलने पर अन्तिम रिपोर्ट प्रेषित करना।

3. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारण न बताना।

4. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति का स्वास्थ्य परीक्षण न कराना।

5. जमानतीय अपराधों में बन्दी बनाये गये व्यक्तियों की थानाध्यक्ष द्वारा जमानत न देकर न्यायालय के समक्ष रिमाण्ड पर प्रस्तुत करना।

6. गिरफ्तार किए गये व्यक्ति के परिजनों को उसकी गिरफ्तारी एवं जमानत के बारे में सूचना न देना।

7. पुलिस अभिरक्षा में अमानवीय यातना देना जिसमें परिणामस्वरूप यदा–कदा मृत्यु हो जाना।

8. गिरफ्तारी एवं तलाशी के समय विधि द्वारा दिये गये नियमों का पालन न करना।

9. महिलाओं की गिरफ्तारी के समय महिला पुलिस/जनता की सम्भ्रांत महिला का न होना एवं पुलिस द्वारा सम्मानजनक व्यवहार न करना।

10. पुलिस अभिरक्षा में बलात्कार।

11. बाल अपराधियों के साथ मानवीय व्यवहार न करके कुख्यात अपराधियों जैसा बर्ताव करना।

12. सूर्यास्त से सूर्योदय के मध्य थानों/चौकियों में महिलाओं को निरूद्ध रखते समय महिला पुलिस या उसके परिवार के सदस्यों को साथ न रहने देना।

13. बन्दी को दूरभाष की सुविधा उपलब्ध न कराना।

14. महिलाओं से पूँछताछ के समय उनके परिवार के सदस्यों को साथ रहने से रोकना।

15. बन्दी बनाये गये व्यक्ति से पूछताछ के समय उनकी इच्छा के अनुरूप विधि विशेषज्ञ की सेवा न लेना।

16. गिरफ्तार किये गये व्यक्ति को 24 घंटे से अधिक अभिरक्षा में निरूद्ध रखना।

17. किसी व्यक्ति को घर से पकड़कर झूठे मुकदमें में लगाकर जेल भेज देना।

(यदा, शस्त्र अधिनियम, आबकारी अधिनियम, N D P S Act. 109 CRPC इत्यादि)

18. किसी चौराहे पर या जनता को दृष्टिगोचर होने वाले खुले स्थान पर आए दिन किसी न किसी पुलिस वर्दीधारी द्वारा कर्तव्य पालन के दौरान, रिक्शा, ठेला चलाने वाले किसी गरीब को पीट देना।

19. माननीय उच्चतम न्यायालय के निर्देशों के विपरीत रस्सी, हथकड़ी लगाकर अभियुक्त को न्यायालय में उपस्थित करना, लाना ले जाना।

20. हवालात में बन्दी को उचित खाना, विस्तर, रोशनी, रहन–सहन में व्यवधान करना गाली देना आदि।

21. विधि द्वारा जनता को दिये गये मौलिक अधिकारों में बाधा डालना एवं उनका हनन करना।"[34]

ये सब ऐसी बातें हैं जिन्हें पुलिस के मानवाधिकारों के अतिक्रमण के रूप में प्रतिदिन देखा जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है केवल यही नहीं बल्कि प्रदेश और देश में ऐसी घटनायें प्रतिदिन आम बात है। जालौन जिले के ही नीरजपुर गांव में थाना कुठौंद में 30 वर्षीय हरिश्चन्द्र पाल को पुलिस मामूली से केस में घर से ले गई और 08–09–04 को उसकी पुलिस की पिटाई के कारण पुलिस थाने में ही मृत्यु हो गई। जबकि पुलिस के द्वारा उसकी मृत्यु दौरे के कारण दिखाई गई। पर अखबारों में उसके चित्र पर चोटों के साफ निशान दिखाये गये हैं। तब श्री अभिमन्यु त्रिपाठी के आदेश पर दोबारा जांच हुई और जांच में पिटाई के कारण मृत्यु दिखाया गया। तब प्रतिवादियों के खिलाफ मुकदमें दर्ज हुये। और मामला कोर्ट में विचाराधीन है। जबकि और भी कई इस तरह के केस यहाँ होते रहते हैं। पर जरूरी नहीं कि उनकी सही–सही जांच हो। क्योंकि उसकी जांच करने वाले भी उन्हीं के सहकर्मी होते हैं। जो पूरी कोशिश करते हैं कि वे उन्हें बचा लें। इसी तरह हमीरपुर जिले में भी एक ऐसा ही केस अखबारों में आया था।

जबकि चाहे पुलिस हो या अन्य कोई भी। मानवाधिकारों का हनन करने वालों के खिलाफ पर्याप्त कानून है, "संविधान की धारा 21 जीवनयापन करने, व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के तथा अन्य मौलिक अधिकारों की रक्षा करती है।

---

[34] कैलाश नाथ गुप्त "मानवाधिकार और उनकी रक्षा" 200 पृ0 163, 164

हालांकि विशिष्ट रूप से यातनाओं को रोकने के लिए पर्याप्त संवैधानिक प्रावधान नहीं है परन्तु भारतीय न्यायालयों ने यह माना है कि संविधान की धारा 29 यातना दिये जाने के खिलाफ नागरिकों की रक्षा करती है तथा भारतीय न्याय संहिता (I.P.C.) की धारा 330 तथा 331 तथा भारतीय पुलिस एक्ट की धारा 29 ऐसी प्रथाओं की रोकथाम करती है।"[35]

पुलिस हिरासत मे बलात्कार के लिए आई० पी० सी० की धारा 376 के अन्तर्गत दिये जाने वाले दण्ड को बढ़ा कर 30 वर्ष कर दिया गया है तथा इसी के अन्तर्गत यह दण्ड अन्य सरकारी कर्मचारियों और सशस्त्र सेना पर भी लागू होता है अपराध संहिता (कोड आफ क्रिमनल प्रोसीजर) यानि सी० सी० पी० की धारा 176 के अनुसार हिरासत में मौत होने के मामले की एक मजिस्ट्रेट द्वारा जांच करानी अनिवार्य है। इसी तरह मानवाधिकारों के पालन के लिये आर्टिकिल 226 उच्च न्यायालयों को इन अधिकारों का पालन करने के लिये आदेश जारी करने का अधिकार है जिनमें हैबियस कार्पस भी शामिल है। संविधान की धारा 32 उच्चतम न्यायालय तक सीधे जाने की छूट प्राप्त है, व्यवहार रूप से न्यायालय अक्सर अन्याय के शिकार हुये व्यक्तियों को पहले उच्च न्यायालयों में भेज देते हैं ऐसे व्यक्ति इन मामलों में अपराधिक तथा हरजाने पाने के लिए दीवानी, दोनों ही तरह के मुकदमें दायर कर सकते हैं। परन्तु हमारी न्यायिक व्यवस्था इतनी लम्बी और खर्चीली है। जिसमें सामान्य व्यक्ति फँसकर रह जाता है। मानवाधिकार संगठन पी० यू० डी० आर० के

[35] वही पृ० 67

अगस्त 1991 में प्रकाशित एक सर्वेक्षण में बताया गया था कि पुलिस की हिरासत में मरने वाले लगभग सभी लोग समाज के आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों के होते हैं। "The Telegraph" द्वारा जुलाई 1986 में दी गई एक खबर के अनुसार "वरिष्ठ अधिकारी यह मानते हैं कि पुलिस हवालात में आमतौर से मामूली लोग ही मरते हैं।"

पिछड़े क्षेत्रों में केवल साधनहीन लोगों के ही हवालात में शोषण एवं ऐसी मौत से मरने की सम्भावना हमेशा रहती है। उनमें दलित व आदिवासी तथा इन समुदायों की स्त्रियाँ और धार्मिक अल्पसंख्यक शामिल होते हैं। इन पीड़ित लोगों में बच्चे बूढ़े और अपाहिज भी होते हैं। उत्पीड़न के शिकार होने वाले इन समूहों के लोगों को मामूली अपराधों के सन्देहों में गिरफ्तार किया जाता है। पुलिस की हिरासत में मरने वाले कुछ लोग तो ऐसे भी होते हैं जिन्हें अपराध का पता तक नहीं होता। उनको प्रायः उनके विरूद्ध बिना कोई अपराध दर्ज किये अवैधानिक रूप से हिरासत में लिया जाता है और एक बार जब किसी बन्दी की मृत्यु हो जाती है तब उस स्थिति में उसे किसी अपराध में फाँसना या उसे बन्दी बनाये जाने की बात से साफ मुकर जाना पुलिस के लिए बहुत ही सामान्य कार्य दिखाई पड़ता है। हवालात में होने वाली अन्य प्रकार की मौतें उन लोगों की बताई गई हैं जो स्वयं अपराधी नहीं थे।

एमनेस्टी इण्टरनेशनल के अनुसार भारत में 1985 से 1991 तक 415 मौतों की सूचनायें प्राप्त हुई जिनके पीछे उत्पीड़न के आरोप है और सर्वाधिक

मामले 61 उ0 प्र0 की पुलिस के विरूद्ध प्राप्त हुये थे। इसी क्रम में 2005–06 में उ0 प्र0 से राज्य मानवाधिकार आयोग को पुलिस के विरूद्ध 2703 मामले पुलिस उत्पीड़न के एवं बुन्देलखण्ड से 183 मामले प्राप्त हुये थे जबकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में प्राप्त वादों की संख्या इनसे कहीं अधिक है।

बुन्देलखण्ड के दस्यु प्रभावित क्षेत्रों में तो पुलिस राज्य कायम है वहां किसी के भी घर में बिना वारण्ट के घुस जाना, किसी को भी बिना अपराध बताये थाने में बैठा लेना बिल्कुल मामूली बात है। कभी–कभी तो महिलाओं को भी थाने में बैठा दिया जाता है जब तक कि उनके घर के पुरूष हाजिर नहीं होते। 2006–07 में बुन्देलखण्ड से 254 वाद पुलिस के विरूद्ध आयोग में पंजीकृत हुये थे। इसी तरह कारागार में भी पुलिस द्वारा अत्यधिक उत्पीड़न किया जाता है। कारागार से सम्बन्धित वादों की संख्या 2006–07 में 550 थी जबकि केवल वर्ष भर में 183 मामलों का निस्तारण हुआ था और 464 वाद विचाराधीन थे। और पूरे उ0 प्र0 से 2005, 2006, 2007 में क्रमशः 3172, 2703, 3745 बाद दर्ज हुये थे जबकि उ0 प्र0 से राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग 17334 वाद पंजीकृत हुये थे।

अतः आंकड़े दर्शाते हैं कि बुन्देलखण्ड में पुलिस द्वारा मानवाधिकारों का उत्पीड़न सर्वाधिक होता है। यह उत्पीड़न निर्बल कमजोर एवं अशिक्षित लोगों का अधिक होता है। अधिकारों की निरन्तर वृद्धि के पश्चात भी यह अधिकारों का हनन बढ़ता ही जा रहा है बुन्देलखण्ड के सातों जिलों में पुलिस उत्पीड़न

अन्य जिलों की अपेक्षा बहुत अधिक है। प्रत्येक दिन यहां के निवासी किसी न किसी रूप में पुलिस द्वारा सताये जाते हैं (एक बात मैं यहाँ अन्ततः कहना चाहती हूँ कि किसी भी विभाग में सभी समान नहीं होते) और यह उत्पीड़न आयोगों द्वारा दिये जा रहे लगातार निर्देश, प्रशिक्षण के उपरान्त भी बढ़ता जा रहा है। जबकि प्रत्येक थाने में मानवाधिकारों से सम्बन्धित निर्देश लिखे हुये हैं। और उन पर अमल करना प्रत्येक पुलिसकर्मी का कर्तव्य है परन्तु व्यवहारिक रूप में यह पुलिसकर्मी उन्हें अमल करना तो दूर पढ़ना भी अपना फर्ज नहीं समझते और स्वयं को न्यायकर्ता समझते हुये शोषण एवं अत्याचार करते जाते हैं। बुन्देलखण्ड में 50 प्रतिशत लोग आज भी अशिक्षित हैं जिन्हें अपने अधिकारों का पता ही नहीं और वे चुपचाप उन अत्याचारों को सहते जाते हैं और शोषण एवं अत्याचार का क्रम यहां लगातार जारी है। और मानवाधिकारों की प्राप्ति यहाँ महज एक सपना है अतः पुलिस को अपनी छवि मानव अधिकारों के रक्षक के रूप में विकसित करनी होगी। उनके व्यवहार व सोच में परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे लोगों में उनके प्रति अविश्वास की भावना मिट सके। और विश्वास जाग्रत हों।
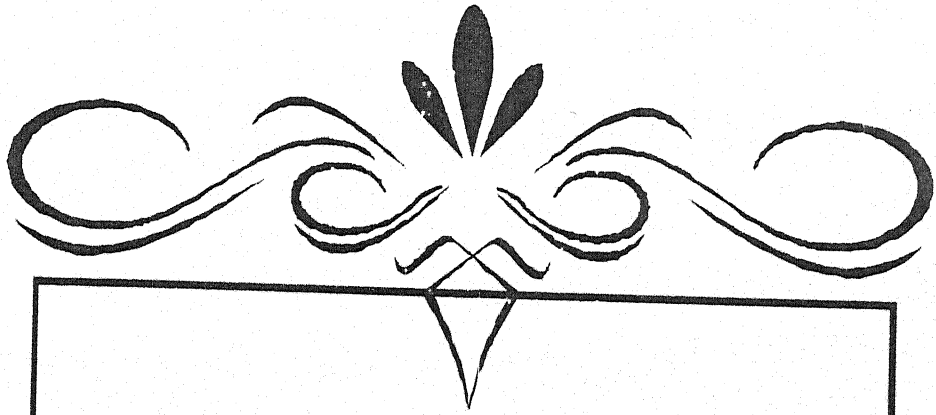
अध्याय-- पंचम

उ० प्र० के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जनपद

जालौन, झाँसी, ललितपुर, बाँदा, महोबा, हमीरपुर, चित्रकूट में मानवाधिकारों की समीक्षा
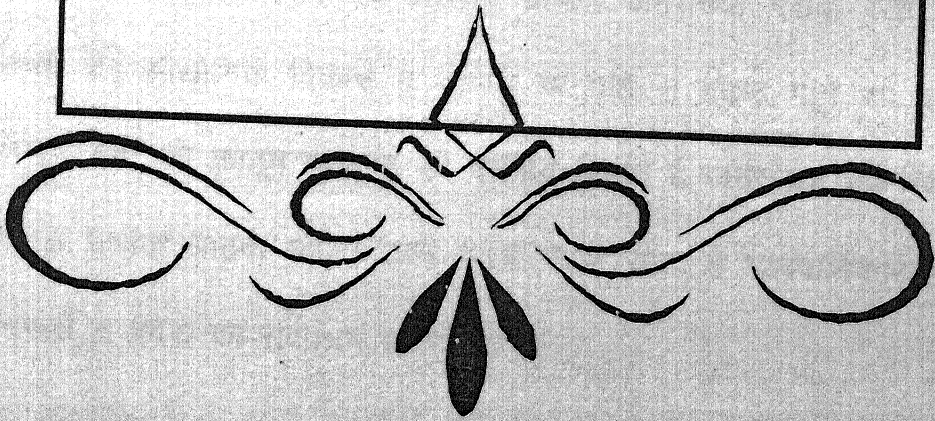
उ0 प्र0 के बुन्देलखण्ड क्षेत्र में जनपद–जालौन, झाँसी, ललितपुर, बाँदा, महोबा, चित्रकूट, हमीरपुर में मानवाधिकारों की समीक्षा

बुन्देलखण्ड में संयुक्त परिवार, उच्च आदर्श, मानव मूल्य साधारण जीवन, सच्चाई, बुजुर्गों का आदर सम्मान एवं सामाजिक नियमों के प्रति आदर भाव आदि श्रेष्ठ व्यवस्था के प्रतीक माने जाते रहे हैं। बुन्देलखण्ड का नाम आते ही स्वतन्त्रता आन्दोलन की भी याद आ जाती है। झाँसी की रानी से लेकर अनेक स्वतन्त्रता सेनानियों की यह भूमि बदहाल है और आबादी का एक बहुत बड़ा हिस्सा नारकीय जीवन जी रहा है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सात जिले समाहित है। जिनमें 2854 ग्राम पंचायत, 25 तहसील, 47 ब्लॉक, 417 न्याय पंचायत वाले बुन्देलखण्ड का क्षेत्रफल 29418 वर्ग किमी0 है जो कि सम्पूर्ण राज्य में क्षेत्र का 12.21 प्रतिशत है। क्षेत्र की कुल जनसंख्या 8232847 है जो कि राज्य की कुल जनसंख्या का 4.95 प्रतिशत है पूरा क्षेत्र सामान्य तौर पर देश के 100 अति गरीब जिलों की श्रेणी में आते हैं। और 75 प्रतिशत रोजगार कृषि क्षेत्र ही लोगों को देता है जबकि 42 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे रहती है। औद्योगिक विकास व व्यापार के गति न पकड़ पाने का एक बड़ा कारण यहाँ की कानून व्यवस्था की दयनीय स्थिति है जनसंख्या की स्थिति यह है कि प्रत्येक आंठवा व्यक्ति उत्तर प्रदेश में ही रहता है मानवाधिकार हनन के मामलों में प्रदेश का सर्वप्रथम स्थान है।

"राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में 2005–06 में पंजीकृत 74,444 मामलों में 44560 मामले उत्तर प्रदेश से थे तथा 2004–05 में 74401 में से 44643 एवं 2006–07 में कवेल उ0 प्र0 से ही 49000 वाद राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को यहाँ से प्राप्त हुये थे।"[1] जबकि इसके बाद दिल्ली का स्थान है जहाँ केवल 5027 मामले प्राप्त हुये थे जो कि अगले पृष्ठ पर ग्राफ द्वारा देखा जा सकता है। सामाजिक सूचकांक की दृष्टि से उत्तर प्रदेश भारत के सर्वाधिक पिछड़े तीन राज्यों में से एक है तथा प्रति व्यक्ति आय में भी यह अन्य राज्यों की तुलना में 9.7 प्रतिशत अंक पीछे हो गया। उद्योग जगत में संचार को छोडकर कृषि में मामूली पर औद्योगिक क्षेत्रों में भारी गिरावट आई है। जब उत्तर प्रदेश की स्थिति यह है तब बुन्देलखण्ड तो इसके भी पिछड़े क्षेत्रों में आता है यहाँ की स्थिति का अनुमान स्वयं लगाया जा सकता है।

जबकि सैद्धान्तिक रूप से बुन्देलखण्ड नैतिक मूल्यों, सामाजिक मूल्यों प्रथाओं परम्पराओं के कारण प्राचीन संस्कृति का संवाहक रहा है, किन्तु शिक्षा के अभाव, बाल विवाह, सती प्रथा, अस्पृश्यता कन्या हत्या, जाति भेद, धर्म भेद आदि विचार धाराओं से समाज निरन्तर ग्रस्त होता गया है यह सर्वमान्य है कि प्रत्येक व्यक्ति शान्ति चाहता है मानव हित चाहता है आज इसीलिए बड़े पैमाने पर केवल मानव की ही बात की जा रही है यदि मानव का अस्तित्व सुरक्षित रहा तो सब कुछ सुरक्षित रहेगा अन्यथा भविष्य के सम्बन्ध में जो भयावह तस्वीर

---

[1] राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग "वार्षिक रिपोर्ट, 2004–05, 2005–06

वर्ष 2005—2006 के दौरान पंजीकृत मामलों की राज्यवार सूची

2005—2006 के दौरान पंजीकृत मामलों की राज्यवार संख्या दर्शाने वाला विवरण
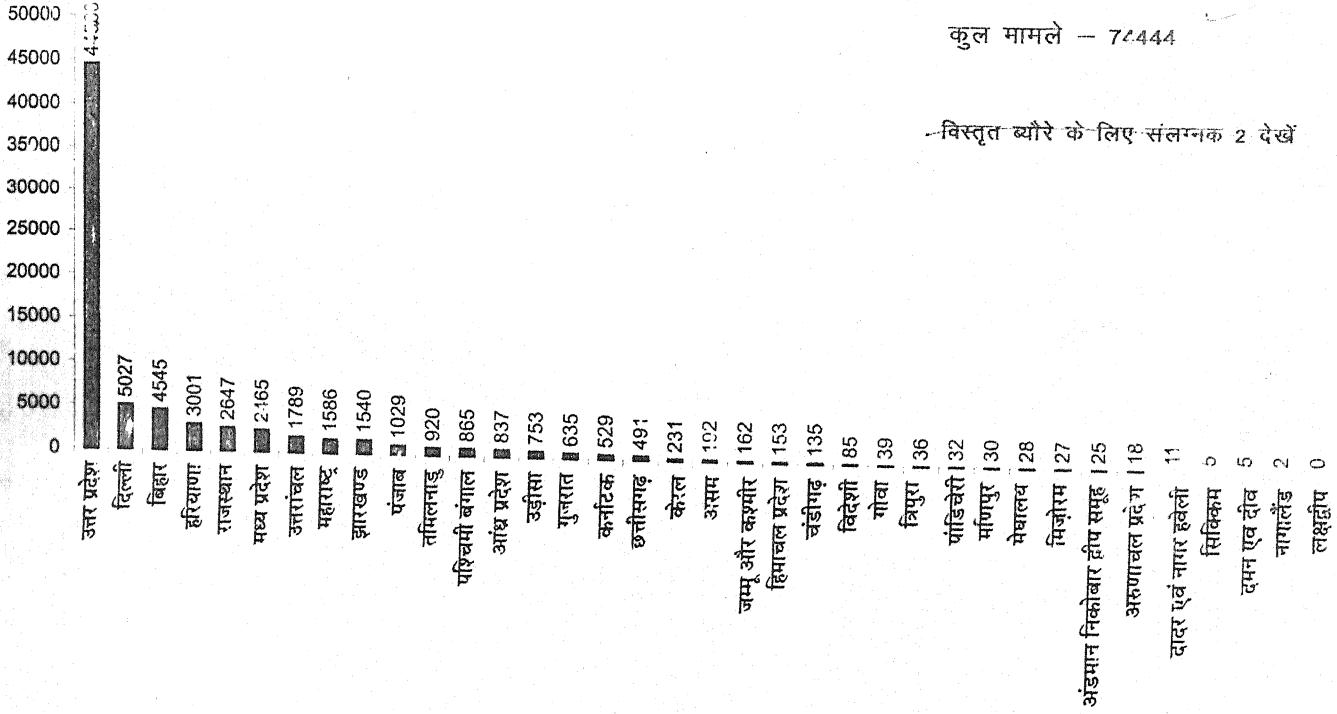
पिछले तीन वर्षों में पंजीकृत मामलों की सूची
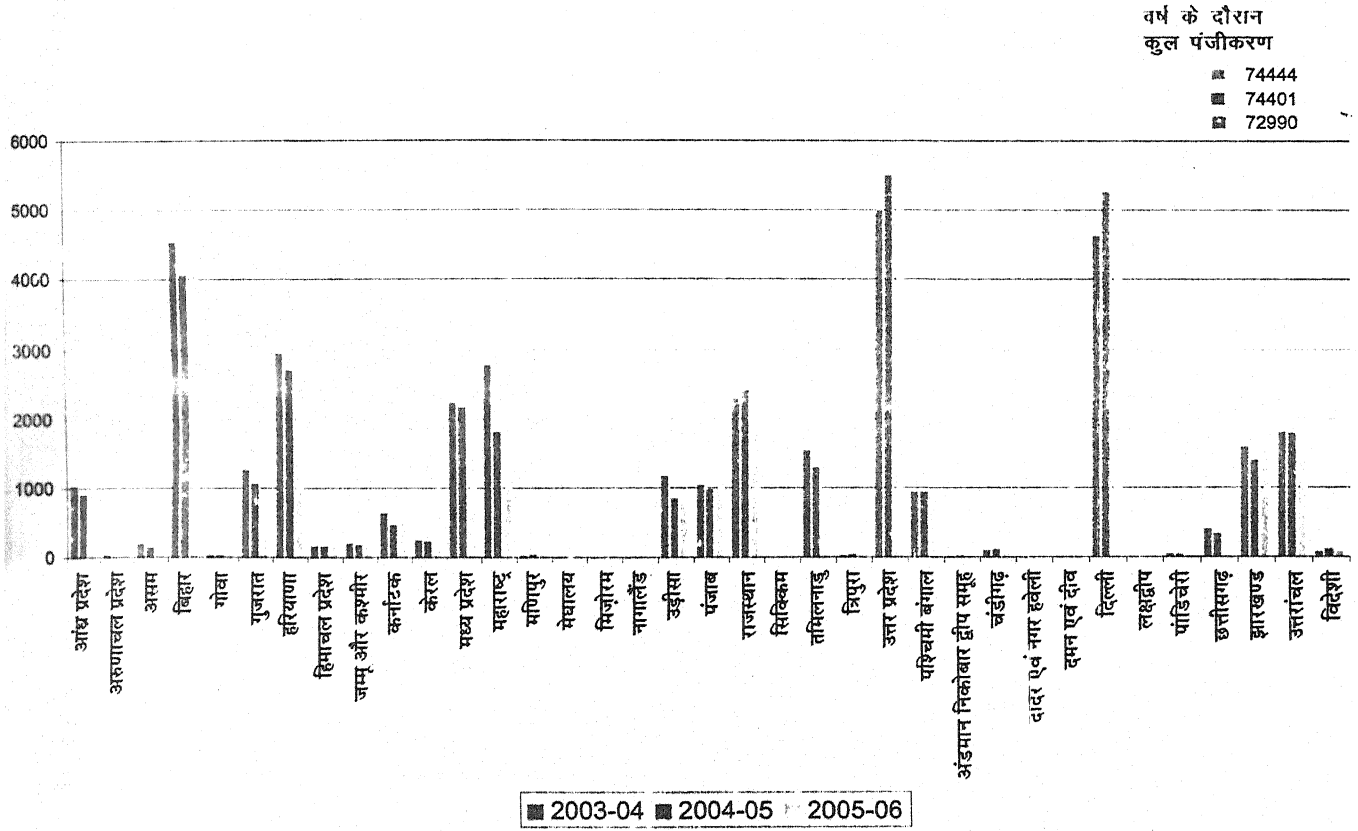
समक्ष आयेगी उससे मुख नहीं मोड़ा जा सकता क्योंकि मानव मूल्यों की गिरावट के कारण मानव अधिकार हनन की घटनायें दिन व दिन यहाँ बढ़ती जा रही है।

उत्तर प्रदेश मानव अधिकार, लखनऊ वित्तीय वर्ष 2004–05 में मुख्य विषयवार कुल पंजीकरण व उनमें से अनुश्रवण–निस्तारण–प्रचलित

मुख्य विषय	पंजीकरण	अनुश्रवण	निस्तारण	प्रचलित
शरणार्थी / प्रवासी	1	1	1	0
धार्मिक / साम्प्रदायिक हिंसा	42	42	39	3
श्रम	52	52	50	2
स्वास्थ्य	66	66	58	8
न्यायपालिका	11	11	11	0
टाडा	3	3	3	0
बालक	48	47	40	8
बलवे	5	5	5	0
कारागार	53	53	41	12
महिला	787	778	710	77
माफिया / अपराध लोक	475	468	451	24
किशोर / भिखारी	3	3	3	0
विविध	3283	3247	3110	173
विदेशी / एन.आर.आई	3	3	3	0
पुलिस	3172	3144	2786	386
प्रदूषण / पारिस्थितिकी	25	25	22	3
रक्षाबल	2	2	2	0
सेवा के मामले	316	309	288	28
अल्पसंख्यक	66	66	64	2
अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति	513	510	487	26
वित्तीयवर्ष 2004–05 में कुल	**8926**	**8835**	**8174**	**752**

उत्तर प्रदेश मानव–अधिकार आयोग, लखनऊ वित्तीय वर्ष 2005–06 में मुख्य विषयवार कुल पंजीकरण व उनमें से अनुश्रवण–निस्तारण–प्रचलित

मुख्य विषय	पंजीकरण	अनुश्रवण	निस्तारण	प्रचलित
ध.र्मिक / साम्प्रदायिक हिंसा	20	19	18	2
श्रम	64	63	58	6
स्वास्थ्य	56	54	36	20
न्यायपालिका	24	23	22	2
टाडा	1	1	1	0
बालक	82	78	67	15
बलवे	9	9	8	1
कारागार	523	185	152	371
महिला	896	872	793	103
माफिया / अपराध लोक	97	96	90	7
किशोर / भिखारी	9	7	7	2
विविध	4039	3950	3769	270
विदेशी / एन.आर.आई.	2	2	2	0
पुलिस	2703	2582	2273	430
प्रदूषण / प्रास्थितिकी	25	25	19	6
रक्षाबल	1	1	1	0
सेवा के मामले	527	513	477	50
अल्पसंख्यक	28	28	22	6
अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति	250	245	230	20
वित्तीयवर्ष 2005–06 में कुल	**9356**	**8753**	**8045**	**1311**

उत्तर प्रदेश मानव–अधिकार आयोग, लखनऊ वित्तीय वर्ष 2006–07 में मुख्य विषयवार कुल पंजीकरण व उनमें से अनुश्रवण–निस्तारण–प्रचलित

मुख्य विषय	पंजीकरण	अनुश्रवण	निस्तारण	प्रचलित
धार्मिक/साम्प्रदायिक हिंसा	30	30	29	1
श्रम	55	51	48	7
स्वास्थ्य	81	76	60	21
न्यायपालिका	22	21	21	1
	बालक	177	164	136
	41			
बलवे	3	3	3	0
कारागार	550	183	86	464
महिला	1073	1008	927	146
माफिया/अपराध लोक	10	10	9	1
किशोर/भिखारी	2	1	1	1
विविध	4983	4703	4516	467
पुलिस	3745	3484	3119	626
प्रदूषण/प्रास्थितिकी	16	13	10	6
रक्षाबल	2	2	2	0
सेवा के मामले	639	582	537	102
अर्धसैनिक बल	2	2	2	0
अल्पसंख्यक	14	14	13	1
अनुसूचित जाति/ अनुसूचित जनजाति	279	268	252	27
वित्तीयवर्ष 2006–07 में कुल	**11683**	**10615**	**9771**	**1912**

सर्वप्रथम प्रश्न उठता है कि मानव अधिकार का हनन कौन करता है ? इसमें सोचने की आवश्यकता नहीं शक्तिशाली ही सदैव निर्बल का हनन करता है। धनी निर्धन का, शारीरिक बली कमजोर का, प्रभावशाली प्रभावहीन का पुरूष स्त्री का, शासक शासित का और उसी कड़ी में शक्तिशाली लोकसेवक अपने अधीनस्थो का। जब सामाजिक उत्थान होता है तो शक्तिशाली ही कमजोर का संरक्षक होता है परन्तु जब संरक्षक ही भक्षक हो जाता है अथवा स्वार्थ परायणता प्रबल हो जाती है तो मानव अधिकारों का हनन बढ़ने लगता है इसी समस्या के निदान की दिशा में मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के अन्तर्गत राष्ट्रीय व प्रान्तीय मानवाधिकार आयोग बने। लक्ष्य प्राप्ति के लिए इनके उद्देश्य तो उच्चकोटि के है परन्तु आयोग के निर्णय सरकार को संस्तुति स्वरूप ही होते हैं। उनको कार्यान्वित करने की शक्ति इस अधिनियम में आयोग को प्रदान नहीं की गई है। जबकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्राप्त वादों की संख्या से विदित होता है कि मानवाधिकार हनन के मामले लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं और ये संख्या विकास के मानको में पिछड़े राज्यों में अधिक देखने को मिलती रही है और उ0 प्र0 देश के सबसे पिछड़े राज्यों में माना जाता है एवं राज्य मानवाधिकार आयोग को प्राप्त वादों में लगातार वृद्धि हो रही है। ये पिछले पृष्ठों पर दी सारणियों के द्वारा देखा जा सकता है। और राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्राप्त वादों में भी सर्वाधिक वादों की संख्या उ0 प्र0 से है जो निम्न प्रकार है–

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्राप्त वाद

वित्तीय वर्ष	कुल प्राप्त की संख्या प्राप्त वादों की संख्या	उ0 प्र0 से प्राप्त वादों
2003–04	72990	42407
2004–05	74401	44643
2005–06	74444	44560

अतः प्राप्त वादों की संख्या से ज्ञात होता है कि कुल वादों में आधे या आधे से अधिक वाद केवल उत्तर प्रदेश से ही प्राप्त होते रहे हैं। जबकि 4 अप्रैल 1996 को अधिसूचना जारी होने के बाद भी राज्य सरकार ने आयोग का गठन करने मे कोई तत्परता नहीं दिखाई थी। और लगभग आठ साल के बाद अक्टूबर 2002 में राज्य मानवाधिकार आयोग का गठन हुआ, जिसके अन्तर्गत एक अध्यक्ष एवं चार सदस्यों की नियुक्ति की गई। 10 अक्टूबर 2002 को ए0 पी0 मिश्रा राज्य मानवाधिकार आयोग के पहले अध्यक्ष नियुक्त हुये। एवं जिन उद्देश्यों को लेकर आयोग का गठन किया गया, उनकी वास्तविक पूर्ति हेतु इसके प्रावधानों को उत्तर प्रदेश जैसे विशाल राज्य में प्रभावी ढंग से लागू करना आवश्यक है। जनसंख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश देश का सबसे बड़ा राज्य है और यहाँ देश की कुल आबादी का 16.17 प्रतिशत लोग निवास करते है यद्यपि यहाँ आज भी 57.36 प्रतिशत लोग ही शिक्षित है जिनमें पुरूष साक्षरता 70.23 प्रतिशत और महिला साक्षरता 42.98 प्रतिशत है। तथा ये आर्थिक विकास के रूप में भी काफी पिछड़ा हुआ है एवं इसका मानव विकास सूचकांक अन्य कई

राज्यों के सामने न्यून है अभी भी इसकी गणना आर्थिक एवं सामाजिक विकास की सीढ़ी पर सबसे नीचे रहे राज्यों में की जाती है इन परिस्थितियों के कारण प्रदेश वासियों के नागरिक एवं राजनैतिक अधिकारों के संरक्षण हेतु उनके आर्थिक एवं सामाजिक स्तर का उन्नयन महत्वपूर्ण हो जाता है। तथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र उत्तर प्रदेश के सर्वाधिक पिछड़े क्षेत्रों में है जो दो मण्डलों में विभक्त है झाँसी और चित्रकूट और यहाँ सात जिले है– झाँसी, जालौन, ललितपुर, बाँदा, हमीरपुर, महोबा, चित्रकूट जहाँ अधिकतर जनसंख्या आर्थिक रूप से कमजोर एवं निम्न वर्गो की है जो प्राचीन काल से ही शोषण एवं अत्याचार का शिकार होते रहे है और यहाँ की सामन्ती एवं राजसी व्यवस्थाओं ने हमेशा इनके साथ गुलामों सा व्यवहार किया है और इनके मानव होने मात्र को नकारते रहे है जिसके कारण इनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय होती चली गई है।

यहाँ आज भी लाखों लोग ऐसे है जिनको खाने को भोजन, तन ढ़कने को कपड़े और रहने के लिए घर तक नहीं है। वे घोर दरिद्रता में पशुतुल्य जीवन जी रहे है। स्वास्थ्य और शिक्षा की स्थिति और भी भयावह है। बुन्देलखण्ड में आज भी मानवाधिकारों के सम्मान की संस्कृति अभी तक विकसित नहीं हो पाई है। और न ही इसके लिये उपयुक्त सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमियाँ है। इस कारण यहाँ विभिन्न स्तरों पर मानवाधिकारों का उल्लघंन हो रहा है। व्यक्ति की गरिमा संवैधानिक गांरटी तथा लोगो को न्याय

दिलाने के अनेक कानूनी प्रावधानों के बावजूद सामाजिक प्रभुत्व वर्ग तथा राज्य मशीनरी लगभग निर्भय होकर और खुलेआम लोगों के अधिकारों का हनन करते है। ग्रामीण क्षेत्रों का परिदृश्य तो आज भी सामन्ती व्यवस्था से परिपूर्ण है।

आजादी के 60 वर्षो के पश्चात भी यहाँ वर्णवादी और जातिवादी आधारों पर मानवाधिकारों का हनन जारी है। जिसने अब तक की सारी उपलब्धियों का मजाक बना दिया है। बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के हनन की सबसे गहरी जड़े हमारी सामाजिक व्यवस्था, आर्थिक संरचना और सांस्कृतिक मान्यताओं में है। सामाजिक वर्ण व्यवस्था समाज में जन्म से ही लोगों का दर्जा एवं सामाजिक परिपाटी में उनके कर्तव्य तय कर देती है। जाति के आधार पर ऊँच–नीच की मान्यता आज भी प्रचलित है। छुआछूत सबसे घोर किस्म की असमानता एवं मानवाधिकारों के उल्लघंन का कारण है। जाति व्यवस्था जनसंख्या के ज्यादातर हिस्से को समान अवसर के सिद्धान्त से वंचित कर देती है। जाति का प्रभाव आज भी न सिर्फ नौकरशाही और राजनीति में है। बल्कि न्यायपालिका को भी इससे मुक्त नहीं कहा जा सकता। यह कोई संयोग नहीं कि पुलिस उत्पीड़न और बलात्कार जैसी घटनाओं के शिकार ज्यादातर दलित, पिछड़ी जातियों एवं अल्पसंख्यक समुदाय के लोग होते हैं। यह दरअसल यहाँ के समाज की वर्णवादी संरचना की अभिव्यक्ति है। जातिवादी आग्रहों के कारण समाज के पिछड़े एवं दलित वर्ग एवं अल्पसंख्यक निर्णय की प्रक्रिया एवं सत्ता में साझेदारी के स्तरों में आज भी हाशिये पर हैं। इससे सामाजिक

लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया अवरूद्ध हो रही है। क्योंकि यहाँ कि आर्थिक संरचना पूंजी एवं कृषि संसाधन कुछ विशिष्ट हाथो में ही केन्द्रित है।

यहाँ कृषि पर 30 से 35 प्रतिशत लोगों का ही अधिकार है उद्योगों में लगे मजदूर वर्ग की स्थिति फिर भी कुछ बेहतर है पर वहाँ भी श्रम कानूनों का उल्लघंन तथा मजदूरों को डराने धमकाने की घटनायें आम बात है। पर कृषि क्षेत्र में मजदूरों की स्थिति अत्यन्त खराब है और बुन्देलखण्ड के इन जिलों में सर्वाधिक संख्या कृषि मजदूरों की है क्योंकि बुन्देलखण्ड में सामन्ती प्रवृत्ति आज भी प्रचलित है। तथा गाँव में यहाँ के इन छोटे–छोटे राजाओं, जमींदारों की मर्जी के बिना में आज भी पत्ता नहीं डोलता। कृषि क्षेत्र में आर्थिक शोषण की स्थिति आज भी लगभग मध्ययुगीन परम्परा में ही है, यहाँ स्थापित अर्द्धसामन्तवादी व्यवस्था के कारण यहाँ मानव के साथ अत्याचार एवं असमानता के उदाहरण भरे पड़े है यहाँ के सातों जिलों में एक तिहाई जनसंख्या गरीब एवं निम्न जातियों की है जो हमेशा से तिरस्कृत एवं अपमानित होते रहे है। फलस्वरूप उनको शिक्षा एवं प्रतिभा के पूर्ण विकास का अवसर नहीं मिल पाया, क्योंकि ये आरम्भ से ही मजदूरी एवं बंधुआ मजदूरी में लिप्त थे। और वर्णवादी व्यवस्था के कारण ये सदा अपेक्षित रहे, और आज भी इनकी दशा अत्यन्त शोचनीय है तथा समाज में सबसे अधिक शोषण का शिकार यही लोग होते हैं। जिसके चलते इनकी महत्वाकांक्षायें भी मर चुकी है। और इन्होंने अत्याचार सहने को अपना भाग्य समझ लिया है।

भारतीय संविधान एक और तो रामान अधिकारों की व्यवस्था करता है तथा दूसरी और व्यवहारिक रूप में अधिकार केवल उनको ही प्राप्त है जो आर्थिक रूप से समर्थ या शक्तिशाली है अन्य लोगों के मानवाधिकारों का हनन तो राज्य से निकली संस्थायें या व्यक्तिगत रूप से लगातार जारी है। तथा राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग ने उ0 प्र0 से 2004–05 के 363 वादों का निस्तारण किया था जबकि कुल मामले निस्तारण के 593 थे उ0 प्र0 के बाद कुल वादों का 60 प्रतिशत तक थे इसी क्रम में राज्य मानवाधिकार आयोग में दर्ज वादों की संख्या निम्न प्रकार है–

अनु0 जाति/अनु0जनजाति के वादों का विवरण

वित्तीय वर्ष	उ0 प्र0 से प्राप्त वादों की संख्या	बुन्देखण्ड से प्राप्त वादों की संख्या
2002–03	95	8
2003–04	523	35
2004–05	513	33
2005–06	250	23
2006–07	279	27

ये संख्यायें दर्शाती हैं कि पिछले दो वर्षों में अनु0जाति/जनजाति के मामले काफी कम हुये हैं। जबकि पुलिस में दर्ज इन जिलों के वादों में कोई कमी नहीं दिखती। उदाहरण के तौर पर जालौन से 2005 में 26 केस 2006 में 33 तथा 2007 में 36 केस दर्ज किये गये। एवं इसी क्रम में जिला झाँसी में

2007 में पिछले तीन वर्षों में सर्वाधिक 69 वाद दर्ज किये गये थे। और समाज में परिलक्षित मामलों की संख्या और अधिक होती है। यातना, मारपीट इनके साथ आये दिन घटित होती रहती है। इन वर्गो में अधिकतर लोग कृषिहर मजदूर होते है। सरकार द्वारा इनके सुधार स्वरूप पट्टे के रूप में जमीन दी जाती है पर उन पर कब्जा मिलना अधिकतर मुश्किल होता है। जबकि कागजों पर पट्टे दिखाये जाते है और यह अधिकतर फर्जी लोगों के नाम पर एवं झूठे होते है और इन कृषिहर मजदूरों की स्थिति जस की तस बनी रहती है। वर्णवादी विचारों के चलते इन वर्गों में महिलाओं की स्थिति भी अत्यन्त दयनीय है क्योंकि अधिकतर महिलायें घर से निकलकर मजदूरी आदि के कार्य करती है जिसके कारण ये यौन उत्पीड़न एवं शोषण का शिकार होती है। और ये मामले अपवाद दिनों को छोड़कर प्रतिदिन समाचार पत्रों में प्रकाशित होते रहते है।

हरीपुरा (जालौन) गाँव की घटना के अनुसार पूनम और राजेश के प्रेम विवाह के कारण जो निम्न वर्ग का था दोनों की गोली मार कर हत्या कर दी जाती है। बाँदा जिले में ही महिला को निर्वस्त्र घुमाने की घटना सामने आई थी, इसी क्रम में बाँदा जिले के बहुन्दरी गाँव में 75 वर्षीय रामकुमारी को सती होने के लिए उकसाने का कार्य घर वालो ने किया था। और समाज में व्याप्त रूढ़ियों के चलते गाँव वाले उस चबूतरे की पूजा करने लगे जिस पर वह महिला सती हुई थी। इस मामले को महिला आयोग ने संज्ञान में लिया और जाँच की सिफारिश की गई। हमीरपुर जिले के सुमेरपुर गाँव में एक निम्न वर्ण

की महिला के द्वारा मटर चुराने मात्र पर उसकी लाठियों से पिटाई की जाती है। समाज में आज भी इस तरह की घटनायें समाज पर कलंक की तरह छाई है। गाँव में अधिकतर वही स्थिति है के निम्न वर्ग के लोग समानता से बैठ भी नहीं सकते। क्योंकि इन्हें यहाँ की रूढ़िवादी विचारधारा ने कभी मानव माना ही नहीं। तो फिर वे आज इन्हें मानवाधिकार कैसे दे सकते हैं। और सच तो यही है कि अधिकारों का सीधा सम्बन्ध आर्थिक प्राप्ति से ही है। निर्धन क्षेत्रों में निर्धनता की स्थिति में जी रहे लोगों को ही ऐसे अधिकारों से वंचित रहना पड़ता है अधिकार प्राप्त करने की जटिल प्रक्रिया और ज्ञान तथा शिक्षा की कमी निरन्तर आड़े आती है। अधिकारों की फिक्र उन्हें क्या होगी जिन्हें दोनों समय का भोजन भी कभी–कभी नसीब नहीं होता, इनको तो भोजन मिलना ही इनका सर्वप्रथम अधिकार है। मजदूर, बंधुआ मजदूर जिन्हें मानवाधिकार तो मात्र दिखावे के लिए मिले है। अतः सर्वप्रथम इन कमजोर एवं पिछड़े लोगो को आर्थिक अधिकारों की प्राप्ति आवश्यक है अन्यथा की स्थिति में सामाजिक एवं राजनीतिक अधिकारों का इनके लिए कोई महत्व ही नहीं है।

बंधुआ श्रम भी यहाँ मानवीय गरिमा पर सबसे बड़ा आघात है। और बुन्देलखण्ड में यदा कदा ये मामले सुनने को मिल जाते हैं। पर इनके कोई वास्तविक आकड़े प्राप्त नहीं हो सके है। ग्रामीण परिवेश में बंधुआ मजदूरी के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। और द्वावों आदि में भी ये पाये जाते हैं। 1996–97 में कराये गये सर्वेक्षण के अनुसार उत्तर प्रदेश में 237 बंधुआ मजदूरों

की पुष्टि की गई थी जबकि यह भी कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। और ये निर्विवाद रूप से सत्य है कि बंधुआ श्रम के शिकार लोगों में 95 प्रतिशत से अधिक अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़े वर्गों से सम्बन्ध रखते हैं। श्रम मंत्रालय से प्राप्त जानकारी के अनुसार 31 मार्च 2006 तक देश में 286642 बंधुआ श्रमिक चिन्हित किये जा चुके हैं। एवं 26680 श्रमिकों को पुनर्वासित भी कराया गया है। अतः यह भी सही है कि केवल इन्हें इससे आजाद करा देना पर्याप्त नहीं, जब तक इनके पुनर्वास की सही व्यवस्था न की जाये।

यह सच है कि बंधुआ श्रम अब अपने पुराने पारम्परिक रूपों में बहुत कम देखाई देता है और कामगारों के प्रति उत्पीड़न की पुरानी प्रणालियाँ भी खत्म हो गई है। लेकिन भूमण्डलीकरण और बाजारी व्यवस्था के इस दौर में आर्थिक शोषण के नये तरीके ईंजाद हो रहे है। दुर्बल वर्गो में भूमिहीनों के पास जीवित रहने के सिवाय अपना श्रम बेचने के कोई अन्य उपाय नहीं। आवश्यकता के बजाय लालच से चलने वाली इस दुनिया में किसी भी मजदूर को उसके श्रम की उचित कीमत एक अच्छी और कल्याणकारी शासन व्यवस्था ही दिला सकती है। श्री चमन लाल के अनुसार "श्रम से सम्बन्धित कुछ कानूनों का सखती से पालन कराके बंधुआ श्रम की घटनाओं में काफी कमी लाई जा सकती है।"[2]

---

[2] चमन लाल "दाग उजाला" (मानवाधिकार नई दिशायें) 2007 नई दिल्ली, पृ0 37

इनका जीवन स्तर गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का ही होता है। क्योंकि यहाँ अस्सी के दशक में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि 2.6 प्रतिशत थी जो नब्बे के दशक में 1.2 प्रतिशत ही रह गई थी। बुन्देलखण्ड में अत्यधिक गरीबी के कारण बाल श्रम की समस्या बहुत पुरानी है। जनसंख्या वृद्धि के साथ–साथ यह समस्या और अधिक बढ़ती जा रही है गरीबी में जीवनयापन करने वाले दम्पत्ति सिर्फ इसलिए अधिक बच्चे पैदा करते है कि उनके वे बच्चे होश संभालते ही परिवार में कुछ न कुछ कमाकर लाएंगे। ऐसे में बालश्रमिकों की स्थिति के विषय में अंदाजा लगाया जा सकता है। जबकि बाल्यावस्था बहुत कुछ सीखने की अवस्था कहलाती है परन्तु इस उम्र में ही ये बच्चे तरह–तरह के शोषणों के शिकार होते हैं बुन्देलखण्ड में अधिकतर बच्चे प्राइमरी शिक्षा पास करने से पूर्व या बाद में पारिवारिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक या अन्य कारणों से स्कूल जाना छोड़ देते हैं। गरीबी, बढ़ती जनसंख्या और भुखमरी के कारण ये मासूम पढ़ाई छोड़कर कोई कार्य या कूड़ा बीनने लगते है। जहां से इनका शोषण प्रारम्भ होता है।

बुन्देलखण्ड के अति गरीब एवं पिछड़ा होने के कारण यहाँ असंख्य बाल श्रमिक देखे जा सकतते हैं। इनकी कोई निश्चित संख्या तो नहीं परन्तु प्रत्येक चौथी दुकान में बाल श्रमिक आसानी से मिल जाते हैं। बाल मजदूरी प्रथा पूरे विश्व में देखी जा सकती है अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार विश्व में पाँच से चौदह वर्ष की आयु वाले पच्चीस करोड़ सरसठ लाख चौरासी

हजार बाल मजदूर है; जिनमें 61 प्रतिशत एशिया, 32 प्रतिशत अफ्रीका तथा 7 प्रतिशत लैटिन अमेरिका में है। अफ्रीका में तीन में से एक, एशिया में चार में से एक तथा लैटिन अमेरिका में पाँच में से एक बच्चा मजदूरी करता है। और यह एक कटु सत्य है कि "भारत में इस समय 10,14,08300 बाल श्रमिक है।"[3] संसार में भारत में बालश्रमिकों की संख्या सबसे अधिक हैं। अतः बाल श्रमिकों को कार्य से वापस लाना तथा उनका पुनर्वास सुनिश्चित करना देश के सामने एक बड़ी चुनौती है यहाँ बाल श्रमिक शहर की अपेक्षा ग्रामीण परिघटना है। "कार्यरत बच्चों का 90.87 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों से तथा 9.13 प्रतिशत शहरी क्षेत्रों से पाया जाता है।"[4]

बुन्देलखण्ड में अल्पविकास के चलते यहाँ सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ भी बाल श्रमिकों की संख्या बढ़ाने में सहायक का कार्य कर रही है जबकि बच्चों को ऐसे वातावरण में विकास करने की आवश्यकता है जिसमें वे स्वतन्तत्रता तथा गरिमापूर्ण जीवन बिता सके। अच्छे नागरिक बनने के लिए उन्हें शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर प्रदान किये जाने चाहिए। दुर्भाग्यवश बच्चों का बड़ा अनुपात अपने बुनियादी अधिकारों से वंचित है। उन्हें अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों विशेष रूप से असंगठित क्षेत्र में कार्य करता हुआ पाया जाता है। इस प्रकार बाल श्रम को एक मानवाधिकार का मुद्दा तथा एक विकासात्मक विषय बनाया जाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि बुन्देलखण्ड में बाल अधिकारों से

---

[3] पुष्पलता तनेजा "मानवाधिकार और बाल शोषण" 1999 पृ0 23
[4] अपने अधिकार जाने "राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग" 2004–05 पृ0 3

वंचित बच्चों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। इनके कार्य के घंटों का कोई निर्धारण नहीं होता वे बारह से अठारह घण्टे तक काम करते हैं, और इनके ऊपर हो रहे शोषण तथा अत्याचार की कोई सीमा नहीं। मामूली सी गलती पर बुरी तरह से पीटा जाना, पारिश्रमिक न मिलना आदि घटनायें इनके साथ प्रायः घटित होती रहती है। इनकी नजर में शिक्षा का कोई महत्व नहीं रहता। यहाँ की सामन्ती एवं वर्गवादी व्यवस्था भी इन मासूमों को मजदूरी के दलदल में ढकेलती है। यहाँ का परम्परावादी माहौल जहाँ पिता मजदूरी करता था वही उनका बच्चा बड़ा होकर मजदूरी करने लगता है जिसके कारण इनका अज्ञान दूर करने की चिंता उच्च वर्गो के लोगों को तो होती नहीं वरन् वे इन्हें अपने यहाँ हमेशा श्रमिक बना के रखना चाहते है। और इनकी स्थिति कुयें के मेंढक के समान होती है।

बाल मजदूरी के कारण बच्चे शिक्षा के अभाव में अकुशल रह जाते हैं। और उनके परिवारों की कई पीढ़ियाँ अकुशल श्रम और अज्ञानता का जीवन जीती हैं। पूरे देश के विभिन्न राज्यें में बाल श्रमिकों का वितरण एक निश्चित सह–सम्बन्ध का संकेत देता है गरीबी रेखा से नीचे रह रही अधिक जनसंख्या वाले राज्यों में बाल श्रमिकों की संख्या अधिक है फलस्वरूप बाल श्रमिकों की संख्या के साथ–साथ स्कूल छोड़ देने वालों की दर ऊँची है।

*

भारत में बाल श्रमिकों की सीमा

"राज्य	प्रतिशत
आन्ध्र प्रदेश	14.5
उत्तर प्रदेश	12.5
मध्य प्रदेश	12.0
महाराष्ट्र	9.5
कर्नाटक	8.7
विहार	8.3
राजस्थान	6.9
प0 बंगाल	6.3
तमिलनाडु	5.1
गुजरात	4.6
उड़ीसा	4.0"[5]

एवं उ0 प्र0 राज्य मानवाधिकार आयोग में दर्ज बालकों से सम्बन्धित मामले क्रमानुसार–

वित्तीय वर्ष	उ0 प्र0 से प्राप्त वाद	बुन्देलखण्ड से प्राप्त वाद
2004–05	48	4
2005–06	82	5
2006–07	177	14

जो दर्शाते है कि शायद इन मासूमों की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं जाता अन्यथा बुन्देलखण्ड क्षेत्र में इनकी इतनी अधिक संख्या के बाद मामले न के बराबर आयोग तक पहुंचते है। इन जिलों के पुलिस कार्यालयों में भी ये

---

[5] स्रोत भारत की जनगणना 1991

मामले शून्य होने की पुष्टि की गई है। बुन्देलखण्ड से 2004–05 में 4, 2005–06 में 5, 2006–07 में मात्र 14 वाद थे।

प्रत्येक स्थान पर बाल श्रमिक गरीबी, बेरोजगारी, अल्प रोजगार तथा कम मजदूरी के दुष्चक्र में फंसे हैं। तीन प्राथमिक कारक इसके लिए उत्तरदायी है। संसाधनों का असमान वितरण, केन्द्रीयकृत तथा असन्तुलित अर्थव्यवस्था तथा कृषि का पिछड़ा स्वरूप जिसके कारण अधिकतर अभिभावक अशिक्षा के कारण अपने बच्चों से मजदूरी कराने को अपना भाग्य समझते है और ये बच्चे पारिवारिक आय की अनुपूर्ति करने लगते हैं। अधिकतर नियोक्ता भी बच्चों को श्रमिक रखना पसन्द करते हैं। क्योंकि ये बालक मासूम होते हैं और अधिक मेहनत कम पारिश्रमिक में करते है। आज चाहे मिडडे मील योजना हो या पूर्ण नामांकन ये सारे कार्यक्रम विफल हो चुके हैं। क्योंकि कार्यक्रमों के नाम पर प्रत्येक जगह भ्रष्टाचार व्याप्त है। और ये योजनायें पैसा कमाने का तरीका ही साबित हो रही है जिनके लिए ये योजनायें बनाई जाती है। वे कहीं न क़हीं शोषण का शिकार होते रहते हैं। चाहे वे सरकारिक तरीकों से हो या गैर सरकारी तरीको से।

लखनऊ जिले में ही 7 जुलाई को पाँच बाल श्रमिकों को ढाबों से मुक्त कराया गया। तथा बच्चों के बेचे जाने का भी मामला संज्ञान में लाया गया था जिसमें 1000 से 3000 में बच्चे बेचे जा रहे थे। यही बच्चे हमारा भविष्य है और इनके साथ इस तरह का व्यवहार हमें किस ओर ले जा रहा है ? बाल श्रमिकों

पर रोक लगाना तभी सही परिणाम दे सकता है जब इनके पुनर्वास के ठोस कदम उठाये जाये अन्यथा इन्हें बाल श्रम से मुक्त कराने के बाद ये फिर कहीं न कहीं काम करने लगेंगे। अतः बाल श्रम उन्मूलन के कानून कठोरता से लागू करना होगा, जिससे इन्हें काम पर रखने वाले नियोक्ता को कठोर दंड एवं इनका पुनर्वास करने का नियम हो, जिसमें सरकार द्वारा सहयोग भी शामिल हो। इसके लिए स्वयं सेवी संस्थायें तथ पुलिस मिल कर काम करे, एवं इनके अभिभावकों को शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूक करने के साथ आर्थिक नीति ऐसी हो जिसमें कम से कम प्रत्येक नागरिक की नैसर्गिक आवश्यकतायें पूर्ण हो सके। यदि प्रयत्न किया जाये तो कोई कारण नहीं कि बाल श्रमिकों की समस्या से मुक्ति का रास्ता न मिले और बच्चों का दैहिक शोषण न रोका जा सके। तथा देश प्रदेश एवं पिछड़े क्षेत्रों में बालश्रम प्रथा का उन्मूलन न हो।

जहाँ बाल अधिकारों की बात आती है वहीं कन्या भ्रूण हत्या भी बुन्देलखण्ड में एक अभिशाप के रूप में समाज में व्याप्त होती जा रही है। आज तो जैसे अधिकतर लोग केवल लड़कों के ही अभिभावक कहलाना चाहते है पर इन से यह पूछा जाये कि यदि प्रत्येक व्यक्ति यही सोचेगा तो क्या यह अपने बेटों का व्याह जानवरों के साथ करेंगे। जहाँ गौ हत्या पर समाज के ठेकेदार आये दिन प्रतिक्रियायें देते रहते हैं। वहीं कन्या हत्या पर सब मौन धारण क्यों कर लेते हैं क्यों कन्या भ्रूण हत्या पर समाज में कोई प्रतिक्रिया नहीं आती क्या वास्तव में यहाँ स्त्रियों को पशु से भी निम्न स्थान प्राप्त है। भारत का महिला

पुरूष लिंग अनुपात 2001 के अनुसार 1000 : 927 है जबकि उत्तर प्रदेश में 898 और जिला जालौन में 1000 : 847 है जबकि 1991 के अनुसार प्रति हजार पुरूषों पर 876 महिलायें पूरे उत्तर प्रदेश में तथा जालौन में 829 महिलायें थी इसी तरह क्रमशः झांसी, बांदा, महोबा, चित्रकूट ललितपुर हमीरपुर में 857 तक महिलायें हैं। ये यहाँ भगवान की देने नहीं बल्कि यहाँ की सामन्ती प्रवृत्तियों का नतीजा है। जहाँ मध्यकाल में सामन्त कन्याओं को जन्मते ही मार देते थे। तब उ0 प्र0 को अंग्रेजों के समय में ही कन्या हत्या में संदिग्ध घोषित किया गया था वहीं आज वैज्ञानिक अविष्कार इसे बढ़ावा दे रहे है। और कन्या हत्या जन्म से पूर्व ही कर दी जाती है। जहाँ एक और कन्या को देवी के रूप में पूजा जाता है वहीं दूसरी ओर इनकी हत्या पर किसी को किंचित दुःख मात्र भी नहीं होता और भ्रूण हत्या समाज में जारी है। और अजय गुप्ता द्वारा रचित ये पक्तियाँ समाज में प्रत्येक जगह परिलक्षित हो रही हैं–

"बोये जाते हैं बेटे, उग आती हैं बेटियाँ,
खाद पानी पाते हैं बेटे, लहलहाती हैं बेटियाँ,
पर्वतों की ऊँचाइयों तक, ढकेले जाते हैं बेटे,
चढ़ जाती है बेटियाँ, हर पग गिरते जाते हैं बेटे
संभालती है बेटियां, दिवास्वप्न दिखाते बेटे
जीवन का यथार्थ बेटियां, रूलाते हैं बेटे,
रोती है बेटियां, जिन्दा रहते हैं बेटे
मारी जाती है, बेटियां,"[6]

स्त्रियों के प्रति हिंसा तो बुन्देलखण्ड में जैसे व्याप्त होती जा रही है कहीं भ्रूण हत्या कहीं दहेज की वेदी पर बलि दी जाती है, कहीं अस्मिता का

---

[6] अजय गुप्ता, "नई चेतना" राज्य महिला आयोग 2008 लखनऊ

तमाशा किया जाता है, पत्थर मार कर मार दिया जाता है, मात्र प्रेम विवाह के कारण जान ले जी जाती है। कहीं देवी बनाकर भूखा रखा जाता है। कहीं भूत उतारने के नाम पर अत्याचार होते हैं और कहीं सती कर दी जाती हैं ये सब परिघटनायें हैं महिलाओं के प्रति बुन्देलखण्ड में होने वाले अत्याचारों की। और ये अत्याचार कभी कभार ही नहीं बल्कि प्रतिदिन यहाँ घटित होते रहते हैं जबकि मेरा मानना है कि जब तक समाज में नारी को प्रताड़ित करने की परम्परा चलती रहेगी, तब तक सम्पूर्ण समाज न तो प्रगति कर सकता है और न चेतनशील बना रह सकेगा।

आज बुन्देलखण्ड में महिलाओं के प्रति अपराध लगातार बढ़ते जा रहे हैं। चाहे पुलिस में दर्ज आंकड़े हो या राज्य मानवाधिकार आयोग में पहुंचे वाद हों। महिला उत्पीड़न लगातार हो रहा हैं। महिला आयोग के आंकड़ों के अनुसार उत्तर प्रदेश में ''गत वर्ष महिला उत्पीड़न के 18920 मामले दर्ज किये गये थे इसमें 31.8 प्रतिशत दहेज हत्यायें, 13.2 प्रतिशत मामलों में पति या अन्य घरेलू सदस्यों ने परिवार की महिला के साथ क्रूरतापूर्ण बरताव किया। 183 प्रतिशत महिलाओं को अगवा किया गया शेष 28.3 प्रतिशत मामले यौन उत्पीड़न के थे।''[7]

आज जब हर बुद्धिजीवी विचारक यह मानता है कि बुद्धि के तौर पर स्त्री पुरूषों में कोई अन्तर नहीं है। फिर क्यों नहीं समाप्त होता यहां यौन

---

[7] डा0 प्रभा दीक्षित ''समाप्त क्यों नहीं होता महिला उत्पीड़न'' आज

उत्पीड़न। बुन्देलखण्ड को अल्पविकसित एवं निर्धन क्षेत्रों में माना जाता है। जहाँ आज भी अर्द्ध सामन्ती व्यवस्थायें विद्यमान हैं। तथा जहाँ पुरूष तक अत्याचारों से पीड़ित है तब महिलाओं की स्थिति क्या होगी यह सोचा जा सकता है। क्योंकि पुरूषों का शोषण केवल आर्थिक तरीकों से ही अधिक होता है जबकि महिलाओं का शोषण आर्थिक एवं लैंगिक दोनों तरीकों से होता है। यहाँ का सामाजिक जीवन पुरूष प्रधान सोच लिये हुये है। यहाँ की आचार संहितायें धार्मिक रूढ़िया, संस्कार ग्रस्तता प्राचीन परम्परायें सभी स्त्रियों के शोषण को बढ़ावा देती हैं। स्त्री के प्रति अत्याचार समाज के प्रत्येक क्षेत्र में देखा जा सकता है। आज हम नई नई वैज्ञानिक तकनीकों का उपयोग करना चाहते है पर अपने घर की महिलाओं के प्रति हमारी सोच का दायरा आज भी सामन्ती प्रवृत्ति पर आधारित है। जहाँ महिला को पुरूष के लिए प्रयुक्त एक वस्तु के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझा जाता।

जिला जालौन में पुलिस में दर्ज दहेज हत्या, बलात्कार के मामले दर्शाते हैं कि महिला उत्पीड़न में कमी की बात सही साबित नहीं होती क्योंकि 2004 में 24 दहेज हत्यायें क्रमशः 2005 में 20, 2006 में 35 दहेज हत्यायें दर्ज हुई। इसी तरह जिला झांसी में क्रमशः 13, 21, 28 दहेज हत्यायें दर्ज की गई। इसी तरह बलात्कार के मामलों में भी वृद्धि हुई है। जबकि कुल मामले उरई में क्रमशः 121, 113, तथा 2006 में 164 दर्ज हुये थे। जबकि झांसी जिले में क्रमशः 101, 112, 163 मामले महिला उत्पीड़न के थे। और इसी तरह की स्थिति अन्य

जिलों में भी परिलक्षित है। चाहे बाँदा की लक्ष्मी देवी हो या उरई की अर्चना जिला झांसी की विनीता, या सुखदेवी, लहचुरा निवासी शोभा यह सब महिलायें पुरूषों द्वारा किये उनके दुष्कर्मों को बयान करती हैं। जिन्होंने उनकी अस्मिता से खिलवाड़ किया। एक छोटी बच्ची के संरक्षक तो उसके माँ बाप होते हैं पर जब बाप ही भक्षक हो जाये तो (शकील खाँ अपनी ही 3 वर्षीय बच्ची से बलात्कार, झांसी) यह मासूम कहां जाये। जालौन में ही एक घटनानुसार 6 माह की बच्ची जिसमें उसके रिश्तेदार द्वारा ही घृणित कार्य करने का प्रयास किया गया बच्ची लहूलुहान अवस्था में पाई गई।"[8] ये सब मामले कलंक है समाज पर और इस तरह के कुकृत्य करने वालों के लिए इतने कठोर दंड की व्यवस्था की जानी चाहिए कि अन्य लोगों को इससे सीख मिल सके।

राज्य मानवाधिकार आयोग में उ0 प्र0 एवं बुन्देलखण्ड के सातों जिलों से पहुंचे वादों की संख्या चार वर्षों में निम्नवत् रही है–

राज्य महिला आयोग में पंजीकृत महिला उत्पीड़न के मामलों की सूची

वर्ष	उ0 प्र0 से प्राप्त वाद	बुन्देलखण्ड से प्राप्त वाद
2003–04	488	34
2004–05	787	39
2005–06	896	64
2006–07	1073	69

---

[8] पुलिस में दर्ज रिपोर्ट से आहरित केस

इन पंजीकृत वादों की संख्या तो केवल प्रतिदर्श मात्र है जबकि बुन्देलखण्ड में वास्तव में महिलाओं की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक है। प्रतिदिन अखवार दहेज हत्या, बलात्कार तथा महिलाओं के प्रति अन्य अनापेक्षित अपराधों से भरे रहते है। महिला साक्षरता यहँ आज भी आधे से कम है ललितपुर जिले में तो महिला साक्षरता केवल 33 प्रतिशत ही है। जबकि शिक्षा और मानवाधिकारों का अटूट रिश्ता है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी स्त्री और पुरूषों की समानता के विषय में कहा था कि पुत्रों और कन्याओं में कोई भेद नहीं होना चाहिए उनके साथ पूरी समानता का व्यवहार होना चाहिए। पर कितने लोग ऐसा कर पाते हैं। यह सोचने का विषय है। यहाँ विद्यमान रूढ़िवादी सोच लड़कों को तो आगे बढ़ाना चाहती है पर लड़की के अधिक पढ़ने पर भी अंकुश है यहाँ तक कि कुछ परिवारों में तो लड़के लड़कियों के खान, पान, एवं परिवेश तक में फर्क किया जाता है। और महिलाओं के साथ शोषण का यह क्रम बाल्यकाल से प्रारम्भ होकर तब तक जारी रहता है। जब तक वह जीवित है। एमनेस्टी इण्टरनेशनल की एक रिपोर्ट में "विश्व में एक तिहाई महिलाओं को शोषण का शिकार बताया है। जबकि राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार– "भारत में हर 54 मिनट में महिला बलात्कार की शिकार हर 81 मिनट में महिला के साथ अभद्र व्यवहार तथा हर 100 मिनट में किसी महिला को दहेज हत्या एवं हर 7 मिनट में अन्य कोई अपराध महिलाओं के प्रति घटित होता है।"[9]

---

[9] आज 'विश्व की एक तिहाई महिलायें शोषण का शिकार" 8 मार्च, 2004

राष्ट्रीय महिला आयोग में 1.4.2004 से 31.3.2005 तक प्राप्त शिकायतों का विवरण

क्रम. सं.	शिकायत की प्रकृति	अप्रैल 2004	मई 2004	जून 2004	जुलाई 2004	अगस्त 2004	सितम्बर 2004	अक्टूबर 2004	नवम्बर 2004	दिसम्बर 2004	जनवरी 2005	फरवरी 2005	मार्च 2005	कुल
1.	द्विविवाह	5	4	11	2	8	3	2	3	9	5	12	8	72
2.	बच्चों की अभिरक्षा	—	—	1	—	—	—	—	—	—	—	—	—	1
3.	परित्याग	6	5	6	7	2	2	3	3	3	4	15	9	65
4.	तलाक के मामले	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
5.	दहेज मृत्यु	38	17	23	22	26	19	26	16	19	20	23	22	271
6.	दहेज उत्पीड़न	97	74	79	90	84	84	83	69	87	65	117	80	1009
7.	कन्या भ्रूण–हत्या	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
8.	उत्पीड़न	92	67	132	155	130	170	146	105	323	130	203	192	1845
9.	कार्यस्थल पर उत्पीड़न	10	9	6	—	4	4	3	7	7	3	11	12	76
10.	अपहरण	3	3	3	7	3	6	7	7	13	7	10	13	82
11.	निर्वाह–व्यय के मामले	—	—	3	3	—	—	—	—	—	—	1	—	7
12.	वैवाहिक विवाद	28	30	24	17	24	19	34	23	37	25	54	39	354
13.	विविध मामले	42	28	32	43	28	70	31	43	84	32	92	87	612
14.	छेड़छाड़	11	5	17	4	11	7	9	4	5	5	10	14	102
15.	हत्या	9	3	6	9	6	17	4	10	13	6	13	9	105
16.	पुलिस की उदासीनता	53	57	82	90	112	107	130	115	170	131	167	138	1352
17.	पुलिस उत्पीड़न	19	9	14	26	25	27	20	15	41	19	17	26	258
18.	सम्पत्ति (विधवा सम्पत्ति, मात पिता की सम्पत्ति, स्त्रीधन)	2	2	13	6	4	5	5	13	15	5	22	6	98
19.	बलात्कार	31	8	21	16	13	17	13	12	14	7	13	19	184
20.	यौन उत्पीड़न	4	2	2	—	2	13	1	3	—	3	1	1	32
21.	कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न	4	5	3	5	2	—	5	—	8	8	19	10	69
22.	आश्रय	—	—	—	—	—	1	—	—	—	—	—	—	1
	कुल	454	328	478	502	484	570	522	448	848	475	800	685	6594

राष्ट्रीय महिला आयोग में 1.4.2004 से 31.3.2005 तक प्राप्त शिकायतों का विवरण

क्रम. सं.	शिकायत की प्रकृति	अप्रैल 2004	मई 2004	जून 2004	जुलाई 2004	अगस्त 2004	सितम्बर 2004	अक्टूबर 2004	नवम्बर 2004	दिसम्बर 2004	जनवरी 2005	फरवरी 2005	मार्च 2005	कुल
1.	द्विविवाह	5	4	11	2	8	3	2	3	9	5	12	8	72
2.	बच्चों की अभिरक्षा	—	—	1	—	—	—	—	—	—	—	—	—	1
3.	परित्याग	6	5	6	7	2	2	3	3	3	4	15	9	65
4.	तलाक के मामले	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
5.	दहेज मृत्यु	38	17	23	22	26	19	26	16	19	20	23	22	271
6.	दहेज उत्पीड़न	97	74	79	90	84	84	83	69	87	65	117	80	1009
7.	कन्या भ्रूण–हत्या	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
8.	उत्पीड़न	92	67	132	155	130	170	146	105	323	130	203	192	1845
9.	कार्यस्थल पर उत्पीड़न	10	9	6	—	4	4	3	7	7	3	11	12	76
10.	अपहरण	3	3	3	7	3	6	7	7	13	7	10	13	82
11.	निर्वाह–व्यय के मामले	—	—	3	3	—	—	—	—	—	—	1	—	7
12.	वैवाहिक विवाद	28	30	24	17	24	19	34	23	37	25	54	39	354
13.	विविध मामले	42	28	32	43	28	70	31	43	84	32	92	87	612
14.	छेड़छाड़	11	5	17	4	11	7	9	4	5	5	10	14	102
15.	हत्या	9	3	6	9	6	17	4	10	13	6	13	9	105
16.	पुलिस की उदासीनता	53	57	82	90	112	107	130	115	170	131	167	138	1352
17.	पुलिस उत्पीड़न	19	9	14	26	25	27	20	15	41	19	17	26	258
18.	सम्पत्ति (विधवा सम्पत्ति, मात पिता की सम्पत्ति, स्त्रीधन)	2	2	13	6	4	5	5	13	15	5	22	6	98
19.	बलात्कार	31	8	21	16	13	17	13	12	14	7	13	19	184
20.	यौन उत्पीड़न	4	2	2	—	2	13	1	3	—	3	1	1	32
21.	कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न	4	5	3	5	2	—	5	—	8	8	19	10	69
22.	आश्रय	—	—	—	—	—	1	—	—	—	—	—	—	1
	कुल	454	328	478	502	484	570	522	448	848	475	800	685	6594

अप्रैल, 2005 से मार्च, 2006 के दौरान दर्ज की गई शिकायतों का सांख्यकीय सिंहावलोकन

क्रम. सं.	शिकायत की प्रकृति	अप्रैल 2005	मई 2005	जून 2005	जुलाई 2005	अगस्त 2005	सितम्बर 2005	अक्टूबर 2005	नवम्बर 2005	दिसम्बर 2005	जनवरी 2006	फरवरी 2006	मार्च 2006	कुल
1.	द्विविवाह	4	14	12	22	14	18	9	10	12	11	14	12	152
2.	बच्चों की अभिरक्षा	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
3.	छोड़ देना	15	12	18	8	10	9	4	4	7	6	—	5	98
4.	तलाक के मामले	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
5.	दहेज हत्या	32	22	45	40	65	75	39	30	40	32	20	34	442
6.	दहेज उत्पीड़न	75	115	208	190	180	161	116	150	178	100	112	115	1700
7.	मादा शिशु हत्या	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—	—
8.	उत्पीड़न	209	316	442	387	294	326	343	332	486	482	382	400	4399
9.	कार्यस्थल पर उत्पीड़न	8	19	18	27	20	21	10	10	—	7	10	—	150
10.	अपहरण	4	10	18	23	27	17	11	20	13	12	24	23	202
11.	भरण पोषण मामले	3	—	2	—	—	—	1	2	—	—	—	—	8
12.	वैवाहिक विवाद	13	35	65	111	78	75	61	80	69	21	89	87	784
13.	विविध मामले	74	120	186	152	126	105	86	105	89	107	211	169	1530
14.	छेड़छाड़	8	11	14	9	16	18	9	12	10				107
15.	हत्या	7	14	15	20	20	15	9	11	16	9	8	18	162
16.	पुलिस की उदासीनता	85	191	253	209	102	138	157	160	150	55		6	1506
17.	पुलिस द्वारा उत्पीड़न	31	39	54	44	39	25	32	40	31	15	34	35	419
18.	सम्पत्ति (विधवा सम्पत्ति, मात पिता की सम्पत्ति, स्त्रीधन)	16	24	52	12	18	17	16	15	10	23	8	7	218
19.	बलात्कार	21	15	26	44	54	48	46	27	33	30	37	30	411
20.	यौन उत्पीड़न		2	2	2	—	1	2	4	5	20	10	14	62
21.	कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न	9	1	14	7	28	12	2	4	1	4	9	10	106
22.	आश्रय	1	—	1	1	—	—	—	—	1	—	—	—	4
	कुल	615	964	1445	1307	1091	1081	953	1016	1151	934	968	965	12490

महिलायें सरकारी, गैर सरकारी, व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक जगह किसी न किसी तरह के उत्पीड़न का शिकार हो रही है। जहाँ 2003–04 में राष्ट्रीय महिला आयोग में दर्ज वादों की संख्या 5462 थी वहीं 2004–05 में बढ़कर 6594 तथा 2005–06 में बढ़कर 12490 हो गई है। महिला उत्पीड़न के आंकड़े राष्ट्रीय महिला आयोग के वार्षिक रिपोर्ट से लेकर उद्धित किये गये हैं। पिछले पृष्ठ पर सारिणयों में दिये जा रहे हैं जो दर्शाते हैं कि सर्वाधिक मामले उत्पीड़न के हैं 4399 उसके बाद दहेज उत्पीड़न के 1700 मामले तथा 1506 पुलिस की उदासीनता के हैं तथा 411 मामले बलात्कार के दर्ज किये गये हैं। और बलात्कार की शिकार महिलायें अधिकतर आर्थिक रूप से कमजोर एवं निम्न वर्गों की अधिक होती है। अधिकतर मामले तो दर्ज ही नहीं होते क्योंकि आर्थिक सामर्थ्य आड़े आ जाती है। और कुछ सम्मान की दृष्टि से छिपा लिये जाते हैं। और ये मामले कम होने की अपेक्षा बढ़ते रहते हैं। आज महिलायें सर्वाधिक मानसिक रोगों का शिकार हो रही हैं। इसका मूल कारण इनके साथ होने वाले अत्याचार एवं शोषण ही है। समाज में दहेज हत्यायें लगातार बढ़ने का कारण इसे मिल रही सामाजिक मान्यता ही तो है। यदि हम दहेज लेने एवं देने वालों का सामाजिक रूप से बहिष्कार करना प्रारम्भ कर दें और सरकार भी जल्द कारगर कदम उठाये। देखिये कैसे इस प्रथा का अन्त नहीं होता। पर अधिकतर लोग दहेज लेना अपराध बताते हैं लेकिन जब अपनी बारी आती है।

तब अधिक से अधिक दहेज लेना चाहते हैं परिणाम स्वरूप दहेज हत्यायें लगातार बढ़ती जा रही हैं।

"हमीरपुर के रिगवारा खुर्द की घटना के अनुसार सुमन दहेज के कारण उत्पीड़न शायद उसका भाग्य बन गया है। यहाँ तक उसका बच्चा भी अत्यधिक मारपीट के चलते दुनिया में आने से पहले ही मर गया। "रिंकी देवी एट (जालौन) ससुराल पक्ष ने जहर खिलाकर मार डाला। गीता देवी बम्होरी खुर्द (जालौन) ससुराल पक्ष ने जलाकर मार डाला : शादी के बाद मोटर साईकिल की मांग कर रहे थे। रजनी पत्नी राजेन्द्र गरौठा, (झांसी) मिट्टी का तेल डालकर जला दिया। इसी घटनाक्रम में "हमीरपुर के ग्राम इस्लामपुर में जुलेखा नाम की महिला को उसके ससुराल पक्ष वालों ने इतना प्रताड़ित किया कि उसकी मृत्यु हो गई। एक अन्य मामले में सुमेरपुर में माया नाम की महिला की जहर देकर हत्या कर दी गई तथा दोनों मामलों में रिपोर्ट दर्ज करवा दी गई थी।"[10] महिलाओं से सम्बन्धित अपराधों में कमी के उपरान्त भी करीब 33 महिलायें उत्तर प्रदेश में उत्पीड़न का शिकार हुई है। "प्रतिदिन चार महिलायें दहेज का शिकार होती है और एक महिला बलात्कार का 2001 में दहेज हत्याओं की संख्या 1964 तथा 2002 में 1665 थी।"[11]

समाज में महिला अधिकारों के प्रति जागरूकता द्वारा ही समाज में इन सब मामलों को कम किया जा सकता है अन्यथा हमारी कानून व्यवस्था तो

---

[10] पुलिस में दज रिपोर्ट से आहरित मामले (आज) 13 मार्च
[11] योगेन्द्र कुमार श्रीवास्तव, "मानवाधिकारों की कसौटी पर महिलायें"

आज नाकारा साबित हो चुकी है। और प्रत्येक व्यक्ति मानवाधिकारों के हनन से पीड़ित है। जबकि इनकी सुरक्षा पर आज जितना अधिक बल दिया जा रहा है। उतना ही मानवाधिकार हनन की घटनायें परिलक्षित हो रही है। इस पृष्ठभूमि में यह आवश्यक है कि पुलिस भी मानवाधिकारों के प्रति बराबर सजग रहे। बुन्देलखण्ड को तो पुलिस उत्पीड़ित क्षेत्र घोषित किया गया है। यहां अकसर पुलिस पर मानवाधिकार हनन के आरोप लगाये जाते हैं। पुलिस हिरासत में अभियुक्तों की प्रताड़ना, भीड़ आदि नियन्त्रण में आवश्यकता से अधिक बल प्रयोग महिलाओं, बच्चों तथा सामान्य नागरिकों से पुलिसजनों द्वारा दुर्व्यवहार, कानून द्वारा दिये गये अधिकारों का अतिक्रमण, पुलिस विभाग की धोंस में गलत कार्य, सूचना रिपोर्ट का अंकन न करना, या गलत अंकन, फर्जी मुठभेड के मामले अपराधियों से सांठगांठ के मामले, आये दिन यहाँ परिलक्षित होते रहते हैं। बांदा में पुलिस कर्मचारियों द्वारा महिला से बलात्कार का मामला।

ये सब पुलिस की छवि को धूमिल कर रहे। और पुलिस की भूमिका यहां रक्षक की अपेक्षा भक्षक की होती जा रहो है। कुठौंद (जालौन) के नीरजपुर गांव में 08–09–04 को हरिश्चन्द्र पाल की मृत्यु जो कि अपराधी भी नहीं था पुलिस द्वारा किये कुकृत्य को दर्शाती है। और आयोग द्वारा जांच होने पर यातना के कारण मृत्यु पाया गया। इसी तरह हमीरपुर जिले में पुलिस अभिरक्षा में एक वृद्ध की मृत्यु का मामला आदि। पुलिस का कार्य अपराधों की रोकथाम करना है। न कि अपराध करना, कोंच में ही देवेन्द्र सिंह दरोगा द्वारा कोतवाली परिसर में ही

दो भाइयों की हत्या कर दी जाती है। कानून की रक्षा करने वालों को शायद कानून का डर नहीं है। के0 पी0 सिंह (दैनिक जागरण चीफ ब्यूरो) के अनुसार सामान्य जन को अपराधी बनाने का कार्य अधिकतुर पुलिस द्वारा ही किया जाता है।

राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को भी सर्वाधिक वाद पुलिस उत्पीड़न के ही प्राप्त हो रहे हैं जिनकी संख्या राज्य मानवाधिकार आयोग में भी सबसे अधिक है। जो निम्नांकित हैं–

उ0 प्र0 एवं बुन्देलखण्ड में पुलिस उत्पीड़न के मामले

वित्तीय वर्ष	उ0 प्र0 से प्राप्त वाद	बुन्देलखण्ड से प्राप्त वाद
2004–05	3172	229
2005–06	2703	183
2006–07	3745	254

बुन्देलखण्ड दस्यु प्रभावित क्षेत्र होने के कारण पुलिस द्वारा और अधिक प्रताड़ित क्षेत्र है। यहाँ एक डाकू को पकड़ने के कारण पूरे पूरे गाँव को पुलिस छावनी बना दिया जाता है जहां अपराधियों का कम जनसामान्य का उत्पीड़न अधिक होता है। और एक डाकू के मारे जाने पर उसके रक्तबीज से कई अन्य डाकू पैदा हो जाते हैं डाकू समस्या भी यहाँ की सामाजिक व्यवस्था की ही देन है क्योंकि अत्यधिक उत्पीड़न क्रांति को जन्म देता है। मानवाधिकारों का हनन तो यहाँ सर्वत्र व्याप्त है पर जालौन और बाँदा जिलों की स्थिति और अधिक

चिन्तनीय है। बुन्देलखण्ड के सातों जिलों से राज्यमानवाधिकार आयोग को प्राप्त तीन वर्ष के कुल पंजीकृत निस्तारित और प्रचलित वादों की संख्या सारिणी के माध्यम से नीचे दर्शायी गई है।

2004–05 में बुन्देलखण्ड से राज्य मानवाधिकार आयोग को प्राप्त कुल वादों की संख्या

जिला	पंजीकृत वाद	निस्तारित वाद	प्रचलित वाद
बाँदा	118	113	5
चित्रकूट	71	67	5
महोबा	38	35	3
हमीरपुर	97	90	7
जालौन	154	146	8
झाँसी	78	76	2
ललितपुर	44	43	1

2005–06 में बुन्देलखण्ड से राज्य मानवाधिकार आयोग को प्राप्त कुल वादों की संख्या

जिला	पंजीकृत वाद	निस्तारित वाद	प्रचलित वाद
बाँदा	112	103	9
चित्रकूट	99	92	3
महोबा	25	23	2

हमीरपुर	92	85	7
जालौन	167	155	12
झाँसी	88	85	3
ललितपुर	31	27	

2006–07 में बुन्देलखण्ड से राज्य मानवाधिकार आयोग को प्राप्त कुल वादों की संख्या

जिला	पंजीकृत वाद	निस्तारित वाद	प्रचलित वाद
बाँदा	142	132	10
चित्रकूट	102	100	2
महोबा	39	37	2
हमीरपुर	142	117	7
जालौन	196	184	12
झाँसी	123	118	5
ललितपुर	41	38	3

ये सब आंकड़े दर्शाते हैं कुल वादों की संख्या का 15 प्रतिशत बुन्देलखण्ड से आते हैं। जैसे 2005–06 में कुल वाद 9356 थे तथा बुन्देलखण्ड से प्राप्त वाद 610 थे जो कुल वादों का 15.3 प्रतिशत थे। क्रमशः 2006--07 में 767 वाद थे ये भी कुल वादों का 15.2 प्रतिशत थे। एवं बुन्देलखण्ड से प्राप्त वादों में जिला जालौन से सबसे अधिक मामले आते हैं। चाहे वह पुलिस

उत्पीड़न हो, महिला उत्पीड़न या अनुसूचित जाति जनजाति या पिछड़ी जातियों का उत्पीड़न, यह पीछे दी गई सारणी के माध्यम से देखा भी जा सकता है।

बुन्देलखण्ड में व्याप्त असमानता, शोषण असम्मान एवं अन्याय के लिए राज्य के इतर जाति, धर्म, पंथ, व्यवस्थायें जिम्मेदार है। बंधुआ मजदूर प्रथा बाल मजदूर प्रथा, नारी शोषण के विभिन्न रूप दहेज हत्या, विधवाश्रम बहु पत्नी प्रथा आदि कहीं नहीं धर्म एवं परम्परा से समर्थित है क्योंकि राज्य इतना समर्थ नहीं है कि इन प्रथाओं से वास्तविक स्तर पर मुक्ति दिला सके। इसलिए मानव अधिकार के हनन का सिलसिला निर्बाध रूप से चल रहा है। और राज्य द्वारा निकली संस्थायें भी भ्रष्टाचार के चलते आज नाकारा साबित हो रही हैं। और आज गैर सरकारी संस्थाओं शक्तिशाली समूहों एवं व्यक्तियों को मानवाधिकारों के संरक्षण की जिम्मेदारी राज्य से मिलकर सामूहिक रूप से लेनी होगी। अतः प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक हित, समानता, गरिमा तथा स्वतन्त्रता की रक्षा हो यही मानवाधिकारों के मूल्य हैं। सभी धर्म परम्परायें व्यक्ति के हितों की रक्षा की बात करते हैं यह जरूर है कि वह व्यक्ति से अधिक महत्व समाज एवं व्यवस्था को देते हैं। क्योंकि धर्म एवं परम्पराएं आदर्शों पर आधारित अधिक होते हैं इसलिए भी धर्म के मूल्यों में और व्यक्तिगत मूल्यों में विरोधाभास दिखाई देता है। बहुत सी धार्मिक और पारम्परिक मान्यताएं मानव अधिकारों का समर्थन करती है। पर जहाँ मूल्य और मान्यता मानव अधिकार विरोधी साबित हो वहाँ उसका परित्याग करना ही उचित होता है। तभी हम मानव मूल्यों की रक्षा कर

सकते हैं। अतः आज मानव के विकास के लिए मानवाधिकारों को समाज से उच्च स्थान देना होगा तभी बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के हनन को रोका जा सकता है।

और यह आज सर्वविदित है कि मानवाधिकारों के बिना कोई भी व्यक्ति गरिमामय एवं सरलतापूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। अतः बुन्देलखण्ड जो विकास के प्रतिमानों में बहुत पिछड़ा हुआ है। वहाँ बड़ी संख्या में पुरूष, महिलायें, बच्चे गरीबी की निम्न स्थिति में अर्द्धमानवीय जीवनयापन कर रहे है। आज इनमें अपने अधिकारों के प्रति जागरूक रहने की इच्छा भी मृत्युवत हो गई है। और इन्होंने अपने ऊपर हो रहे शोषण एवं अत्याचार को अपनी नियति के रूप में स्वीकार कर लिया है। जिससे अधिकतर लोग अपने ऊपर हुये शोषण एवं अत्याचारों के विरूद्ध आवाज ही नहीं उठाते और न ही रिपोर्ट आदि दर्ज कराते हैं। क्योंकि जितना उत्पीड़न समाज में व्याप्त है उतना रिपोर्ट एवं वादों में भी परिलक्षित नहीं हो पा रहा है। क्योंकि अधिकतर मामले दबाव के कारण या आर्थिक सामर्थ्य के कारण भी दर्ज नहीं होते है।

इसी तरह स्वतन्त्र पत्रकारिता को कुचलने की कोशिशें बुन्देलखण्ड में पुलिस प्रशासन व माफियाओं द्वारा लगातार होती रहती है। बाँदा के सुरेश चन्द्र, झाँसी के मूलचन्द्र यादव को तो इस क्रम में अपने प्राणोत्सर्ग करना पड़ा। जबकि किसी लोकतांत्रिक देश में पत्रकारिता पर खतरे मानवाधिकारों का बड़ा मुद्दा है। पत्रकारों को धमकियाँ मिलना भी आम बात है। अतः जब शिक्षित

जागरूक अधिकारों की जानकारी रखने वालों के अधिकार सुरक्षित नही है तो सामान्य जन तो अधिकारों की जानकारी ही नहीं रखता जिससे उनके प्रति अपराधों का, क्रम बढ़ता ही जा रहा है। और बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की स्थिति दयनीय बनी हुई है।
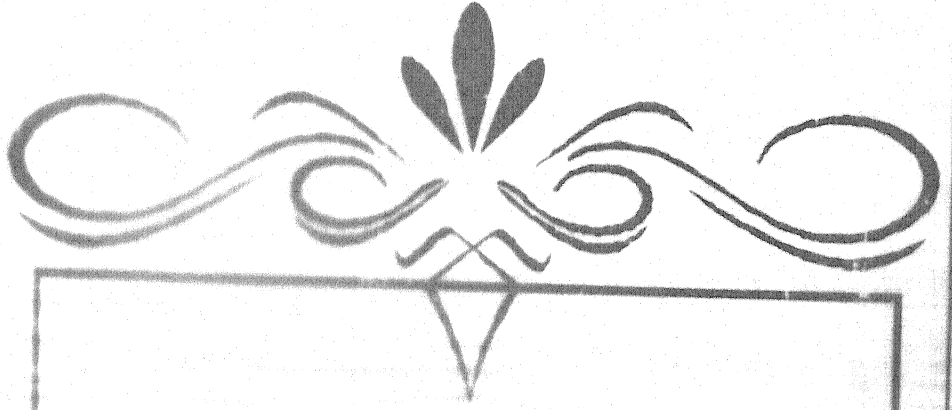
अध्याय- षष्ठम्

बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों का भविष्य एवं मानवाधिकार संरक्षण के सुझाव
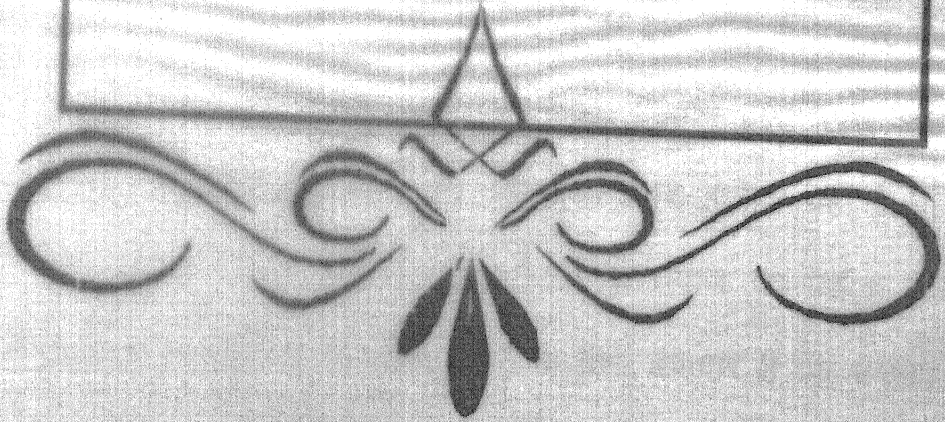
बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों का भविष्य एवं मानवाधिकार सरंक्षण के सुझाव

"लोकतंत्र में अच्छी सरकार के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी संस्थागत व्यवस्था की जाये जिससे कि अपने अधिकारों और कर्तव्यों का मजबूती से पालन करते हुये किसी ज्यादती अथवा भूल के कारण कोई संस्था या व्यक्ति किसी भी नागरिक को, किसी भी प्रकार को चोट, नुकसान, दुःख अथवा परेशानी न पहुँचा सके। ऐसी व्यवस्था में न सिर्फ दुर्व्यवहार की संभावना को कम करने के लिए आन्तरिक रोकथामों का शामिल होना आवश्यक है वरन् यह भी जरुरी है कि किसी भी कथित ज्यादती अथवा भूल की शिकायत को दूर करने के लिए प्रभावी जांच की जाये तथा बिना किसी देरी के दोषी व्यक्ति को दण्ड दिया जा सके।"[1]

अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक सभ्य समाज कुछ नैसर्गिक अधिकारों से शाषित होता है कोई भी अधिकार या तो प्रकृति प्रदत्त होते हैं या विधिक। पर जब हम यह कहते हैं कि मानव अधिकार उस अर्थ में मौलिक अधिकार हैं जो प्रकृति ने प्रत्येक मानव प्राणी को दिये हैं तो इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि ये सकारात्मक एवं विधि निर्माता निकाय द्वारा प्रदत्त अधिकार हो सकते है। और जहाँ वे सकारात्मक विधि द्वारा मान्य होते है वहाँ वे नैतिक एवं विधिक दोनों प्रकार के अधिकार होते है। सभ्य समाज का प्रत्येक सदस्य या व्यक्तियों का समूह यह सुनिश्चित करने के लिए हकदार है कि उसका विधिक

---

[1] N. P. C. "I Report" 10.1

अधिकार किसी दूसरे के द्वारा केवल इसलिए न छीन लिया जाये कि वह कमजोर है और "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली उक्ति चरितार्थ हो, जहाँ शक्तिशाली व्यक्ति दण्डाभाव से दूसरे के अधिकार का आदर करने से इन्कार कर सकता है, वहाँ व्यक्ति या व्यक्ति समूह क्रूर बल से या धन द्वारा दूसरे के अधिकारों को कुचल सकता है। पर उस दिन समाज सभ्य समाज नहीं रहेगा।

परन्तु बुन्देलखण्ड की स्थिति से तो यही परिदृश्य सामने आता है कि साधन सम्पन्न एवं शक्ति सम्पन्न व्यक्ति प्रत्येक दिन दूसरे के अधिकारों का हनन कर रहे हैं और अपने अधिकारों का उपभोग। परन्तु जैसा कि हम सब जानते है कि यदि हम एक व्यवस्थित सभ्य समाज में रहने की इच्छा करते हैं तो हमें दूसरे के अधिकारों का आदर करना सीखना होगा न कि हम अपने अधिकारों का ही प्रख्यान करने की सोचे वरन् आवश्यक है कि हम अपने कर्तव्यों के प्रति भी जागरूक रहे न कि केवल अधिकारों के प्रति।

यद्यपि 1993 के बाद भारत के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर यह वकालत करते रहे है कि हमने पूर्ण सम्भव सीमा तक इन अधिनियमों पर उत्तरदायित्व पूर्ण निर्वहन किया है किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है अधिकारों के क्रियान्वयन के प्रति सरकार का दृष्टिकोण वस्तुतः अरुचिपूर्ण और सीमितरहा है। इसका परिणाम यह है मानव अधिकारों के उल्लघंन के वाद केन्द्रीय मानवाधिकार आयोग और राज्य मानवाधिकार आयोग में लगातार संख्या में बढ़ते ही जा रहे है। जबकि ये बात हम स्वयं भी जानते है कि वास्तविकता में कितने वाद दर्ज होते है और कितने नहीं उदाहरण के लिए भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम

संगठन के शिशु अधिकार अभिसमय एवं ऐसे अन्य अभिसमयों का पक्षकार है, जो बालश्रम से सम्बन्धित है, किन्तु बालश्रम की समाप्ति का कार्य भ्रमात्मक है यह आंकलन किया गया है कि लगभग दस करोड़ बच्चे बाल श्रमिक है जिनमें से दो करोड़ खतरनाक उद्योगों में काम कर रहे है बुन्देलखण्ड के सातों जिलों में असंख्य बाल श्रमिक कार्य करते दिखते है पर इनकी संख्या का निश्चित अनुमान लगा पाना बहुत कठिन है यदि यहाँ बेरोजगारी इसी तरह बढ़ती रही तो इनकी संख्या आगे और अधिक बढ़ सकती है जबकि ये हमारे भावी नागरिक है जो कूड़े के ढेरों में गंदगी ढूंढते नजर आते है कभी होटलों पर बर्तन धोते, कभी मिस्त्रियों की दुकानों पर या कालीन बुनते, बीड़ी बनाते नजर आते हैं चूंकि इनके माता पिता अत्यधिक गरीबी के चलते इनसे काम कराने को मजबूर है।

उ0 प्र0 सरकार द्वारा सी0 एल0 ए0 पी0 बालश्रम समाप्ति प्रोग्राम बनाया है लेकिन स्थिति जैसी की तैसी। शत प्रतिशत नामांकन योजना भी प्रारम्भ की, अनु0 45 निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था भी करता है ये सब योजनायें प्रारम्भ होती है खत्म हो जाती है। पर इन बच्चों की स्थिति में कोई सुधार नहीं होता चूंकि सरकारी प्रयास तो आज विफल होते नजर आ रहे हैं आज समाज में लोगों को बालश्रम के विरुद्ध आवाज उठानी होगी, और स्वयं भी बालश्रमिकों को न रखने का प्रण लेना होगा। एवं इनके पुनर्वास के समुचित उपाय करने होंगे। और इसके लिए सरकारी, गैर सरकारी संगठनों, समाजसेवियों, उद्योगपतियों एवं अभिभावकों द्वारा इनके रहने खाने एवं पढ़ने की ऐसी व्यवस्था करनी होगी जिससे यह बच्चे अपना विकास करते हुये समाज का भी विकास कर सकें।

यद्यपि बुन्देलखण्ड में भी शिक्षा का स्तर बढ़ा है परन्तु आज भी आधी जनसंख्या निरक्षर और निर्धन है यहाँ सबसे कम साक्षरता ललितपुर जिले में 49.93 प्रतिशत उ0 प्र0 की कुल साक्षरता 57.36 प्रतिशत है जिनमें पुरुष 70.23 प्रतिशत भारत में 23वां स्थान तथा महिला 42.98 प्रतिशत भारत में 25वां स्थान है, यानि मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाने के लिए सर्वप्रथम साक्षरता दर को बढ़ाना होगा। नोबुल पुरस्कार प्राप्त अमर्त्य सेन के अनुसार अपराधों के मूल में अशिक्षा ही है। मानवाधिकार हनन का प्रमुख कारण यहाँ शिक्षा की कमी है अधिकतर जनसंख्या दलित एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की है जिन्हें अब तक शिक्षा से वंचित रखा गया है और केवल गुलाम समझकर उनसे खेतों एवं घरों पर मजदूरी का कार्य कराया गया। सरकार द्वारा इनकी साक्षरता बढ़ाने के लिए किये गये प्रयासो का सुफल इसलिए नहीं निकल पा रहा है क्योंकि शिक्षा के महत्व के प्रति इनकी उदासीनता तथा इनकी महत्वाकांक्षाये मर चुकी है शायद इन्होंने मजदूरी करने को ही अपनी नियति मान लिया है फलस्वरूप वे बच्चों के पढ़ाने लिखाने पर भी ध्यान नहीं देते है। जिससे शिक्षा के मूल अधिकार से ये वंचित हैं आज भी इनके साथ असम्मानजनक व्यवहार आम बात है इतने कानूनों के बाद भी इनके साथ शोषण की घटनाओं में कमी नही आई है।

यद्यपि मानव अधिकारों के हनन को रोकने के लिए एवं अधिक अच्छे संरक्षण के लिए उससे सम्बद्ध या उसके अनुषंगिक मामलों के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग एवं प्रत्येक जिले में मानव

अधिकार न्यायालयों के गठन हेतु 28 सितम्बर 1993 को अध्यादेश जारी किया और "8 जनवरी 1994 को संसद ने मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम 1993 के रूप में पारित किया।"[2]

और आज मानवाधिकारों की सूची इतनी लम्बी है कि सरलतापूर्वक उनकी गिनती कर पाना भी कठिन है किन्तु इन नियम कानूनों का पूरे तौर पर क्रियान्वयन नहीं किया जा रहा है। कमजोर वर्ग, निम्न जातियाँ, महिलायें, बालश्रमिक अर्द्धसरकारी व गैर सरकारी कर्मचारी अल्पसंख्यक कौन ऐसा है, जो इस गंभीर समस्या से ग्रस्त नहीं। मात्र अधिकार मिल जाना पर्याप्त नहीं जब तक उनकी सुरक्षा के उपाय नहीं किये जाते तब तक उनका कोई अर्थ नहीं रहता। आज यही स्थिति बुन्देलखण्ड में परिलक्षित है सम्पूर्ण क्षेत्र शोषण अत्याचार भ्रष्टाचार से त्रस्त है जबकि शासन का कर्तव्य व दायित्व है कि मानवाधिकारों की रक्षा करे और शासन के कार्यकारी अंग के रूप में इसके पालन का बहुत कुछ उत्तरदायित्व पुलिस बल के ऊपर जाता है। आयोग में दर्ज आंकड़े दर्शाते हैं कि मानवाधिकारों का हनन सर्वाधिक पुलिस बल द्वारा ही किया जाता है राज्य मानवाधिकार आयोग में दर्ज मामले निम्नवत् हैं–

2006–07 में कुल पंजीकृत निस्तारित और प्रचलित मामले

---

[2] 1994 की अधिनियम संख्या, 10

मुख्य विषय	पंजीकरण	निस्तारण	प्रचलित
धार्मिक/साम्प्रदायिक हिंसा	30	20	1
श्रम	55	48	7
स्वास्थ्य	81	60	21
न्यायपालिका	22	21	1
बालक	177	136	41
बलवे	3	3	0
कारागार	550	86	464
महिला	1073	927	146
माफिया	10	9	1
किशोर/भिखारी	2	1	1
विविध	4983	4516	467
पुलिस	3745	3119	626
प्रदूषण/प्रास्थितिकी	16	10	6
रक्षाबल	2	2	0
सेवा के मामले	639	537	102
अर्द्ध सैनिक बल	2	2	0
अल्पसंख्यक	14	13	1
अनुसूचित जाति/जनजाति	279	252	27

बुन्देलखण्ड में पुलिस बल की कार्यप्रणाली आज भी औपनिवेशिक युग की है जिसमें शोषण रोकने की अपेक्षा शोषण अधिक किया जाता है। मेरा मानना है कि पुलिस बल की कार्यशैली में अब परिवर्तन की आवश्यकता है जिसमें अन्तःकरण से प्रत्येक पुलिसकर्मी को स्वयं विधि द्वारा प्रदत्त नियमों एवं अधिकारों के अनुसार कार्य करने की शपथ उन्हें स्वयं निजी तौर पर धारण एवं अंगीकरण करनी होगी, तभी वह मानवाधिकारों का सम्मान कर सकेंगे। उन्हें यह सदैव ध्यान रखना होगा कि जो व्यवहार हम दूसरों के साथ करते है यदि वही मेरे अपनों के साथ हो तो कैसा प्रतीत होगा, यदि इस पर विचार कर ले तो बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के हनन में काफी कमी आ सकती है।

क्योंकि पुलिस का सर्वोपरि कर्तव्य अपराधों की रोकथाम करना तथा ऐसे प्रयास करना है जिससे कि अपराध घटित न हो। अगर अपराध घटित हो जाते हैं तो पुलिस का यह परम कर्तव्य है कि अभियुक्तों को गिरफ्तार किया जाये तथा उन्हें न्यायालय से उचित सजाएं दिलाई जाएं। अगर किसी प्रकार जांच कार्य में समयाभाव के नाते किसी कमी के कारण अथवा किसी अन्य कारणवश न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को बिना सजा दिए छोड़ दिया जाता है तो इससे अभियुक्तों के हौसले और बुलंद हो जाते हैं तथा अपराध बढ़ने लगते हैं। इससे समाज में अव्यवस्था फैलने लगती है। बुन्देलखण्ड में लोगों की धारणा है कि पुलिस थाने में इतना भ्रष्टाचार व्याप्त है कि बिना लिये दिये रिपोर्ट का अंकन भी नहीं होता।

श्री त्रिवेणी दत्त पाण्डेय के अनुसार–

"पुलिस द्वारा मानवाधिकार का अतिक्रमण आज एक बदनुमा धब्बे की तरह पुलिस पर चस्पा होता जा रहा है आये दिन विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं, समाचार पत्रों, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से पुलिस बल द्वारा मानवाधिकार के उल्लघंन की बातें प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सामने आ रही हैं। इतना ही नहीं देश की सभी प्रदेशों की पुलिस एवं सुरक्षा बलों तथा सेनाओं पर भी मानवाधिकारों के हनन के कीचड़ उछाले जा रहे हैं।"[3] ये पुलिस बल के लोग अन्तःकरण से ही सोचें कि इसमें कितना सच है कितना झूठ तो शायद शोषण का क्रम आज भी रुक सकता है।

पर बुन्देलखण्ड क्षेत्र में तो आये दिन पुलिस अभिरक्षा में हिंसा, शारीरिक यातना, बलात्कार, बिना लिखा पढ़ी 24 घंटे से अधिक बन्दियों को पुलिस अभिरक्षा में रखना, फर्जी मुठभेड़ (एक जिले में 70–80 पुलिस मुठभेड़ के केस एक वर्ष में) दिखाकर हत्या, जमानतीय अपराधों में जमानत न लेना, सूचना रिपोर्ट का अंकन न करना या सही–सही अंकन न करना बन्दी को गिरफ्तारी के कारण न बताना, बन्दी के परिजनों को उसकी गिरफ्तारी की सूचना न देना आदि आये दिन की घटनायें है। अतः अब समय आ गया है कि पुलिस के कार्य का प्रारम्भ गाली एवं अन्त गोली से होने की प्रथा अब समाप्त होनी ही चाहिए। इक्कीसवीं सदी में जनता पुलिस को परेशान करने वाला तंत्र ही समझती है जबकि एक लोकतांत्रिक समाज में जनता के सहयोग से कानूनों के असरदार

---

[3] कैलाश नाथ गुप्त "मानवाधिकार और उनकी रक्षा" दिल्ली, 2004 पृ0 97

पालन की आज बहुत आवश्यकता है। कैलाशनाथ गुप्त जी के अनुसार पुलिस को एफ0 ओ0 पी0 (Friends of Police) की विचारधारा का आदर्श समाज के सामने प्रस्तुत करना होगा जिनमें जनता के लोग सदस्य होंगे तथा पुलिस के कार्यो में सहयोग भी करेंगे। जिससे आम जनता का पुलिस तंत्र के प्रति विश्वास भी बढ़ेगा। और पुलिस कर्मियों के ड्यूटी के घंटो का निर्धारण तथा इनकी संख्या में वृद्धि की भी आवश्यकता है। क्योंकि जनसंख्या वृद्धि के कारण इनकी संख्या बढ़ाने की भी आवश्यकता है। समस्त कनूनों में एकरुपता लानी होगी। मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए यह भी आवश्यक है कि लंबित मामलों को जल्द से जल्द निपटाया जाये जबकि मुकदमे 20, 30 वर्षों तक लंबित रहते है। इस सदी में अपराध पीड़ित व्यक्तियों को मुआवजे की व्यवस्था भी शोषक एवं सरकार द्वारा मिलकर की जानी चाहिए। मद्रास विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा किये गये सर्वे में तथा 'इंडिया टुडे' के सर्वे में पुलिस संस्था को सबसे निम्न स्थान मिला है जबकि चुनाव संस्था पर लोगों का सर्वाधिक विश्वास है क्योंकि भ्रष्टाचार का भी पुलिस में नियन्त्रण व उन्मूलन जरुरी है। अधिक बुद्धि के लोगों को ही पुलिस में भर्ती किया जाना चाहिए। भाई भतीजावाद न हो पुलिस को जनता के प्रति जबावदेह एवं राजनीति से मुक्त भी होना चाहिए।

अतः पुलिस को मानव अधिकारों के हनन से बचना होगा। सभी की गरिमा एवं रक्षक की छवि विकसित करनी होगी। अधिकारों के दुरुपयोग को तिलांजलि दी जाए, चाहे वह व्यक्तिगत स्वार्थ हेतु हो या ऊपर के लोगों को खुश करने हेतु। भय पैदा करने की बजाए पुलिस में सेवा की भावना

अन्तर्निहित होनी चाहिए भर्ती काल व सेवाकाल में उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

कैलाशनाथ गुप्त जी के अनुसार–

"अन्वेषण पुलिस और प्रशासकीय पुलिस को अलग किया जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारें जितना शीघ्र कदम उठाए उतना ही उचित होगा एवं पुलिस तथा अंततोगत्वा देश के हित में होगा और पुलिस मानवाधिकार संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभा पाएगी।"[4] अतः मैं कहना चाहती हूँ कि एक गतिशील और समर्थ बुन्देलखण्ड के सपने को साकार करने के लिए भविष्य में पुलिस को अपने लिए समझ परन्तु मैत्रीपूर्ण छवि का नि र्माण करना होगा आम आदमी के लिए सहयोग की दिशा में हाथ उठाना होगा और समाज के सहयोगी के रूप में आना होगा, अब तक पुलिस प्राघटना या दुर्घटना के बाद सक्रिय होने वाले बल के रूप मे ही चर्चित रही है उसे अब सक्रिय होकर अप्रगामी ढंग से कार्य करना होगा जिससे मानवाधिकार हनन के मामलों को रोका जा सके।

इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में महिलाओं की स्थिति भी व्यवहारिक रूप से दूसरे दर्जे के नागरिकों की है। उनके साथ गलत शब्दों का प्रयोग मारपीट, दहेज, हत्यायें, बलात्कार अन्य अनापेक्षित अपराध समाज का हिस्सा है और आये दिन देखने सुनने को मिलते रहते हैं। यदि महिला दलित वर्ग की हो तो स्थिति और भी भयावह हो जाती है। जबकि भारत महिलाओं के विरुद्ध भेदभाव

[4] कैलाश नाथ गुप्त "मानवाधिकार संरक्षण में पुलिस की भूमिका" दिल्ली, 2004 पृ0 95

की समाप्ति के अभिसमय का अनुसमर्थक राज्य है। किन्तु महिलाओं की स्थिति आज भी शोचनीय बनी हुई है वे आज भी सबसे अधिक उत्पीड़न का शिकार होती है। महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए वर्ष 2001 को महिला सशक्तीकरण वर्ष के रूप में मनाया गया जिसकी एकमात्र उपलब्धि यह रही कि महिला को विवाह विच्छेद के बाद अनुतोष की राशि में वृद्धि की गई एवं अनेक सेमिनार आयोजित हुये। किन्तु महिलाओं की दशाओं को प्रभावित करते हुये कोई सुधार नहीं हो पाया, क्योंकि पुरुष महिला भेदभाव तो हमारे रीति रिवाज, परम्पराओं, धर्म एवं हमारे मस्तिष्क में रचा बसा हुआ है।

महिलाओं के प्रति हिंसा भ्रूण हत्या के रूप में हमारे समाज में धुन की तरह लग चुका है। अधिकतर व्यक्ति लड़के की चाह में लड़कियों को खत्म करते जा रहे हैं। तभी बुन्देलखण्ड में 1000 पुरूषों पर कम से कम 150 महिलायें कम है अगर यही स्थिति बनी रही तो समाज में महिलाओं के प्रति अधिक यौन अपराध बढ़ते जायेंगे पुष्पलता तनेजा के अनुसार केवल उ0 प्र0 में ही छः लाख लड़कियाँ जानबूझकर गायब कर दी जाती है।

एमनेस्टी इण्टनेशनल की एक रिपोर्ट के अनुसार– "विश्व में प्रत्येक तीन में से एक महिला पीटी जाती है, यौन कार्य में जबरदस्ती ढकेली जाती है या किसी न किसी तरह उत्पीड़न का शिकार होती है।"[5] उ0 प्र0 में भी प्रतिदिन 33 महिलाओं का उत्पीड़न होता है सरकारी आंकड़ों ने दहेज हत्याओं में 31.60 प्रतिशत की कमी बतायी है, जबकि 4 दहेज हत्यायें प्रतिदिन दर्ज होती है।

---

[5] आज "17–5–06" कानपुर।

2001 में 1964, 2002 में 1665 दहेज हत्यायें दर्ज की गई थी। बुन्देलखण्ड में ही औसतन प्रतिदिन एक महिला बलात्कार का शिकार होती है। परमार्थ सेवा संस्थान के अनुसार दलित वर्ग की 83 महिलायें उरई में ही आज भी सिर पर मैला ढोने का कम कर रही है केवल 20, 25 रूपये में। एक और घटना के अनुसार पी0 यू0 सी0 एल0 बाँदा शाखा प्रभारी सैय्यद मंजर अली का कहना है कि बाँदा में पुलिस कर्मचारियों द्वारा एक किशोरी के साथ बलात्कार किया गया केस दर्ज हुआ। पर अभी तक विचाराधीन है क्योंकि साक्ष्य प्रस्तुत करने वाले यही कर्मचारी हैं और वाद का अन्त क्या होगा अधिकतर लोग जानते है। यहाँ के गाँव में पुरुष प्रतिकार के रूप में महिलाओं को निर्वस्त्र करना अपमान करना, किसी महिला को गंजा कर देना ये सारे वाद आयोग तक जाते है, आयोग राज्यों से पुष्टि मांगता है और मामले लंबे समय के लिए लम्बित हो जाते हैं। और अन्त में साक्ष्य तोड़ मरोड़ कर पेश किये जाते हैं। और दोषी व्यक्ति आसानी से बच निकलते हैं। पर आज जरूरत है दोषी व्यक्तियों को दण्ड दिया ही जाये अन्यथा की स्थिति में अपराधी व्यक्ति और अधिक से अधिक अपराध करने लगता है और उसे शासन व्यवस्था का कोई डर नहीं होता है, और समाज में अपराधों की संख्या बढ़ने का प्रमुख कारण यही है।

आज आवश्यकता है कि एक दूसरे के अधिकारों का सम्मान करते हुये, समाज में अधिकारों के प्रति जागरूकता लाकर एवं समाज का सहयोग लेकर मानवाधिकारों का हनन करने वालों के खिलाफ सख्ती से निपटा जाये। मानवाधिकार सम्बन्धी मुकदमों को (fast court) में निपटाया जाये और इनकी

जांच गैर सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर, उपर्युक्त अनवेषण कर्ताओं से करवानी चाहिए। जिससे सही परिणाम प्राप्त हो और अपराधी व्यक्ति को ही दण्ड मिले जिससे लोगों का न्याय व्यवस्था में विश्वास बढ़े तथा लोगों के अधिकारों की रक्षा हो।

हम अधिकारों के प्रति जागरूकता की बात करते हैं पर जागरूकता अशिक्षित समाज में असम्भव है, इसके लिए हमें बुन्देलखण्ड के सातों जिलों में शिक्षा का प्रतिशत बढ़ाना होगा। अन्यथा दिये गये समस्त अधिकार दिखावा मात्र साबित होंगे क्योंकि अशिक्षित व्यक्तियों के लिए अधिकारों का कोई महत्व नहीं होता। यहाँ शिक्षा का स्तर सबसे कम दलितों, पिछड़ी जातियों कमजोर वर्ग एवं अल्पसंख्यकों में ही है। सर्वाधिक उत्पीड़न एवं शोषण का शिकार भी यही लोग होते है। एमनेस्टी इण्टरनेशनल के अनुसार– हवालाती मौत में सर्वाधिक संख्या इन्हीं वर्गों के लोगों की होती है। मानवाधिकारों के उल्लघंन रोकने में सरकार की महत्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। विधिक एवं प्रशासनिक प्रणाली में सारभूत परिवर्तन किया जाना अपेक्षित है शासन को अपनी नीतियों का निर्माण एवं विधियों का अधिनियम इस तरीके से करना चाहिए कि व्यक्तियों के अधिकारों विशेष रूप से कमजोर समूहों एवं गरीबों के अधिकारों का अतिक्रमण न किया जा सके, तथा प्रशासन तंत्र को विधियों के क्रियान्वयन के लिए मजबूत एवं सक्षम होना चाहिए। ऐसा इसलिए है क्योंकि अकेले विधियों के अधिनियमन से ही लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं में सुधार नहीं हो पायेगा। वे स्वयं सामाजिक बुराइयों को समाप्त नहीं कर सकते। इसके प्रभावी होने के लिए, यह

अपेक्षित है कि उनमें ऐसे प्रशासन तन्त्रों द्वारा समर्थन किया जाना चाहिए जो उनका क्रियान्वयन एवं प्रवर्तन करने में सक्षम हो। बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार हनन के अनेक पहलू है जैसे भूमिहीन मजदूरों की समस्यायें, बंधुआ मजदूरों का आज भी इस अंचल में पाया जाना आदि।

हमें कागजी तौर पर ही नहीं वास्तविकता में उन्मूलन की दिशा में बढ़ना होगा। सरकारी और गैर सरकारी संगठनों से मिलकर खेती का सही रूप से बंटवारा करना होगा असहाय और निर्बल वर्ग के भोजन, वस्त्र, की व्यवस्था तो समाज एव सरकार को मिलकर करनी ही होगी। हमारी संस्कृति में है कि यदि पड़ोसी भूखा है तो हमें भरपेट खाने का अधिकार नहीं, जिन मानवीय मूल्यों को समाज भूलतः जा रहा है उन मूल्यों को समाज में विकसित करना होगा। जिससे बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की संस्कृति पनप सके। लोग अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुये दूसरों के अधिकारों का सम्मान कर सके। समाज, सरकारी, गैर सरकारी संगठनों को मिलजुल कर यहाँ मानवाधिकारों का संरक्षण करना होगा। एवं मानवाधिकारों का हनन करने वालों के खिलाफ (चाहे वह व्यक्ति हो या संस्था) सख्त कार्यवाही की जाये एवं समाज द्वारा उसे अपमानित किया जाये, पत्रकार एवं लेखकों को भी समाज में अपने लेखन के माध्यम से मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता जगानी होगी। जैसा कि मंजर अली (पी0 यू0 डी0 आर0 प्रमुख) के अनुसार समाज का सहयोग मानवाधिकारों के प्रति लड़ने वालों के लिए अस्त्र का काम करता है।

उच्चतम न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश **श्री ए0 एस0 आनन्द** के अनुसार–''यहाँ मानवाधिकारों के क्षेत्र में प्राथमिकता के विषय है– मातृत्व शिशु कल्याण बालश्रम मिटाना, बाल दुरुपयोग, अल्पसंख्यक व कमजोर वर्गो की रक्षा करना। जब तक अच्छे प्रशासन में यह मूलरूप से नहीं अपना लिये जाते, प्रगति संभव नहीं है या स्थिरता नहीं आ सकती, क्योंकि केवल आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती, जब तक मानव अधिकार के प्रति सम्मान की मूल भावना न हो। कानून एवं न्यायालयों एवं जजों के लिए अंतिम गरिमा की बात तब होगी जब वे किसी भी हमले से मानव अधिकारों की रक्षा करने में सफल होंगे।''[6]

इस प्रकार आज लोगों की बुनियादी जरुरतों को पूरा करने के लिए समाज एवं सरकार को आवश्यक कदम उठाने चाहिए। मानवाधिकारों से तात्पर्य सभी को मानवीय प्रतिष्ठा सुनिश्चित करने से है यानि हमें दूसरों से वही व्यवहार करना चाहिए जिस व्यवहार की हम उनसे उपेक्षा करते हैं। हम मानव अधिकार संस्कृति की रचना करे जिससे समाज के सभी वर्गो को समाज में उचित स्थान मिले। यद्यपि यह कोई आसान काम नहीं पर यदि हम पूर्ण विश्वास के साथ अपने अंदर मानव अधिकार की प्रेरणा जगाएं और सामाजिक अन्याय असमानता, गरीबी, बेरोजगारी, बालश्रम, पुलिस उत्पीड़न जैसी समस्याओं को समाप्त करने के लिए प्रेरणा विकसित करे तो समाज में मानवाधिकारों का संरक्षण किया जा सकता है।

---

[6] कैलाश नाथ गुप्त ''मानवाधिकार और उनकी रक्षा'' दिल्ली 2004 पृ0 20

अतः लोगों में अधिकारों के प्रति जन जाग्रति बढ़ाने के लिए समाज में समय–समय पर मानवाधिकारों से सम्बन्धित साहित्य बांटा जाये, एवं इस साहित्य को पत्र पत्रिकाओं, समाचार पत्र आदि में भी प्रकाशित कराया जाये। अन्य समाज सेवी संगठन, संस्थाओं को मिलकर अशिक्षित लोगों को नुक्कड़ नाटक आदि के द्वारा मानवाधिकारों की शिक्षा दी जा सकती है। मानवाधिकारों की रक्षा के लिए कार्य करने वालों, समाज सेवियो, संगठनों को सम्मान एवं समाज का सहयोग मिलना चाहिए। जैसा कि मंजर अली साहब का कहना है और उनका कहना है कि सामाजिक सहयोग ही मानवाधिकारों की लड़ाई लड़ने वालो के लिए अस्त्र का काम कर सकता है। श्री के0 पी0 सिंह (वरिष्ठ पत्रकार) के अनुसार पत्रकार तथा अनेक सामाजिक संगठनों, बुद्धिजीवियों का सहयोग भी यहाँ मानवाधिकारों के संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है।

जबकि आज राज्य मानवाधिकार आयोग तथा जिलों में मानव अधिकार न्यायालयों को स्थापित किया गया है जिससे कि मानवाधिकारों का बेहतर संरक्षण किया जा सके। प्रश्न उठता है कि क्या यह आयोग अधिकारों का संरक्षण करने में सफल रहे हैं या इनके द्वारा उन उद्देश्यों की पूर्ति हो पाई है जिसके लिए इनका गठन किया गया था। निःसन्देह राष्ट्रीय मानवअधिकार आयोग ने मानव अधिकार उल्लघंनों के हजारो परिवादों पर जांच की है तथा इसने मानव अधिकार उल्लघंनो के बहुत गम्भीर मामलों का अन्वेषण भी किया गया है; और सरकार को रिपोर्ट भी प्रस्तुत की है जिसमें इसने मानव अधिकार उल्लघंन में कमी लाने के लिए अपनाये जाने वाले उपायों का सुझाव देते हुये

बहुत सी सिफारिशे की है किन्तु आयोग मानव अधिकारों के संरक्षण करने में बहुत कम प्रभावी रहा है। ऐसा इसलिए क्योंकि आयोग केवल एक अन्वेषणात्मक एवं सिफारिशात्मक निकाय है। यह जांच करने के पश्चात समुचित प्राधिकारियों से ऐसे व्यक्ति के विरूद्ध कार्यवाही करने की सिफारिश करता है जिसने मानवाधिकारों का उल्लघंन किया हो अथवा यह सरकार या समुचित प्राधिकारियों से मानव अधिकार उल्लघंन से पीड़ित व्यक्तियों के लिए अंतरिम अनुतोष (Interim reflief) प्रदान करने के लिए कहता है।

अतः स्पष्ट है कि आयोग को अभियोजन (Prosecution) की शक्ति प्राप्त नहीं है और यह शक्ति साधनहीन है। यह संविधान के अन्तर्गत मूलाधिकारों द्वारा पहले से प्रावधानित उपचारों के अतिरिक्त किसी उपचार का प्रावधान नहीं करता। एकमात्र लाभ जो पीड़ित व्यक्ति को मिलता है वह यह है कि आयोग द्वारा अन्वेषण किये जाने के पश्चात यदि यह सुनिश्चित हो जाता है कि मानव अधिकारों का उल्लघंन हुआ है तो यह न्यायालयों से कार्यवाही प्रारम्भ करने की सिफारिश कर सकता है। उपर्युक्त प्रक्रिया मानव अधिकार उल्लघंन से पीड़ित व्यक्ति को कोई अतिरिक्त लाभ नहीं प्रदान करती। मेरा मानना है कि इसको अभियोजन की शक्ति प्राप्त होनी चाहिए और जिला स्तर पर जो मानवाधिकार न्यायालय है उनके द्वारा शीघ्रता के साथ इन वादो के निस्तारण का भी अधिकार होना चाहिए। और पुलिस प्रशासन द्वारा चुने हुये इसके अधिकारियों द्वारा ही अन्वेषण का कार्य भी होना चाहिए जिससे लोगों का इस पर विश्वास बढ़े एवं समाज में मानवाधिकारों का संरक्षण हो सके।

अतः राष्ट्रीय आयोग हो या राज्य आयोग अथवा कोई भी संस्था हो सच तो यही है कि वह कितनी भी प्रभावी क्यों न हो अभावग्रस्त लाखों लोगो के लिए भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाये प्रदान नहीं कर सकती और बुन्देलखण्ड में तो आधी आबादी अभावग्रस्त जीवन जी रही है। यहाँ शासन एवं समाज का कर्तव्य है कि वह मान्व गरिमा की अभिवृद्धि के लिए आवश्यक इन मूलभूत अधिकारों का प्रबंध करे। आयोग से केवल यह उपेक्षा की जाती ळै कि वह मानव अधिकार की संस्कृति का विकास करे। "मानव अधिकार संस्कृति की प्राप्ति सभी व्यक्तियों, बच्चों, व्यस्कों तथा अन्य व्यक्तियों को यह शिक्षा देकर की जा सकती है, कि मानव अधिकार क्या है और उनके सतत् संरक्षण के लिए क्या उपेक्षित है।"[7]

आयोग द्वारा पुलिस तथा न्यायिक अधिकारियों सहित प्रशासनिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए। मानव गरिमा एवं मूलभूत मानव अधिकारों को सुनिश्चित करने में पुलिस एवं जेल अधिकारियों की भूमिका का बहुत अधिक महत्व है। मानव अधिकार संरक्षण पुलिस एवं जेल प्राधिकारियों की गुणवत्ता पर बहुत कुछ निर्भर करते है। उन्हें आवश्यक रूप से प्रारम्भिक प्रशिक्षण तथा सेवा के दौरान समय–समय पर प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। व्यक्तियों के बीच सार्वजनिक चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए जब तक व्यक्तियों को चाहे वे प्रभावशाली वर्ग के हो या कमजोर वर्ग के इनके प्रवर्तन की कल्पना भी नहीं कर सकते। व्यक्तियों के बीच उनके मानव अधिकारों की

---

[7] डा0 एच0 ओ0 अग्रवाल "मानव अधिकार" इलाहाबाद, 2002 पृ0 127

चेतना जगाने के लिए यह वांछनीय है कि इसके पाठ्यक्रम प्राथमिक कक्षाओं से प्रारम्भ करके शिक्षा के सभी स्तरों पर प्रविष्ट किये जाये। मानव अधिकार का अध्ययन एक भिन्न विषय है इस विषय को विश्वविद्यालय में दाखिले के पहले के पाठ्यक्रमों में तथा विश्वविद्यालयों के स्नातक पाठ्यक्रमों में अनिवार्य बनाया जाना वांछनीय है। किसी विद्यार्थी के विषय में यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने अपने स्वयं के अधिकारों की उचित पृष्ठभूमि और चेतना के बिना अपनी शिक्षा पूरी कर ली है। अतः बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार अब अध्ययन अध्यापन के विषय के साथ ही हमारी आवश्यकता भी बन गयी है। सरकार द्वारा इनके संरक्षण के लिए अनेक प्रयास किये जा रहे है नागरिकों को अपने अधिकारों के लिए स्वयं आगे आना होगा।

यद्यपि कुछ वर्षो पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार शिक्षा दशक आरम्भ किया था। इसके पीछे उद्देश्य हर किसी को सरकारी, अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों लोक एवं निजी समूहों, व्यवसायिक संघों, स्कूलो, कालेजों तथा सामान्य जनता को मिलकर काम करने के लिए प्रोत्साहित करना था ताकि मानवाधिकारों को बेहतर तरीके से जाना और समझा जा सके और उसकी रक्षा हो सके। बुन्देलखण्ड में अनेक गैर सरकारी संगठन मानवाधिकारों के लिए काम कर रहे हैं। स्पष्ट है कि प्रशासन को उनके साथ अधिक निकटता से एवं सहयोग पूर्ण कार्य करना होगा। यदि यहाँ मानवाधिकारों के उल्लघंन के मामलों का विश्लेषण किया जाये तो परिणाम निकलता है कि जटिल राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और नैतिक कारक इसके लिए बहुत बड़ी

सीमा तक उत्तरदायी हैं। कई अन्य प्रचलित रुढ़ियों एवं अंधविश्वासों परम्पराओं में मानवाधिकार हनन के अंश छिपे हैं जो हमारी प्राचीन सामन्ती व्यवस्था की देन भी कहे जा सकते है।

संजय सिंह (निर्देशक परमार्थ सेवा संस्थान उरई) के अनुसार भी बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार हनन की पृष्ठभूमि में यहाँ की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ एवं सामन्तवादी व्यवस्था ही प्रमुख रूप से जिम्मेदार है, जिसने दलित एवं कमजोर लोगों को हमेशा अधिकारों से वंचित रखा है। इन वंचना के शिकार लोगों को उनके अधिकारों की कानूनी जानकारी देकर एवं उनमें जागरुकता के द्वारा इनके अधिकारों के हनन को रोका जा सकता है और सामाजिक तथा आर्थिक अधिकारों में उनकी उपलब्धता सुनिश्चित करनी होगी। मानवाधिकारों के हनन का शिकार लोगों को चिन्हित करके उनके साथ न्याय किया जाये तभी बुन्देलखण्ड का विकासपूर्ण हो सकता है। अन्यथा नहीं।

क्योंकि उ0 प्र0 एवं बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार हनन के मामले लगातार बढ़ते जा रहे हैं। बुन्देलखण्ड से राज्य मानवाधिकार आयोग में पंजीकृत मामले निम्नांकित हैं–

राज्य मानवाधिकार आयोग में बुन्देलखण्ड से पंजीकृत मामलों की सूची

विषय		**वर्ष**	
	2004–05	**2005–06**	**2007–08**
श्रम	2	7	3
स्वास्थ्य	4	2	3
न्यायपालिका	3	3	2
बालक	4	5	14

कारागार	3	15	28
महिला	39	64	69
माफिया / अपराध	38	9	2
विविध	206	254	318
पुलिस	229	183	254
सेवा के मामले	30	38	47
अनुसूचित जाति / जनजाति	33	24	27
साम्प्रदायिक	4	3	–"[8]
कुल	600	610	767

अधिकतर मामलों में यह संख्या बढ़ी ही है। जबकि कितने मामले आयोग तक जाते हैं ये बात हम सभी जानते हैं। इसी क्रम में उत्तर प्रदेश से राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग को प्राप्त मामले 2006–07 में 49000, 2005–06 में 44560 थे। जो दर्शाते हैं कि कानून व्यवस्था की क्या स्थिति है। उ0 प्र0 सबसे निर्धनतम राज्यों में से एक है। यहाँ सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि 2 : 6 से घटकर 1 : 2 प्रतिशत रह गई है पिछले 5 वर्षों में राज्य के कर्ज में दोगुना वृद्धि हुई है। कुल राजस्व प्राप्तियों का लगभग एक तिहाई भाग ब्याज अदायगी में जा रहा है जिसके कारण राज्य की अर्थव्यवस्था चरमरा गई है। निर्धन अधिक निर्धन एवं मध्यम वर्ग की स्थिति भी कुछ अच्छी नहीं है कमाल वेग (वकील) के अनुसार यहाँ विकास के लिए छोटे–छोटे कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है। जिससे अधिक से अधिक लोग रोजगार पा सके क्योंकि समाज के विकास के सरोकार लोगों के विकास के साथ जुड़े होते हैं। आर्थिक

[8] "राज्य मानवाधिकार आयोग की सूचनायें" 2005, 06, 07

रूप से सवल व्यक्ति ही अपने अधिकारों के प्रति जागरुक हो सकता है। सुश्री राजेन्द्री वर्मा (महिला आयोग सहायक निबन्धक) के अनुसार भी आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति ही अपने अधिकारों के लिए लड़ सकता है। अन्यथा की स्थिति में तो वह अपने दो वक्त के भोजन के लिए ही संघर्ष करता रहता है और मानवाधिकार उसके लिए कल्पना की उड़ान मात्र प्रतीत होते हैं।

यद्यपि मानव अधिकार ही ऐसे आदर्श है जिनसे स्वतन्त्र प्रजातांत्रिक समाज विकसित होता है। इन आदर्शों के विषय में सबको अवगत करना एवं जन–जागृति आवश्यक है। बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की पूर्ण प्राप्ति अभी दूर का स्वप्न है इसे आसानी से अथवा शीघ्रता से प्राप्त नहीं किया जा सकता। जबकि हाल के वर्षों में मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए उल्लेखनीय प्रयास दिखे हैं किन्तु यह ऊँट के मुंह में जीरा ही साबित हो रहे हैं और इनके बेहतर संरक्षण के लिए बहुत कुछ करना है। यद्यपि अशिक्षा, गरीबी, बेराजगारी, जनसंख्या वृद्धि और कानून व्यवस्था जैसी अन्य सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं ने मानव अधिकारों के महत्व को कम कर दिया है। फिर भी लोगों को उनके अधिकारों के प्रति सजग बनाने के लिए सभी प्रयासों के किये जाने की अपेक्षा की जाती है। मानव मूल्य एवं गरिमा की अभिवृद्धि के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति ही मानवाधिकार आंदोलन को निश्चित सफलता दिला सकती है क्योंकि लोग जितना अधिक अपने अधिकारों के विषय में जानेंगे उतना ही वे दूसरे के अधिकारों का आदर करेंगे।
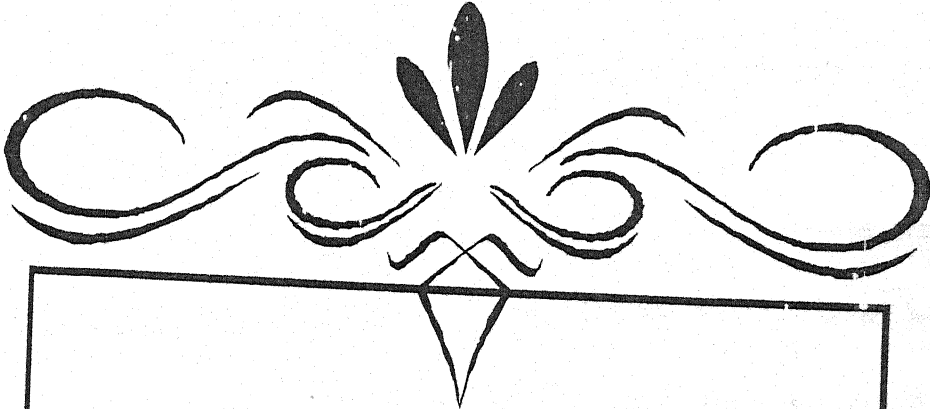
अतः बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के विषय में अधिक से अधिक शिक्षित होने पर ही मानवाधिकारों के हनन को रोका जा सकता है। मानव अधिकारों की अभिवृद्धि करने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य है कि वास्तविक स्थितियों व्यवहारिक समस्याओं एवं वास्तविक व्यवधानों का अध्ययन किया जाये और उन कुरीतियों, रूढ़ियों को समाज से खत्म करने का प्रयास किया जाये जो मानवाधिकार हनन के लिए उत्तरदायी है। बुन्देलखण्ड में व्याप्त सामन्तवादी व्यवस्था (प्रवृत्ति) वर्गीय असमानता, शिक्षा की कमी मानवाधिकारों का एक विषय के रूप में अनिवार्य न होना तथा आर्थिक असमानता को समाज से मिटाना होगा। पुलिस प्रशासनिक अधिकारियों के चरित्र निर्माण एवं सहयोग के बिना ये समस्यायें कम होनी कठिन है। बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के संरक्षण का कार्य कानून के द्वारा उतना नहीं हो सकता जितना सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने से होगा। शिक्षा तथा जनसूचना ही मानवाधिकार प्राप्ति में सहायक का कार्य करेंगे। और बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के भविष्य को सुरक्षित कर सकेंगे।

प्रत्येक गाँव, ब्लॉक जिला स्तर पर मानवाधिकार समितियाँ गठित की जाये जिसमें प्रत्येक जाति धर्म के लोग सदस्य हो जो बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों का हनन करने वालो को दण्ड दिलवाने में शोषितों की मदद करे। अन्यथा की स्थिति में प्रत्येक जगह अपराध व्याप्त होगें क्योंकि मनुष्य एक भिन्न प्राणी है वह अपनी ही प्रजाति के दूसरे सदस्य के सामने बहुत अधिक समय तक असहाय नहीं रह सकता। वह विद्रोह करेगा और अपनी सहज
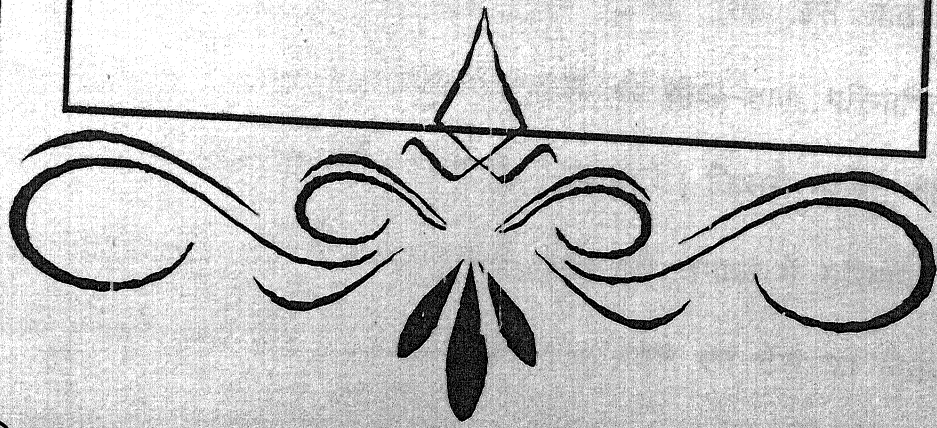
नियति प्राप्त करके रहेगा यही मनुष्यता का इतिहास और उसका भविष्य है। अतः मानव अधिकारों के विकास को किसी भी तरह रोका नहीं जा सकता। सच तो यह है कि मानव अधिकारों के सम्पूर्ण परिपाक के बिना मानव का पूर्ण विकास असम्भव है।

"मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा को अंगीकार करने के पचास साल बाद आज दुनिया अमीर और गरीब विकसित और विकासशील, धन धान्य की असीम प्रचुरता और विदारक निपट दरिद्रता में बढ़ी हुई है। यदि घोषणा की भावना को बनाये रखना है और इसके हितकारी मिशन को पूरा करना है तो इन असमानताओं को न्यूनतम करते हुये अंततः समाप्त करने की कोशिश करनी होगी। यदि इन लक्षणों को जिन्हें विश्व ने पचास वर्ष पूर्व तय किया था, उनकी सम्पूर्णता को पूरा करता है तो हमें एक नई अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था बनानी होगी और उसे अंगीकार करना होगा। आइये विश्व भर के व्यक्तियों के इस अन्तर्राष्ट्रीय मैगनाकार्टा को उसके शाब्दिक व व्यवहारिक रूप में क्रियान्वित करें।"[9]

---

[9] अटल विहार बाजपेयी, "मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के प्रति भारत वचनवद्ध" वि0 द0 प्र0 नि0 सूचना और प्रसारण मंत्रालय का पैमपलेट।

अध्याय- सप्तम्

उपसंहार

उपसंहार

मानव अधिकारों का जन्म पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही हुआ, क्योंकि इन अधिकारों के बिना वह न तो गरिमा के साथ जीवनयापन कर सकता था और न सभ्यता तथा संस्कृति का विकास। सामान्यता मानव अधिकार वे अधिकार हैं जो व्यक्ति को जन्म के बाद से प्राप्त होते हैं एवं व्यक्ति की नैसर्गिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हुये सम्मानपूर्ण सहज एवं सुलभतापूर्ण जीवन देने की गारंटी प्रदान करते हैं। यदि इन अधिकारों को प्रदान करने में समाज, राज्य, व्यक्ति अवरोध उत्पन्न करते हैं तो यहीं से मानवाधिकार हनन की प्रकिया प्रारम्भ होती है। और समाज में मानवाधिकार हनन की प्रक्रिया पृथ्वी पर मनुष्य के विकास के साथ ही प्रारम्भ हुई थी।

कोई भी काल रहा हो सबल व्यक्तियों द्वारा निर्बल व्यक्तियों का शोषण सदा ही व्याप्त रहा है। क्योंकि शक्तिशाली व्यक्ति या समूह दूसरों का शोषण करके ही अपना वर्चस्व बनाये रख सकते थे। पिछले पाँच हजार सालों में इस वर्चस्व का रूप बदलता रहा है। यद्यपि दूसरी तरफ इस बात की भी आवश्यकता प्रतीत हुई कि मानव अधिकारों को ठीक–ठाक परिभाषित किया जाये तथा उनके संरक्षण के उपाय भी किये जायें। जिससे व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपने मूल अधिकारों का उपभोग करते हुये समाज में गरिमामय जीवन व्यतीत कर सके। और अपने–अपने क्षेत्र क्षेत्र, प्रदेश एवं देश का विकास कर सके। क्योंकि आज भी हमारे देश का नाम मानव विकास सूचकांक में 128वाँ है

एवं 28 राज्य तथा 7 केन्द्रशाषित प्रदेशों में उत्तर प्रदेश का स्थान सबसे अधिक पिछड़े राज्यों की श्रेणी में आता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र उ0 प्र0 के सबसे पिछड़े क्षेत्रों में अपना स्थान रखता है। कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण यहाँ आज भी सामन्ती प्रवृत्तियाँ समाज में निहित हैं जिसके कारण समाज में घोर अन्याय, अत्याचार एवं शोषण के रोज नये आयाम देखने, सुनने एवं पढ़ने को मिलते रहते हैं जबकि बुन्देली संस्कृति सैद्धान्तिक रूप से मूल्यों, आदर्शों व सिद्धान्तों की संस्कृति मानी जाती है "परोपकाराय सतां विभूतया" का गुणगान करने वाली संस्कृति मानी जाती है। यद्यपि इसमें व्यवहारिक रूप से दुराव, दुराग्रह, कठोरता, कटुता, कृपणता, क्रूरता के भाव छिपे हैं जो सामाजिक आर्थिक असमानता के पोषक रहे हैं जिसके कारण आदिकाल से ही किसी न किसी रूप में मानव का शोषण होता रहा है। शोषण तथा अत्याचार का शिकार होने वालों में अधिकतर अशिक्षित, आर्थिक रूप से कमजोर, अनुसूचित जाति एवं पिछड़े वर्गों के लोग होते हैं। बुन्देलखण्ड में एक तिहाई जनसंख्या इन्हीं जातियों की है जो प्राचीन काल से दबे कुचले एवं उत्पीड़ित होते रहे हैं और इनमें 50 प्रतिशत लोग आज भी मानवाधिकारों के विषय में अनभिज्ञ हैं, अधिकार यहाँ केवल सबल व्यक्तियों को ही मिलते रहे हैं जबकि निर्बलों को अधिकार केवल नाम मात्र के लिए दिये जाते रहे है, क्योंकि उनके अधिकारों का हनन राज्य, समाज या उससे निकली संस्थायें, सरकारी कर्मचारी या व्यक्तिगत रूप से लगातार जारी है।

हम सब जानते है कि अधिकारों से मानव कल्याण सदैव होता रहा है और सदैव होता रहेगा। आज जबकि अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय भी मानवाधिकारों के प्रति सजग हो गया है और मानवाधिकारों से व्यक्ति, समाज, राज्य एवं विश्व कल्याण की अपेक्षा की जा रही है तो अधिकारों का क्षेत्र राष्ट्रीय विषय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय विषय हो गया है। किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में कोई ऐसी संस्था नहीं है जो मानव अधिकारों को अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रभावी ढंग से लागू कर सके। यह अन्तर्राष्ट्रीय विधि के संस्थात्मक पक्ष पर बहुत बड़ी कमजोरी है। अनेक मूर्धन्य विधि वेत्ताओं ने इस विषय पर दीर्घकाल से विचार किया परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय विधि के संस्थात्मक पक्ष को समर्थ नहीं बना पाये।

तब 1970 में राष्ट्रों में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के गठन को सहमति प्राप्त हुई और अनेक राज्यों में मानवाधिकार संरक्षण के लिए राष्ट्रीय संस्था सृजित करने की बात कही गई, पर राज्यों की सहमति न होने के कारण इसका गठन न हो सका। तब 1993 के मानवाधिकार विश्व सम्मेलन में इसके महत्व को समझा कर कहा गया, कि राष्ट्रीय संरचना, संस्थायें समाज के अंगो को सबल करने के लिए तथा मानव अधिकारों की अभिवृद्धि और संरक्षण करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान करेंगी। और आज मानवाधिकारों की जो स्थिति है वह व्यक्तियों के राज्य की महती शक्ति के विरूद्ध सदियों के संघर्ष का परिणाम है। आज यह माना जा रहा है कि निरंकुश व्यक्तियों तथा राज्यों पर मानवाधिकारों से ही अंकुश लगाया जा सकता है। मानव अधिकार वास्तव मे

हमारे नैसर्गिक अधिकार है जिनके बिना हम अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास नहीं कर सकते और न ही गरिमामय जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

विश्व के सभी धर्मों का आधार मानवतावाद है जिसकी अन्तर्वस्तु में भेद होने के बावजूद भी सभी धर्म मानव अधिकारों का समर्थन करते हैं। मानव अधिकारों की जड़ें प्राकृतिक यूनानी तथा रोमन विधियों में भी पाई जाती है तथा मानवाधिकारों की अवधारणा की उत्पत्ति ग्रीक, रोमन प्राकृतिक विधि के स्टोयसिज्म के सिद्धान्तों से ही मानी जाती है जिसमें कहा गया कि सार्वभौमिक शक्ति सभी जीवों पर व्याप्त है और इसीलिए मानव आचरण प्राकृतिक विधि के अनुसार होना चाहिए। 1215 के प्रसिद्ध मैग्नाकार्टा में सामन्तों को सम्राट के निरंकुश कृत्यों के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किये गये। इसके विस्तार के साथ सभी नागरिक 1689 के बिल आफ राइटस में इसकी परिधि में आ गये तथा पेटिशन आफ राइटस, वियना संधि, वर्जीनिया बिल आफ राइट्स, अमेरिका की स्वतन्तत्रता की घोषणा, 1789 की फ्रांसीसी घोषणा में मानवाधिकारों को ही मान्यता और संरक्षण प्रदान किये गये।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय में मानवाधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत हुई और राष्ट्रसंघ की प्रसंविदा तैयार की गई पर यह किसी व्यक्ति विशेष के अधिकार नहीं माने गये बल्कि यह समुदाय या अंश को प्रदान किये गये यह सारी प्रक्रिया अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के अभाव में निरर्थक साबित हुई और विश्व को द्वितीय विश्वयुद्ध की भयंकर त्रासदी झेलनी पड़ी। तब द्वितीय

विश्वयुद्ध के पश्चात 1945 के सेनफ्रांसिसको सम्मेलन में मानवाधिकारों पर विस्तृत चर्चा हुई और 1946 में एलीनर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में मानवाधिकार आयोग का गठन किया गया। 10 दिसम्बर 1948 को महासभा ने इसे घोषित किया। 1950 में 10 दिसम्बर को मानवाधिकार दिवस घोषित करने का प्रस्ताव पारित किया गया। मानवाधिकारों को सही रूप से कार्यान्वित करने के लिये दो प्रसंविदायें नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार प्रसंविदा तथा आर्थिक सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकार प्रसंविदा तैयार की गई और 12 वर्षो के अध्ययन एवं संशोधनों के बाद महासभा ने इसे अंगीकार कर लिया। और इस घोषणा को शांति की आधारशिला के रूप में माना तथा सभी मनुष्यों की गरिमा, समानता तथा अहरणीय अधिकारों को मान्यता देने की सिफारिश पक्षकार राज्यों से की गई। इस घोषणा में 30 अनुच्छेद है जिसमें सभी समुदाय और व्यक्तियों के स्वाभाविक अधिकार चिन्हित कर उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया–

1. **आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकार।**
2. **राजनीतिक और नागरिक अधिकार।**
3. **नस्लीय भेदभाव का विरोध।**
4. **स्त्रियों के साथ भेदभाव का विरोध।**
5. **जाति संहार के विरूद्ध।**
6. **विवाहित स्त्रियों की राष्ट्रीयता।**
7. **अल्संख्यकों के अधिकार।**
8. **विदेशियों और शरणार्थियों के अधिकार।**
9. **बच्चों के अधिकार।**
10. **पिछड़े लोगों के अधिकार।**

ये प्रसंविदायें सभी अनुसमर्थक राज्यों पर वैध रूप से आबद्धकर हैं। भारत ने इन सबका पक्षकार बनके विश्व जनमत को दिखा दिया कि हमारी

संस्कृति में इन सब अधिकारों के प्रति हमेशा से सम्मान रहा है पर मात्र इनका पक्षकार बनकर मानवाधिकारों के हनन को नहीं रोका जा सकता। आज मानवाधिकारों को विश्व स्तर पर सामाजिक जागरूकता से जोड़ना होगा। क्योंकि राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय संगठन विश्व भर में इसे रोकने में असमर्थ रहे हैं। चाहे वह विकसित राज्यों द्वारा, अविकसित या विकासशील राज्यों पर किये जा रहे अत्याचार के मामले हो या राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर पर मानवाधिकार हनन के मामले। प्रत्येक स्तर पर सबल के द्वारा निर्बलों के मानवाधिकारों का हनन परिलक्षित हो रहा है, जबकि प्रत्येक पक्षकार राज्य अपनी विधियों में मानवाधिकारों का समावेश करना नहीं भूलते। परन्तु जितने अधिक प्रयास अधिकार देने के किये जा रहे है उनका उतना ही हनन समाज में दृष्टिगोचर हो रहा है। जबकि हमारा संविधान मानवाधिकारों को आत्मसात किये हुये है।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा भारतीय संविधान निर्माताओं के लिए प्रेरणा स्रोत रही है और भारतीय संविधान में मूल अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्वों में इनकी व्यवस्था की गई है। और यह यहाँ के शासकों को संविधान के नियमों के अनुरूप चलने एवं इसका उपयोग जनहित में करने का आदेश देता है। और सभी नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय तथा विचार अभिव्यक्ति, धर्म उपासना की स्वतन्त्रता एवं व्यक्ति की गरिमा आदि मानवीय मूल्यों का उल्लेख भी संविधान करता है तथा इन आदर्शों को प्राप्त करने के लिए संविधान प्रस्तावना, भाग तीन और चार में प्रवर्तन तंत्र की

व्यवस्था भी करता है। मूल अधिकार तथा नीति निर्देशक तत्व ही हमारे संविधान की अन्तरात्मा का सृजन करते हैं।

मानवाधिकारों के संरक्षण के लिए 18 दिसम्बर 1993 को मानवाधिकार संरक्षण विधेयक पारित किया गया और राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात 8 जनवरी 1994 को उक्त विधेयक अधिनियम बन गया, जिसे मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, राज्य मानवाधिकार आयोग तथा प्रत्येक जिले में मानवाधिकार न्यायालयों का प्रावधान करना था। जिससे देश में प्रत्येक स्थान पर मानवाधिकारों का संरक्षण किया जा सके। अतः "सर्वोच्च न्यायालय ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा के निर्वाचनात्मक मूल्य को स्वीकार किया और भारतीय बनाम केरल राज्य के मामले में कहा गया कि "भारत ने सार्वभौम घोषणा के स्वरूप को समझा है और संविधान में अंगीकृत किया है।"[1] इसके उपरान्त किये गये अनेक वादों के निस्तारण में मानवाधिकारों की व्याख्या की गई अब मानवाधिकार आज हमारी नीति का एक हिस्सा बन चुका है और अधिकतर कानून निर्माण में मानवाधिकारों का हवाला अवश्य ही दिया जाता है। पर वास्तविकता कुछ और ही है अधिकारों से लाभ शक्तिशाली या साधन सम्पन्न व्यक्ति ही उठा पाता है एक भूखे व्यक्ति के लिए अधिकारों का कोई

---

[1] डा० उपाध्याय, "मानव अधिकार" इलाहाबाद 2002 पृ० 167

महत्व नहीं होता क्योंकि उसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता पेट भर भोजन की है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में प्रत्येक वर्ष भूख एवं तंगहाली से मरने वालों की संख्या लगातार बढ़ रही है। क्योंकि आर्थिक एवं सामाजिक अधिकारों की उपलब्धि से ही सिविल और राजनैतिक अधिकार लोगों के लिए महत्वपूर्ण हो सकते हैं अन्यथा ये दिखावा मात्र ही प्रतीत होते हैं। केवल मानवाधिकारों में आस्था मात्र से मानवाधिकारों में अभिवृद्धि नहीं की जा सकती क्योंकि राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग में प्राप्त वादों की संख्या "2003–04 में 72990, 2004–05 में 74401, 2005–06 में 74444 थी।"[2] जो दर्शाती है कि मानवाधिकार हनन के मामले लगातार बढ़ते ही जा रहे हैं और प्राप्त वादों की संख्या में सर्वाधिक मामले उ0 प्र0 से ही प्राप्त होते है। 2005–06 में प्राप्त वादों की संख्या में सर्वाधिक वाद 44560 केवल उ0 प्र0 से ही थे और राज्य मानवाधिकार आयोग को 11683 वाद अलग प्राप्त हुये थे। बुन्देलखण्ड में तो मानवाधिकार हनन के मामले भयावह रूप धारण कर चुके है प्रत्येक स्थान पर शोषण एवं अत्याचार परिलक्षित हो रहा है। चाहे जातिगत अत्याचार हो या महिला उत्पीड़न, बालश्रम या पुलिस द्वारा उत्पीड़न, बंधुआ मजदूरी या आर्थिक शोषण या असमान लैंगिक अनुपात की स्थिति बुन्देलखण्ड में सभी पूरी तरह व्याप्त है और इसी भीषण संकट के बीच मनुष्यता खड़ी–खड़ी सिसक रही है। जबकि प्राप्त मानवाधिकारों

---

[2] वार्षिक रिपोर्ट, 2005–06 "राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग" दिल्ली

की संख्या इतनी अधिक है कि उनकी आसानी से गिनती कर पाना भी कठिन है।

अधिकारों में रोज वृद्धि की जा रही है फिर भी मानवाधिकारों का हनन जारी है। अधिकारों के हनन का प्रमुख कारण अशिक्षा है। बुन्देलखण्ड के इन सातों जिलों में साक्षरता 49.93 प्रतिशत से 66.69 प्रतिशत तक है और ललितपुर में सबसे कम महिला साक्षरता 33 प्रतिशत तक है। अतः आधी आबादी आज भी अशिक्षित है और मजदूरी तथा अन्य निम्न कार्य करने के लिए बाध्य है एवं इनके बच्चे भी बाल श्रमिक के रूप में या कूड़े के ढेरों में कूड़ा बीन कर नारकीय जीवन जी रहे हैं दूसरी और यहाँ अघोषित सामन्तवादी वर्ग है जो रजशी जीवन व्यतीत कर रहा है जिसे कानून व्यवस्था से कोई डर नहीं है और वह दूसरों के शोषण करने को ही अपना अधिकार समझता है और वही परिदृश्य सामने आता है कि प्रभावशाली और साधन सम्पन्न व्यक्ति साधारण व्यक्ति पर भारी दिखाई देता है। व्यवहारिक रूप से यही प्रतीत होता है कि न्याय करने वाला जैसे स्वयं अन्याय करने के लिए बैठा है। बुन्देलखण्ड में यह स्थिति प्राचीन समय से व्याप्त है क्योंकि यहाँ कुरूक्षेत्र की स्थिति बनी रहने के कारण प्रायः युद्ध होते रहे हैं जिससे यह क्षेत्र विकास के प्रतिमानों में पिछड़ता चला गया। इसे 650 वर्ष पूर्व गौंडवाना के नाम से भी जाना जाता था यहाँ अनेक प्रतापी राजा हुये जिन्होंने बुन्देलखण्ड के सम्मान को बढ़ाया। आल्हा ऊदल, वीर सिंह जूदेव, छत्रसाल, चम्पतराय, लाला हरदौल आदि धरती पुत्रों ने मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए अपना पूरा जीवन युद्ध में झोंक दिया जिसके कारण ये यहाँ

के जन–जन में अमर हो गये। परन्तु उस समय भी यहाँ वर्ण व्यवस्था के नाम पर अन्याय एवं उत्पीड़न व्याप्त था।

समाज में शीर्ष स्थान पर सवर्णों का राज था। धर्म इनके हाथों में पड़कर अन्याय, शोषण का उपकरण मात्र बनकर रह गया था। क्षत्रियों की स्थिति अशिक्षित और जातीय अहंकार में डूबे लोगों की थी यह दरबारियों से घिरे रहते थे। महिलाओं को वस्तुओं की तरह प्रयोग किया जाता था कन्याओं को जन्मते ही मार देने की प्रथा व्याप्त थी कन्या संख्या में अत्यधिक कमी के कारण उ0 प्र0 के ही 4900 गाँव को अंग्रेजों के समय में ही अति संवेदनशील घोषित किया गया था जिससे यहाँ महिलाओं की संख्या बढ़ाई जा सके। एक अन्य वर्ग व्यापारियों का था जो केवल लक्ष्मी के लिए ही जिन्दा था और सबसे निम्न स्थान शूद्रों को प्राप्त था जो पूरी तरह अशिक्षित संस्कृति विहीन पिछड़ी मानसिकता में डूबा अन्याय तथा अत्याचार की चक्की में पीसा जा रहा था और पशुतुल्य जीवन जीने को मजबूर था।

1857 के स्वतन्त्रता संग्राम में बुन्देलखण्ड के लोगों की अधिक भागीदारी के कारण भी

अंग्रेज शासकों ने इन्हें दण्ड, विकास के प्रतिमानों में पीछे रख कर दिया और दमनकारी नीति के चलते यहाँ के कुटीर उद्योगों को खत्म कर दिया गया, जिससे यहाँ निम्न तबके की स्थिति और भयावह होती चली गई और ये सामन्तों के यहाँ मजदूरी या बंधुआ मजदूरी करने पर मजबूर हो गये। और इन

जिलों में मानवाधिकारों की स्थिति और दयनीय होती चली गई। स्वतन्त्रता के पश्चात भी इस क्षेत्र पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम दृष्टिगत है आज यह विकास के प्रतिमानों में उ0 प्र0 के सर्वाधिक पिछड़े क्षेत्रों में आता है।

भौगोलिक जटिलता भी सके पिछड़ेपन का एक कारण है पानी की समस्या के कारण यहां खून तक हो जाते हैं। भूख से मरने वालों की खबरें बराबर छपती रहती हैं दहेज के कारण मरने वाली महिलाओं की संख्या लगातार बढ़ रही है। औसतन 3 से 4 महिलायें प्रतिदिन दहेज हत्या का शिकार होती हैं। महिलाओं के साथ अपहरण, बलात्कार अन्य अवांछित अपराधों में भी लगातार वृद्धि दर्ज की जा रही है। दलित महिलाओं के साथ और भी बदत्तर व्यवहार किया जाता है। सर्वाधिक यौन उत्पीड़न का शिकार अधिकतर इन्हीं जातियों की महिलायें होती हैं। बुन्देलखण्ड के जिला जालौन में महिला उत्पीड़न के पिछले तीन वर्ष के मामलों की संख्या क्रमशः "2004–121, 2005–113, 2006 में 164"[3] थीं। अन्य छः जिलों में भी महिला उत्पीड़न का ग्राफ बढा है। अपवाद वर्षों को छोड़कर प्रतिवर्ष यह संख्या बढ़ती ही जा रही है। बड़ी विडम्बना है कि एक ओर महिलाओं की राजनीति में सहभागिता की बात की जा रही है तथा दूसरी ओर महिलायों को स्वतन्त्र इकाई के रूप में परिवार, समाज और व्यवस्था तक ने स्वीकार नहीं किया है। जबकि आज भी यहाँ सदियों पहले स्थापित हुई रूढ़ि और परम्परायें स्त्रियों को कहीं जला रही है, कहीं जन्म से पूर्व हत्या की जा रही है, तो कहीं अस्मिता का तमाशा बनाया

जा रहा है। विशेष बात तो यह है कि हमारा समाज सभी धर्मों रीति–रिवाजों को उदारतापूर्वक स्वीकार करने वाला है, वही स्त्रियों के प्रति सर्वदा अनुदार बना रहा है जबकि "समाज का दो तिहाई कार्य महिलाओं द्वारा ही किया जाता है।"[4] तब भी महिलायें पराधीनता का जीवन व्यतीत कर रही है। आज सभी समुदाय नारी उत्थान के लिए आशावादी है किन्तु पारम्परिक मानसिकता, धर्मान्धता, अशिक्षा तथा पुरूष की अधिशासी अहंकारी हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ सब बाधा बनी है इन बाधाओं को सामाजिक जागरूकता लाकर ही दूर किया जा सकता है आज नारी को शिक्षित होकर स्वावलम्बी बनना ही होगा। अन्यथा पुरूष उसे वस्तु तुल्य समझ कर उसका शोषण करता ही रहेगा।

बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के हनन से सम्बन्धित एक अन्य पहलू यहाँ वर्णवादी व्यवस्था है जिसके चलते यहाँ प्रारम्भ से ही निम्न वर्गो को शिक्षा से वंचित रखा गया। और यही वर्ग आज सबसे निर्बल एवं कमजोर वर्ग है अधिकतर मजदूर, बंधुआ मजदूर इन्हीं वर्गों में पाये जाते हैं यह मात्र पेट भर भोजन के लिए दिन रात शोषित होते रहते हैं। मामूली से अपराध के कारण इन्हें मारना, पीटना, हत्या कर देना, महिलाओं को निर्वस्त्र कर देना, जिंदा जला देना, पत्थर मार–मार कर मार देना, निम्न वर्ग के व्यक्ति से विवाह के कारण हत्यायें आम बात है अपराधी तो अपराधी है पर प्रसंगवश निम्न वर्ग या जाति का है तो यहाँ का वर्गवादी समाज उन्हें और भी घृणा से देखता है। महिला तो

---

[3] वास्तविक अपराध आंकड़े "पुलिस विभाग" उरई जालौन
[4] नई चेतना "सामाजार्थिक विकास और महिलायें" लखनऊ 2008

महिला है पर दलित है तो उसके प्रति वहशीपन कुछ ज्यादा ही कहर बरपाता है और ये घटनायें यहाँ आये दिन घटित होती रहती हैं। आजादी के साठ वर्षों के बाद भी यहाँ जातिगत आधार पर मानवाधिकारों का हनन जारी है जिसने विकास की सारी प्रक्रियाओं का मजाक बनाकर रख दिया है। और यहाँ की सामन्तवादी व्यवस्था निम्न वर्ग के लोगों को पशुवत मानते हुये उनके मानवाधिकारों के पूर्णतः विरूद्ध है।

बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों की लड़ाई सिर्फ कानूनी, राजनीतिक या आर्थिक तरीके से नहीं लड़ी जा सकती, लड़ाई तो उससे लड़ी जाती है जो दृश्य हो या आमने सामने हो यहाँ एक और शत्रु भी है जो अदृश्य है, छुपा है शस्त्र व शास्त्रों में बिखरा पड़ा है, संस्थाओं में स्थाई रूप से शरणागत है प्रथा, परम्पराओं तथा अभिसमयों में घुला–मिला है। अतः यहाँ इस खतरनाक शत्रु से भी मानवाधिकारों की रक्षा करनी होगी और चिन्तन में ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा, परलोक नहीं बल्कि मानव को केन्द्र बिन्दु बनाना होगा। महात्मा बुद्ध ने मनुष्य को स्वयं का दीपक बनने की प्रेरणा दी और दुःखों से मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया, 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' का नारा देकर मानवाधिकार के उत्कृष्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। समाज में मानवाधिकारों की सही रूप में प्राप्ति तभी सम्भव है जब मानव जीवन से सभी प्रकार के दुःखों का अन्त हो और सभी को मूल आवश्यकताओं की प्राप्ति हो तथा वर्ण, जाति, वर्ग, भेद समाप्त किया जाये।

बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के हनन का एक कारण अत्यधिक निर्धनता है और निर्धनता का कारण यहां फैली बेरोजगारी है। बेरोजगारी का मूल कारण इस क्षेत्र में तेजी से बढ़ती हुई जनसंख्या है। आज भारत की जनसंख्या एक अरब के आंकड़े को पार कर चुकी है जबकि आजादी के समय यह 33 करोड़ थी। लेकिन अब 40 करोड़ लोग तो गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। बुन्देलखण्ड की जनसंख्या 82,32,071 है जो उ0 प्र0 की जनसंख्या का पाँचवा हिस्सा है आधी जनसंख्या निर्धन, निरक्षर है तथा विकास में पिछड़ी है। बुन्देलखण्ड के विकास की वर्तमान औद्योगीकरण के प्रारम्भिक दौर में आशा बनी थी कि नई र्अव्यवस्था से लोगों के रहन सहन का फर्क मिटेगा और लोग अत्यधिक अभाव की स्थिति में नहीं रहेंगे, तथा उन्हें समान अधिकार प्राप्त होंगे। परन्तु औद्योगीकरण वर्तमान में चरमोत्कर्ष पर है क्योंकि एक तरफ थोड़े से लोगों के लिए अनेक साधन उपलब्ध हो रहे है वही दूसरी तरफ मशीनीकरण से अधिक लोग बेरोजगार हो रहे हैं और उन्हें पेट भर भोजन मिलना भी मुश्किल हो रहा है तथा छोटे उद्योगों का विनाश होता जा रहा है। और पूंजी कुछ हाथों में केन्द्रित होती जा रही है। परन्तु अर्थशास्त्री की दृष्टि "मानव की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं पर नहीं वरन् क्रय शक्ति पर रहती है भूखे अथवा निर्धन की अपेक्षा पेट भरे व सम्पन्न की चिन्ता वहाँ ज्यादा की जाती है। फलतः जहाँ सम्पन्न की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नानाविध वस्तुओं का उत्पादन

किया जाता है वहीं साधनहीन के लिए जीवन निर्वाह की आवश्यकताओं का भी अभाव बढ़ जाता है।"[5]

आज समाज दो भागों में बंटता जा रहा है जहाँ कुछ लोगों के पास आजीविका, जीवन और विचार की स्वतन्त्रता का अधिकार होगा और बाकी लोग अजीविका के अभाव में जीवन के अधिकार से वंचित होंगे। और अधिकतर गांवों तथा शहरों में यही स्थिति परिलक्षित है एक ओर अवशेष रूप में बची सामन्ती व्यवस्था है तथा दूसरी ओर मजदूर वर्ग है जो दासतापूर्ण जीवन जीने को मजबूर है। यहाँ गरीबी के कारण बाल श्रमिकों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है बाल श्रमिक यहाँ के जिलों में प्रत्येक चौथी दुकान में देखे जा सकते हैं, इनकी संख्या निश्चित कर पानी भी कठिन है। गरीबी और अशिक्षा के कारण यहाँ माता पिता अपने बच्चों से काम कराने को मजबूर हैं और इस अंचल में बाल श्रमिकों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है। बेरोजगारी के कारण अपराधों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। आये दिन यहाँ डाकुओं के द्वारा अपहरण एवं हत्या की घटनायें अंजाम दी जाती है। पुलिस किसी अपराधी को पकड़ने के लिए पूरे–पूरे गाँव तहस नहस कर डालती है। प्रतिवर्ष मुठभेड़ की वारदातें 70, 80 तक हो जाती है।

पुलिस की कार्यप्रणाली से अपराधियों का काम जनसामान्य का उत्पीड़न अधिक होता है। पुलिस यहां रक्षक का कम भक्षक की भूमिका अधिक निभाती है। यहां आये दिन पुलिस अभिरक्षा में यातनायें देना, बिना लिखा पढ़ी के

---

[5] दीनदयाल उपाध्याय "अर्थ रचना में व्यक्ति एकात्म मानववाद" जाग्रति प्रकाशन, नोएडा, 1991 पृ0 77

चौबीस घंटे से अधिक अपनी अभिरक्षा में रखना, सूचना रिपोर्ट का अंकन न करना या गलत अंकन करना, बन्दी को गिरफ्तारी के कारण न बताना, फर्जी मुठभेड़ दिखाकर हत्या करना। जिला झांसी में ही क्रमशः 2005 में 73, 2006 में 78 इसी तरह जालौन में 2003 में 80 मामले पुलिस मुठभेड़ के थे। अधिकतर बुद्धिजीवियों के अनुसार ये मामले फर्जी होते हैं अभिरक्षा में मृत्यु भी यहाँ घटित होती रहती है। तथा न्यायालय में पेशी करने आये अपराधी श्यामजी डीहा को कुछ लोग पुलिस के ही सामने गोली मार देते हैं। हरिश्चन्द्र पाल की पुलिस कस्टडी कुठौंद मे मृत्यु हो जाती है। जबकि वह कोई अपराधी भी नहीं था। जेल के अपराधियों में आपस में लड़ाई होने पर एक व्यक्ति मारा जाता है ये केस दर्शाते हैं कि पुलिस का लोगों के प्रति व्यवहार क्या रहता है। और अधिकतर जनसामान्य पुलिस में जाने से बचना चाहता है क्योंकि अधिकतर लोग मानते है कि गरीब एवं निर्बल की तो रिपोर्ट दर्ज ही कम होती है जबकि अमीर एवं शक्ति सम्पन्न लोगों की झूठी रिपोर्ट भी दर्ज हो जाती है। यहां भी न्याय प्रशासन के दो मुखोटे निरुपित होते हैं क्योंकि कानून के समक्ष सभी को समानता की गारंटी दी गई है लेकिन दुर्भाग्य से हमारी व्यवस्था ऐसी है कि कानून द्वारा सुरक्षा प्राप्त करने के लिए भी अच्छी आर्थिक सामर्थ्य का होना आवश्यक है जहाँ तक यहां न्यायिक व्यवस्था का आंकलन है इसका परिदृश्य उत्साहवर्द्धक न रहकर बहुत ही निराशावादी रहा है क्योंकि आज भी भारत के न्यायालयों में 3 करोड़ से अधिक वाद विचाराधीन हैं।

प्रक्रिया प्रधान न्याय व्यवस्था में न्याय का उद्देश्य गौण होकर रह गया है। न्यायविद कहते हैं, न्याय होता है पर कब होता है? इसकी निश्चितता क्या है ? इन बिंदुओं पर ही विधि की सार्थकता निर्भर करती है। विधि कितनी ही प्रभावी हो किन्तु पालन प्रक्रिया जितनी दुरुह व लम्बी होगी विधि उतनी ही अप्रभावी होगी। और बुन्देलखण्ड में तो यह व्यवस्था वास्तव में अप्रभावी होकर रह गई है। क्योंकि जहाँ विधि सौद्देश्य न हो और प्रक्रियात्मक जटिलताओं का काला नाग न्याय की यमुना में समरसता के कृष्ण को निगलना चाहता हो वहाँ क्या होगा ? आज विधिक क्षेत्र में भी अपराध निर्बाध गति से बढ़ रहे हैं। अहिंसा के पुजारी बुद्ध, सिंह रूप उद्घोषक दयानन्द, विवेकानन्द, नैतिकता के आदर्श गांधी और जवाहर के देश में ये कैसी अन्यायप्रियता पनप रही है क्यों विधि विधान विवश है जहाँ गौ की माँ रूप में पूजा की जाती है वहाँ भ्रूण हत्याओं पर कोई प्रतिक्रिया क्यों नहीं होती ? प्रत्येक स्थान पर शोषण का ताण्डव। कहाँ गया न्याय से रक्षण का भाव क्यों नहीं आती लज्जा अंधी वीनस को न्याय की देवी मानते हुये। या इसे भी अन्य व्यवस्थाओं की तरह भ्रष्टाचार का घुन अन्दर से खोखला बना रहा है एवं पूरे समाज में शोषण एवं अत्याचार व्याप्त होता जा रहा है लाखों लोगों के मानवाधिकारों का हनन राज्य, राज्य से निकली संस्थायें या व्यक्तिगत रूप से अवाध गति से जारी है।

मेरा मानना है कि बुन्देलखण्ड में मानव अधिकारों का उल्लघंन उसी समय रोका जा सकता है जब यहाँ लोगों में मानव गरिमा एवं मानव मूल्यों की

अभिवृद्धि के लिए दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संकल्प हो, समाज के लोगों में अधिकारों के प्रति जागरूकता भी बहुत आवश्यक है। यद्यपि यहाँ सैद्धान्तिक रूप से प्राचीन मानवीय मूल्यों का बहुत महत्व रहा है और हम मानवाधिकार अभिसमयों के पक्षकार देश के नागरिक है फिर भी प्रदत्त अधिकार यहाँ इतनी बड़ी जनसंख्या के लिए उनकी निर्धनता, अनभिज्ञता एवं अशिक्षा के कारण अर्थहीन है। आश्चर्यजनक बात यह है कि कतिपय अधिकारों का उल्लघंन सामन्तों द्वारा, वहुधा पुलिस, जेल एवं प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा किया जाता है क्योंकि मानव गरिमा के प्रति उनका दृष्टिकोण सकारात्मक नहीं रहा है। अधिकांश मामलों में व्यक्तिगत लाभ के विचार ने सभी नैतिक, नीतिशास्त्रीय एवं मानव मूल्यों का अतिक्रमण कर दिया है।

बुन्देलखण्ड में मानवाधिकार समितियाँ प्रत्येक जिले में गठित की जाये और वह सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे, इन समितियों में समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों का प्रतिनिधित्व हो। इन समितियों में इसके अतिरिक्त बुन्देलखण्ड में न्यायधीशों का भी यह कर्तव्य है कि वे अभिसमय के प्रावधानों से इस तथ्य की दृष्टि से स्वयं को सुपरिचित कर लें। कि वे व्यक्तियों के मूलभूत एवं अन्तर्निहित अधिकारों को धारण करते है उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे अभिसमयों के प्रावधानों का प्रयोग अपने स्वयं की पहल पर करें चाहे भले ही पक्षकारों ने इनका आश्रय न लिया हो। और अधिवक्ताओं को भी मानव अधिकारों के बढ़ते हुये अन्तर्राष्ट्रीय विधिशास्त्र से विशेष रूप से मानव अधिकारों

के संरक्षण एवं अभिवृद्धि पर विस्तृत सामग्री से सुपरिचित रहना होगा वे तभी यहाँ मानवाधिकारों को सहेज सकेंगे।

उच्चतम न्यायालय के अनुसार– "एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य को सताया जाना इस बात का प्रतीक है कि शक्तिशाली व्यक्ति अपनी इच्छा को कमजोर व्यक्ति पर लादना चाहता है। आज की कार्य संस्कृति मानव सभ्यता के अंधेरे पक्ष से जुड़ गई है और इसे प्रकाशित करने का कार्य न्यायालयों को करना होगा।"[6] उन्हें मानवाधिकार सम्बन्धी प्रकरणों को fast court में निपटाना चाहिए, जिससे लोगों का न्याय व्यवस्था में विश्वास अटूट हो एवं मानव मूल आवश्यकताओं को पूरा करते हुये सम्मान पूर्ण जीवन जी सके। परन्तु अकेले विधियों के अधिनियमन से ही लोगों की सामाजिक एवं आर्थिक दशाओं में सुधार नहीं हो सकता। इसके लिये प्रशासनतंत्र को विधियों के क्रियान्वयन के लिये मजबूत एवं सक्षम होना होगा। एवं अपनी नीतियों का निर्माण एवं विधियों का अधिनियमन इस तरह से करना चाहिए कि व्यक्तियों के अधिकारों विशेष रूप से कमजोर समूहों एवं गरीबों के अधिकारों का अतिक्रमण न किया जा सके। अब पुलिस को अपनी छवि मानव अधिकारों के रक्षक के रूप में विकसित करनी होगी उनके व्यवहार एवं सोच में परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्हें सामान्य जन को अपने स्थान पर रखकर सोचना होगा जिससे लोगों में उनके प्रति विश्वास जाग्रत हो। पुलिस थानों में कानूनी सलाहकार की नियुक्ति, कानूनी पुलिस तथा अन्वेषण पुलिस को अलग किया जाना तथा इनके लिए विशेष

प्रशिक्षण, थानों का औचक निरीक्षण जिससे गलत हिरासत कार्य व अमानवीय कार्य रोके जा सके। मानव अधिकार संरक्षण हेतु हॉट लाइन अभियान, जन जाग्रति संगोष्ठिया, मीडिया व प्रेस का सहयोग अन्य सामाजिक संगठनो का सहयोग, अन्वेषण व प्रकाशन केन्द्रों की स्थापना, मानव अधिकारों से सम्बन्धित निर्णयों का प्रसारण आदि कुछ महत्वपूर्ण कदम भविष्य में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु आवश्यक है।

बुन्देलखण्ड में मानवाधिकारों के उल्लघंन को रोकने के लिए सरकार को और भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी, क्योंकि यहाँ लाखों लोगों के पास आज भी न तो खाने को भोजन है और न नग्न तन ढकने को कपड़े और न रहने के लिए घर ये कहना उचित होगा कि वे घोर दरिद्रता की स्थिति में मानव से बदतर दशाओं में जीवन जी रहे है। स्वास्थ्य, शिक्षा, जनसंख्या जैसी और अनेक समस्यायें भी चिन्ताजनक स्थिति में है। यहाँ नागरिकों के अधिकांश भाग को प्रदत्त जीवन की गुणवत्ता अत्यधिक सोचनीय है। क्योंकि निर्धनता और साधन विहीनता के रहते किसी भी प्रकार के मानव अधिकार का अस्तित्व नहीं हो सकता। उन्हें काम, स्वास्थ्य की देखरेख, एवं शिक्षा जैसी न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं तक उपलब्ध नहीं है जब तक उनकी इन आवश्यकताओं की पर्याप्त रूप से पूर्ति नहीं हो जाती तब तक अन्य अधिकारों की बात करना मात्र पाखण्ड ही होगा। सर्वप्रथम आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति यहाँ

---

[6] नई दिशाएं ''राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग'' दिल्ली 2007, पृ0 37

अति आवश्यक कार्य है क्योंकि जब तक वे गरीब, अनभिज्ञ एवं अशिक्षित है तब तक संविधान में प्रदत्त कतिपय अधिकार कमोबेस रूप में असंगत ही है।

अतः बुन्देलखण्ड के लोगों में कर्तव्य बोध जाग्रत करते हुये मानवाधिकारों के प्रति चेतना एवं जागरूकता लानी ही होगी। मानव अधिकारों की प्राप्ति के माध्यम से नारों एवं वास्तविकता के बीच की खाई को पाटना होगा। उन लोगों द्वारा पूरे संकल्प एवं साहस से प्रयास करना होगा जो लोगों की आर्थिक एवं सामाजिक दशाओं के उत्थान एवं मानव गरिमा तथा सम्मान की अभिवृद्धि के लिए देश पर शासन करते है। वे इसका प्रत्युत्तर किस रूप में देंगे ? यह एक ऐसा मामला है जिसका विनिश्चय उन्हें स्वयं करना होगा। किन्तु अत्यधिक विलम्ब होने के पूर्व उन्हें कोई न कोई रास्ता निकालना होगा। उन्हें इस बात के प्रति सचेत होना चाहिए कि गांधी जी के 'वर्गविहीन समाज' (Classless Society) के सपने की वास्तविकता को साकार किये बिना और सीमा के भीतर रहने वाले सभी लोगों के कल्याण के बिना शांति स्थायित्व एवं मानवाधिकारों की प्राप्ति असम्भव है।

अतः बुन्देलखण्ड में प्रो० नजमी के विचारों को मान्यता देनी ही होगी। उनके मतानुसार– "मानवाधिकार आज केवल मानवतावादी अवधारणा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह मानव समुदाय के नागरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों के संरक्षण का संवैधानिक उपचार है। आज प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि देश की सम्पत्ति का समान बटवारा हो,

जात–पात, बंधनों एवं ऊँच–नीच से मुक्ति मिले और साम्प्रदायिकता एवं धर्मांधता को जड़ से उखाड़ फेंका जाये। देशवासियों की गरीबी अज्ञानता, असमानता समाप्त की जाये। सरकार का प्रमुख कार्य नागरिकों की आँखों के आँसू, पोंछकर उन्हें गरिमामय जीवन गुजारने के लिए लगातार प्रयास करना हो। एवं मानव आकांक्षाओं के अनुरूप समाज को स्वस्थ शरीर भोजन, आवास एवं सुशिक्षा सुलभ कराना हो, तभी सही मायने में मानव अधिकारों का संरक्षण हो सकता है।"[7]

खुद बदल जायेगा सब कुछ सोचना बेकार है,
सब बदल देने की अब शुरूआत करनी चाहिए।

[7] प्रो0 नजमी "मानवाधिकार और उनकी रक्षा" दिल्ली, 2004 पृ0 27
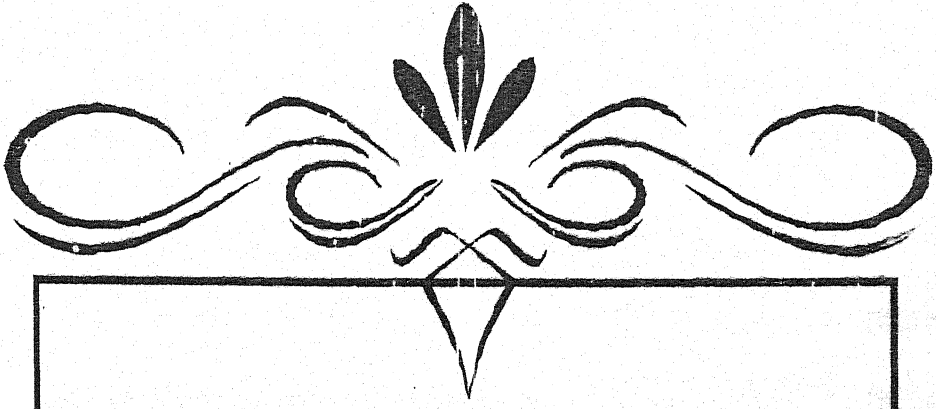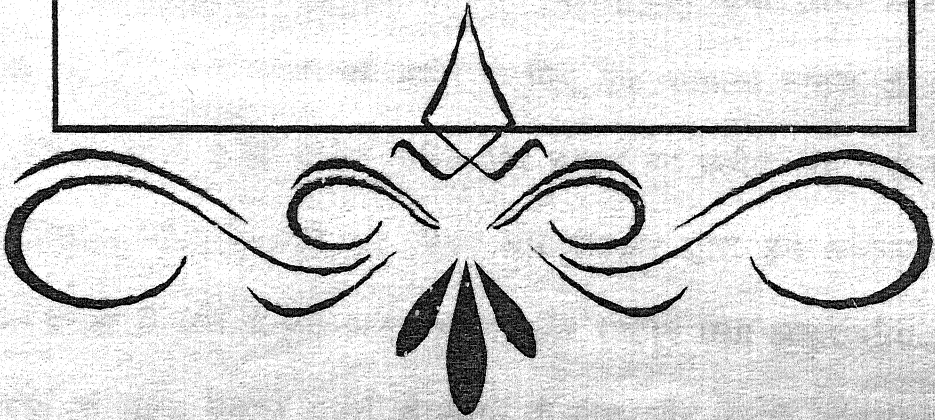
परिशिष्ट

परिशिष्ट—1

उद्देशिका :

मानव परिवार के सभी सदस्यों की अंतर्निहित गरिमा और समान तथ अभेद्य अधिकार विश्व में स्वतंत्रता, न्याय और शांति के आधार हैं। यदि मनुष्य को अत्याचार और उत्पीड़न के विरूद्ध अंतिम अस्त्र के रूप में विद्रोह का अवलंब लेने के लिए विवश्ज्ञ नहीं किया जाना है तो यह आवश्यक है कि मानव अधिकारों का संरक्षण विधिसम्मत शासन द्वारा किया जाना चाहिए। यह कि राष्ट्रों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों के विकास की वृद्धि करना आवश्यक है, संयुक्त राष्ट्र के लोगों ने वार्टर में मूल मानव अधिकारों में मानव देह की गरिमा और महत्व तथा पुरूषों और स्त्रियों के समान अधिकारों में अपने विश्वास की पुनः पुष्टि की है और सामाजिक प्रगति करने तथा अधिकाधिक स्वतंत्रता के साथ उत्कृष्ट जीवन स्तर की प्राप्ति का निर्णय किया है।

मानव अधिकारों की इस सार्वभौम घोषणा को सभी लोगों और सभी राष्ट्रों के लिए इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एक सामान्य मानक के रूप में उद्घोषित करती है कि प्रत्येक व्यक्ति और समाज का प्रत्येक अंग, इस घोषणा को निरंतर ध्यान में रखते हुए, शिक्षा और संस्कार द्वारा इन अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रति सम्मान जागृत करेगा और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रगामी उपायों के द्वारा, सदस्य राज्यों के लोगों के बीच और उनकी अधिकारिता के

अधीन राज्यक्षेत्रों के लोगों के बीच इन अधिकारों की विश्वव्यापी और प्रभावी मान्यता और उनके पालन को सुनिश्चित करने के लिए प्रयास करेगा।

अनुच्छेद–1 सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतंत्र और समान है। उन्हें बुद्धि और अंतश्चेतना प्रदान की गई है। उन्हें परस्पर भ्रातृत्व की भावना से कार्य करना चाहिए।

अनुच्छेद–2 प्रत्येक व्यक्ति इस घोषणा में उपवर्णित सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का हकदार है, इसमें मूलवंश, वर्ण, लिंग, भाषा, धर्म, राजनीतिक या अन्य विचार, राष्ट्रीय या सामाजिक उद्भव, संपत्ति, जन्म या अन्य प्रास्थिति के आधार पर कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

इसके अतिरिक्त, किसी देश या राज्यक्षेत्र की चाहे वह स्वाधीन हो, न्यास के अधीन हो, अस्वशासी हो या प्रभुता पर किसी मर्यादा के अधीन हो राजनीतिक, अधिकारिता–विषयक या अन्तर्राष्ट्रीय प्रास्थिति के आधार पर उस देश या राज्यक्षेत्र के किसी व्यक्ति से कोई विभेद नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–3 प्रत्येक व्यक्ति को प्राण, स्वतंत्रता, और दैहिक सुरक्षा का अधिकार है।

अनुच्छेद–4 किसी भी व्यक्ति को दास या गुलाम नहीं रखा जाएगा; सभी प्रकार की दासता और दास व्यापार प्रतिषिद्ध होगा।

अनुच्छेद–5 किसी भी व्यक्ति को यंत्रणा नहीं दी जाएगी या उसके साथ क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार नहीं किया जाएगा या उसे ऐसा दंड नहीं दिया जाएगा।

अनुच्छेद–6 प्रत्येक व्यक्ति को सर्वत्र विधि के समक्ष व्यक्ति के रूप में मान्यता का अधिकार है।

अनुच्छेद–7 सभी व्यक्ति को सर्वत्र विधि के समक्ष समान हैं और किसी विभेद के बिना विधि के समान संरक्षण के हकदार है। सभी व्यक्ति इस घोषणा के अतिक्रमण में विभेद के विरूद्ध और ऐसे उद्दीपन के विरूद्ध समान संरक्षण के हकदार हैं।

अनुच्छेद–8 प्रत्येक व्यक्ति को संदिधान या विधि द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का अतिक्रमण करने वाले कार्यों के विरूद्ध सक्षम राष्ट्रीय अधिकरणों द्वारा प्रभावी उपचार का अधिकार है।

अनुच्छेद–9 किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से गिरफ्तार, निरूद्ध या निर्वासित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–10 प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों और बाध्यताओं के और उसके विरूद्ध आपराधिक आरोप के अवधारण में पूर्णतया समान रूप में स्वतंत्र और निष्क्ष अधिकरण द्वारा ऋजु और सार्वजनिक सुनवाई का हकदार है।

अनुच्छेद–11

(1) ऐसे प्रत्येक व्यक्ति को जिस पर दांडिक अपराध का आरोप है, यह अधिकार है कि उसे तब तक निरपराध माना जाएगा जब तक कि उसे लोक विचारण में, जिसमें उसे अपनी प्रतिरक्षा के लिए आवश्यक सभी गारंटियां प्राप्त हों, विधि के अनुसार दोषी साबित नहीं कर दिया जाता।

(2) किसी भी व्यक्ति को किसी ऐसे कार्य या लोप के कारण, जो किए जाने के समय राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अधीन दांडिक अपराध नहीं था, किसी दांडिक अपराध का दोषी अभिनिर्धारित नहीं किया जाएगा। उस शास्ति से अधिक शास्ति अधिरोपित नहीं की जाएगी जो उस समय लागू थी जब अपराध किया गया था।

अनुच्छेद–12 किसी भी व्यक्ति को एकांतता, कुटुम्ब, घर या पत्र–व्यवहार के साथ मनमाना हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा और उसके समान और ख्याति पर प्रहार नहीं किया जाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे हस्तक्षेप या प्रहार के विरूद्ध विधि के सरंक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद–13

(1) प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक राज्य की सीमाओं के भीतर संचरण और निवास की स्वतंत्रता का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को, अपने देश को या किसी देश को छोड़ने और अपने देश में वापस आने का अधिकार है।

अनुच्छेद–14

(1) प्रत्येक व्यक्ति को उत्पीड़न के कारण अन्य देशों में शरण मांगने और लेने का अधिकार है।

(2) इस अधिकार का अवलंब अराजनैतिक अपराधों या संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों और सिद्धान्तों के प्रतिकूल कार्यों से वास्तविक रूप से उद्भूत अभियोजनों की दशा में नहीं लिया जा सकेगा।

अनुच्छेद–15

(1) प्रत्येक व्यक्ति को राष्ट्रिकता का अधिकार है।

(2) किसी भी व्यक्ति को मनमाने ढंग से न तो उसकी राष्ट्रिकता से और न राष्ट्रिकता परिवर्तित करने के अधिकार से वंचित किया जाएगा।

अनुच्छेद–16

(1) वयस्क पुरूषों और स्त्रियों को मूलवंश, राष्ट्रिकता या धर्म के कारण किसी भी सीमा के बिना, विवाह करने और कुटुम्ब स्थापित करने का अधिकार है। वे विवाह के विषय में, विवाहित जीवनकाल में और उसके विघटन पर समान अधिकारों के हकदार हैं।

(2) विवाह के इच्छुक पक्षकारों की स्वतंत्र और पूर्ण सम्मति से ही विवाह किया जाएगा।

(3) कुटुम्ब समाज की नैसर्गिक और प्राथमिक सामाजिक इकाई है और इसे समाज और राज्य संरक्षण का हकदार है।

अनुच्छेद–17

(1) प्रत्येक व्यक्ति को विचार, अंतःकरण और धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार है, इस अधिकार के अन्तर्गत अपने धर्म या विश्वास को परिवर्तित करने की स्वतंत्रता

और अकेले या अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर तथा सार्वजनिक रूप से या अकेले शिक्षा, व्यवहार, पूजा और पालन में अपने धर्म या विश्वास को प्रकट करने की स्वतंत्रता भी है।

अनुच्छेद–19

प्रत्येक व्यक्ति को अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार है, इस अधिकार के अन्तर्गत हस्तक्षेप के बिना अभिमत रखने और किसी भी संचार माध्यम से और सीमाओं का विचार किए बिना जानकारी मांगने, प्राप्त करने और देने की स्वतंत्रता भी है।

अनुच्छेद–20

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शान्तिपूर्वक सम्मेलन और संगम की स्वतंत्रता का अधिकार है।

(2) किसी भी व्यक्ति को किसी संगम में सम्मिलित होने के लिए विवश नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–21

(1) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की सरकार में, सीधे या स्वतंत्रतापूर्वक चुने गए प्रतिनिधियों के माध्यम से, भाग लेने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को अपने देश की लोकसेवा में पहुंच का अधिकार है।

(3) लोकमत सरकार के प्राधिकार का आधार होगा; इसकी अभिव्यक्ति आवधिक और वास्तविक निर्वाचनों में होगी, जो सार्वभौम और समान मताधिकार द्वारा होंगे और गुप्त मतदान द्वारा या समतुल्य स्वतंत्र मतदान की प्रक्रिया द्वारा किए जाएंगे।

अनुच्छेद–22

प्रत्येक व्यक्ति को, समाज के सदस्य के रूप में सामाजिक सुरक्षा का अधिकार है और वह राष्ट्रीय प्रयास और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से और प्रत्येक राज्य के गठन और संसाधनों के अनुसार, ऐसे आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों को प्राप्त करने का हकदार है जो उसकी गरिमा और उसके व्यक्तित्व के उन्मुक्त विकास के लिए अनिवार्य है।

अनुच्छेद–23

(1) प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का, नियोजन के स्वतंत्र चयन का, कार्य की न्यायोचित और अनुकूल दशाओं का और बेरोजगारी के विरूद्ध संरक्षण का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को, किसी विभेद के बिना, समान कार्य के लिए समान वेतन का अधिकार है।

(3) प्रत्येक व्यक्ति को, जो कार्य करता है, ऐसे न्यायोचित और अनुकूल पारिश्रमिक का अधिकार है जिससे स्वयं उसका और उसके कुटुम्ब का मानव गरिमा के अनुरूप जीवन सुनिश्चित हो जाए और यदि आवश्यक हो तो, सामाजिक संरक्षण के अन्य साधनों द्वारा उसे अनुपूरित किया जाए।

(4) प्रत्येक व्यक्ति को अपने हितों के संरक्षण के लिए व्यवसाय संघ बनाने और उनमें सम्मिलित होने का अधिकार है।

अनुच्छेद–24

प्रत्येक व्यक्ति को विश्राम और अवकाश का अधिकार है जिसके अन्तर्गत कार्य के घंटों की युक्तियुक्त सीमा और वेतन सहित आवधिक छुट्टियाँ भी हैं।

अनुच्छेद–25

(1) प्रत्येक व्यक्ति को ऐसे जीवन स्तर का अधिकार है जो स्वयं उसके और उसके कुटुम्ब के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए पर्याप्त है, जिसके अन्तर्गत भोजन, वस्त्र, मकान और चिकित्सा तथा आवश्यक सामाजिक सेवाएं भी हैं, और बेराजगारी, रुग्णता, अशक्तता, वैधव्य, वृद्धावस्था या उसके नियंत्रण के बाहर परिस्थितियों में जीवनयापन के अभाव की दशा में सुधार का अधिकार है।

(2) मातृत्व और बाल्यकाल विशेष देखभाल और सहायता के हकदार हैं। सभी बच्चे, चाहे उनका जन्म विवाहित जीवनकाल में हुआ हो या अन्यथा, समान सामाजिक संरक्षण प्राप्त करेंगे।

अनुच्छेद–26

(1) प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा का अधिकार है। कम से कम प्राथमिक और मौलिक स्तर पर शिक्षा निःशुल्क होगी। प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य होगी। तकनीकी और वृत्तिक शिक्षा साधारणतः उपलब्ध कराई जाएगी और उच्च शिक्षा, सभी व्यक्तियों को गुणागुण के आधार पर समान रूप से प्राप्य होगी।

(2) शिक्षा का लक्ष्य मानव व्यक्तित्व का पूर्ण विकास और मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के प्रति आदर की वृद्धि होगी। यह सभी राष्ट्रों, मूलवंश विषयक या धार्मिक समूहों के बीच समादर, सहिष्णुता और मैत्री की अनुवृद्धि के लिए उदिष्ट होगी और शान्ति बनाये रखने के लिए संयुक्त राष्ट्र के कार्यकलापों को अग्रसर करेगी।

(3) माता–पिता को यह चयन करने का पूर्णाधिकार है कि उनकी संतान को किस प्रकार की शिक्षा दी जाएगी।

अनुच्छेद–27

(1) प्रत्येक व्यक्ति को समुदाय के सांस्कृतिक जीवन में युक्त रूप में भाग लेने, कलाओं का आनन्द लेने और वैज्ञानिक प्रगति और उसके फायदों में हिस्सा प्राप्त करने का अधिकार है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति को स्वनिर्मित वैज्ञानिक, साहित्यिक या कलात्मक कृति के परिणामस्वरूप होने वाले नैतिक और भौतिक हितों के संरक्षण का अधिकार है।

अनुच्छेद–28

प्रत्येक व्यक्ति ऐसी सामाजिक और अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का हकदार है जिसमें इस घोषणा में वर्णित अधिकारों और स्वतंत्रताओं को पूर्ण रूप से प्राप्त किया जा सकता है।

अनुच्छेद–29

(1) प्रत्येक व्यक्ति के उस समुदाय के प्रति कर्तव्य है, जिसमें उसके व्यक्तित्व का उन्मुक्त और पूर्ण विकास संभव है।

(2) प्रत्येक व्यक्ति पर अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं के प्रयोग में वहीं मर्यादाएं लगाई जाएंगी जो अन्य व्यक्तियों के अधिकारों और स्वतंत्रताओं की सम्यक् मान्यता और सम्मान सुनिष्चित करने और प्रजातंत्रात्मक समाज में नैतिकता, लोक व्यवस्था और साधारण कल्याण की न्यायोचित अपेक्षाओं को पूरा करने के प्रयोजन के लिए विधि द्वारा अवधारित की गई है।

(3) किसी भी दशा में इन अधिकारों, स्वतंत्रताओं का संयुक्त राष्ट्र के प्रयोजनों और सिद्धान्तों के प्रतिकूल प्रयोग नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद–30

इस घोषणा की किसी बात का यह निर्वचन नहीं किया जाएगा कि उसमें किसी राज्य, समूह या व्यक्ति के लिए कोई ऐसा कार्यकलाप या कोई ऐसा कार्य करने का अधिकार विवक्षित है जिसका लक्ष्य इसमें उपवर्णित अधिकारों और स्वतंत्रताओं में से किसी का विनाश करना है।

परिशिष्ट–2

मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993

मानव अधिकारों के अधिक अच्छे संरक्षण के लिए तथा उससे सम्वद्ध या उससे आनुषंगिक मामलों के लिए राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्य मानव अधिकार आयोग एवं मानव अधिकार न्यायालयों के गठन हेतु प्रावधान करने के लिए अधिनियम।

भारत गणतंत्र राज्य के चवालिसवें वर्ष में संसद द्वारा निम्न प्रकार अधिनियमित किया गया–

राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग का गठन– (1) भारत सरकार राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग के रूप में जानी जाने वाली एक संस्था का, इस अधिनियम के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, तथा उसे समनुदेशित कार्यों को निष्पादित करने के लिए गठन करेगी।

(2) आयोग निम्न होंगे–

(क) अध्यक्ष जो उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायमूर्ति है।

(ख) एक सदस्य, जो उच्चतम न्यायालय का सदस्य है, या सदस्य रहा है।

(ग) एक सदस्य, जो उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधीश है, या मुख्य न्यायाधीश रहा है।

(घ) दो सदस्य जिनकी नियुक्ति उन व्यक्तियों में से की जाएगी जिन्हें मानव अधिकारों से सम्बन्धित मामलों का ज्ञान हो, या उसमें व्यवहारिक अनुभव हो।

(3) अल्पसंख्यकों के लिए राष्ट्रीय आयोग, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के लिए राष्ट्रीय आयोग एवं महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्षों को धारा 12 के खण्डों (ख) से (ज) में विनिर्दिष्ट कार्यों के निर्वहन के लिए आयोग के सदस्य समझा जायेगा।

(4) एक महासचिव होगा जो आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा तथा वह आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग एवं ऐसे कार्यों का निर्वहन करेगा जो वह उसे प्रत्यायोजित करेगा।

(5) आयोग का मुख्य कार्यालय दिल्ली में होगा तथा आयोग भारत सरकार की पूर्व अनुमति से, भारत में अन्य स्थानों पर कार्यालय स्थापित करेगा।

4. अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति– (1) अध्यक्ष एवं सदस्यों को राष्ट्रपति द्वारा अपने हस्ताक्षर एवं मुद्रा सहित अधिपत्र द्वारा नियुक्त किया जाएगा, परन्तु यह कि इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्त समिति की, जिसमें निम्न होंगे, सिफारिशें प्राप्त करने के वाद की जाएगी–

(क)	प्रधानमंत्री	अध्यक्ष
(ख)	लोकसभा का अध्यक्ष	सदस्य
(ग)	भारत सरकार में गृह मंत्रालय का मंत्री प्रभारी	सदस्य
(घ)	लोकसभा में विपक्ष का नेता	सदस्य
(ङ)	राज्यसभा में विपक्ष का नेता	सदस्य
(च)	राज्य सभा का उपसभापति	सदस्य

परन्तु यह और कि उच्चतम न्यायालय को कोई आसीन न्यायाधीष या उच्च न्यायालय का आसीन मुख्य न्यायाधीश, भारत के मुख्य न्यायमूति से परामर्श करने के बाद अलावा नियुक्त नहीं किया जाएगा।

(2) अध्यक्ष या सदस्य की कोई नियुक्ति केवल समिति में कोई रिक्ति होने के कारण अमान्य नहीं होगी।

5. आयोग के सदस्य या हटाया जाना– (1) उपधारा (2) के उपबंधों के अध्यधीन रहते हुए, आयोग का अध्यक्ष या किसी सदस्य को उसके पद से, राष्ट्रपति के आदेश द्वारा, उनके उच्चतम न्यायालय को निर्देश दिए जाने पर, उच्चतम न्यायालय के द्वारा उस समबन्ध में विहित प्रक्रिया के अनुसार की गयी जांच पर यह रिपोर्ट देने के बाद कि अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य, यथास्थिति, को किसी ऐसे सिद्ध कदाचार या अक्षमता के आधार पर हटाया जाना चाहिए, हटाया जाएगा।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को आदेश द्वारा पद से हटा देगा, यदि अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य, यथास्थिति–

(क) दिवालिया न्यायनिर्णीत कर दिया गया है।

(ख) अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी वैतनिक रोजगार में अपने कार्यकाल में लगता है।

(ग) मस्तिष्क या शरीर की दुर्बलता के कारण पद पर बने रहने के लिए अयोग्य है।

(घ) विकृतचित्त का है एवं सक्षम न्यायालय द्वारा इस प्रकार घोषित कर दिया है।

(ङ) किसी अपराध के लिए जो राष्ट्रपति की राय में नैतिक पतन वाला है, सिद्ध दोष हो गया है एवं उसे कारागार की सजा दे दी गई है।

6. सदस्यों की पदावधि– (1) अध्यक्ष के रूप में नियुक्त व्यक्ति उस दिनांक से जिसको वह अपने पद पर प्रवेश करेगा, पांच वर्ष की अवधि के लिए या जब तक वह सत्तर वर्ष की आयु का नहीं होगा, इनमें जो भी पूर्व में हो, पद को धारित करेगा।

7. कुछ परिस्थितियों में सदस्य द्वारा अध्यक्ष के रूप में कार्य करना या उसके कार्यों का निर्वहन करना– (1) अध्यक्ष की मृत्यु होने, त्याग पत्र देने के कारण या अन्यथा प्रकार से उसका पद रिक्त होने की दशा में,

राष्ट्रपति, अधिसूचना द्वारा, सदस्यों में से किसी एक को अध्यक्ष के रूप में कार्य करने के लिए, उस रिक्ति को भरने के लिए नये अध्यक्ष की नियुक्त किए जाने तक के लिए, प्राधिकृत करेगा।

आयोग के कृत्य एवं शक्तियाँ :

आयोग के कृत्य– आयोग निम्नलिखित सभी या किन्हीं कृत्यों का निष्पादन करेगा, अर्थात्– (क) स्वप्रेरणा से या किसी पीड़ित या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा उसे प्रस्तुत याचिका पर,

(1) मानव अधिकारों के उल्लघंन या उसके अपशमन की।

(2) किसी लोक सेवक द्वारा उस उल्लघंन को रोकने में उपेक्षा की शिकायत की जाँच करेगा।

(ख) किसी न्यायालय के समक्ष लम्बित मानव अधिकारों के उल्लघंन के किसी अभिकथन वाली किसी कार्रवाई में उस न्यायालय की अनुमति से हस्तक्षेप करेगा।

(ग) राज्य सरकार को सूचना देने के अध्यधीन, राज्य सरकार के नियंत्रणाधीन किसी जेल या किसी अन्य संस्था का, जहाँ पर उपचार, सुधार या संरक्षण के प्रयोजनार्थ व्यक्तियों को निरूद्ध किया जाता है या रखा जाता है, निवास करने वालों की जीवन की दशाओं का अध्ययन करने एवं उस पर सिफारिशें करने के लिए निरीक्षण करेगा।

(घ) मानव अधिकारों के संरक्षण के लिए संविधान या तत्समय प्रवृत्त किसी कानून द्वारा या उसके अधीन प्रावहित सुरक्षाओं का पुनर्विलोकन करेगा तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिशें करेगा।

(ङ) उन कारकों का जिसमें उग्रवाद के कृत्य भी हैं, मानव अधिकारों के उपभोग में बाधा डालते हैं, पुनर्विलोकन करेगा एवं उपयुक्त उपचारात्मक उपयों की सिफारिश करेगा।

(च) मानव अधिकारों पर सन्धियों एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय लेखों का अध्ययन करेगा तथा उनके प्रभावी क्रियान्वयन के लिए सिफारिश करेगा।

(छ) मानव अधिकारों के क्षेत्र में अनुसंधान एवं उसे प्रोन्नत करेगा।

(ज) समाज के विभिन्न खण्डों में मानव अधिकार साक्षरता का प्रसार करेगा तथा प्रकाशकों, साधनों (मीडिया), सेमीनारों एवं अन्य उपलब्ध साधनों के माध्यम से इन अधिकारों के संरक्षण के लिए उपलब्ध सुरक्षाओं के प्रति जागरूकता को विकसित करेगा।

(झ) मानव अधिकारों के क्षेत्र में कार्य करने वाले गैर–सरकारी संगठनों एवं संस्थाओं के प्रयत्नों को प्रोत्साहन देगा।

(ञ) ऐसे अन्य कृत्य करेगा जिन्हें वह मानव अधिकारों के संवर्धन के लिए आवश्यक समझेगा।

जाँच से सम्बन्धित शक्तियाँ–

(1) आयोग, इस अधिनियम के अधीन शिकायतों की जाँच करते समय, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अन्तर्गत वाद का तथा विशेष रूप से निम्न मामलों के सम्बन्ध में, विचारण करते हुए, सिविल न्यायालय की समस्त शक्तियाँ रखेगा।

(क) साक्षियों को बुलाना तथा उनकी उपस्थिति प्रवर्तित करना एवं शपथ पर उनकी परीक्षा करना।

(ख) किसी भी दस्तावेज को खोजना एवं प्रस्तुत करना।

(ग) हलफनामों पर साक्ष्य प्राप्त करना।

(घ) किसी भी न्यायालय या कार्यालय से किसी लोक अभिलेख या उसकी प्रति के लिए अधियाचना करना।

(ङ) साक्षियों का दस्तावेजों की परीक्षा के लिए कमीशन जारी करना।

(च) अन्य कोई मामला जो विहित किया जायेगा।

(2) आयोग को किसी व्यक्ति से, किसी विशेषाधिकार के अध्ययीन रहते हुए जिसे उस व्यक्ति द्वारा तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अन्तर्गत क्लेम किया जाएगा, ऐसे बिन्दुओं या मामलों पर, जो आयोग की राय में जाँच के विषय के लिए उपयोगी होंगे, या उससे सुसंगत होंगे, सूचना प्रस्तुत करने के लिए कहने की शक्ति प्राप्त होगी तथा इस प्रकार से उपेक्षा

किए गए व्यक्ति को भारतीय दण्ड संहिता की धारा 176 एवं धारा 177 के अर्थान्तर्गत ऐसी सूचना देने के लिए बाध्य हुआ समझा जाएगा।

परिशिष्ट–3

राज्य मानव अधिकार आयोग

राज्य मानव अधिकार आयोग का गठन

(1) एक राज्य सरकार (राज्य का नाम) मानव अधिकार आयोग के रूप में की जाने वाली एक संस्था का इस अध्याय के अधीन उसे प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग में, तथा राज्य आयोग को समनुदेशित कार्यों को निष्पादित करने के लिए, गठन करेगी।

(2) आयोग में निम्न होंगे।

क. अध्यक्ष जो उच्च न्यायालय का एक मुख्य न्यायाधीष है।

ख. एक सदस्य, जो उच्च न्यायालय का सदस्य है, या सदस्य रहा है।

ग. एक सदस्य, जो उस राज्य में एक जिला न्यायाधीष है या रहा है।

घ. दो सदस्य जिनकी नियुक्ति उन व्यक्तियों में से की जाएगी जिन्हें मानव अधिकारों से सम्बन्धित मामलों का ज्ञान हो या उसमें व्यवहारिक अनुभव हो।

3. एक सचिव होगा जो राज्य आयोग का मुख्य कार्यपालक अधिकारी होगा तथा राज्य आयोग की ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगा एवं ऐसे कार्यों का निर्वहन करेगा जो उसे प्रत्यायोजित किये जायेंगे।

4- राज्य आयोग का मुख्य कार्यालय ऐसे सीन पर होगा जो राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा, विनिर्दिष्ट करेगी।

5- राज्य आयोग संविधान की सातवीं अनुसूची में सूची–2 एवं सूची–3 में उल्लिखित प्रविष्टियों में किसी से सम्बन्धित मामलों के बारे में ही मानव अधिकारों के उल्लघंन की जाँच करेगा।

परन्तु यह कि यदि ऐसे किसी मामले पर पहले से ही आयोग या तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन विधिवत गठित किसी अन्य आयोग द्वारा जाँच की जा रही हो तो राज्य आयोग उक्त मामले में जांच नहीं करेगा।

परन्तु यह और कि जम्मू एवं कश्मीर मानव अधिकार आयोग के सम्बन्ध में, यह उपधारा इस प्रकार पभाव रखेगी जैसे कि मानों शब्दों एवं अंकों से संविधान की सातवीं अनुसूची में सूची–2 एवं सूची–3 को शब्द एवं अंक ''संविधान की सातवीं अनुसूची में सूची–3 जो जम्मू एवं कश्मीर राज्य पर तथा उन मामलों के सम्बन्ध में प्रयोज्य है, जिनके सम्बन्ध में उस राज्य के विधान मण्डल को नियम बनाने की शक्ति है।'' द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।

राज्य आयोग के अध्यक्ष एवं अन्य सदस्यों की नियुक्ति

(1) अध्यक्ष एवं सदस्यों की नियुक्ति राजयपाल द्वारा अपने हस्ताक्षर एवं मुद्रासहित अधिपत्र द्वारा की जाएगी।

परन्तु यह कि इस उपधारा के अधीन प्रत्येक नियुक्ति, समिति की, जिसमें निम्न होंगे, सिफारिश प्राप्त करने के बाद की जाएगी–

(क)	मुख्यमंत्री	अध्यक्ष
(ख)	विधान सभा	सदस्य
(ग)	उस राज्य में गृह मंत्रालय का प्रभारी मंत्री	सदस्य
(घ)	विधान सभा में विपक्ष का नेता	सदस्य

परन्तु यह और कि जहाँ किसी राज्य में विधान परिषद है, वहाँ उस परिषद का सभापति एवं परिषद में विपक्ष का नेता भी समिति के सदस्य होंगे।

(2) राज्य आयोग के अध्यक्ष या सदस्य कोई नियुक्ति समिति में पात्र किसी रिक्ति के कारण अविधिमान्य नहीं होगी।

राज्य आयोग के सदस्य का हटाया जाना

1. उपधारा

2- के उपबन्धों के अध्ययीन रहते हुए, राज्य आयोग का अध्यक्ष या किसी सदस्य को उसके पद से, राष्ट्रपति के आदेश द्वारा, उच्चतम न्यायालय को निर्देश दिए जाने पर, उच्चतम न्यायालय के द्वारा उस सम्बन्ध में विहित प्रक्रिया के अनुसार की गई जाँच पर यह रिपोर्ट देने के वाद कि अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य, यथास्थिति को किसी ऐसे सिद्ध कदाचार या अक्षमता के आधार पर हटाया जाना चाहिए, हटाया जायेगा।

(2). उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, राष्ट्रपति अध्यक्ष या किसी अन्य सदस्य को आदेश द्वारा पद से हटा देगा, यदि अध्यक्ष या ऐसा अन्य सदस्य, यथास्थिति–

क. दिवालिया न्याय निर्णीत कर दिया गया है।

ख. अपने कार्यकाल में अपने पद के कर्तव्यों के बाहर किसी वैतनिक रोजगार में लगता है।

ग. मस्तिष्क या शरीर की दुर्बलता के कारण पद पर बने रहने के लिए अयोग्य है।

घ. विकृत चित्त का है एवं सक्षम न्यायालय द्वारा इस प्रकार घोषित कर दिया गया है।

ङ. किसी अपराध के लिए जो राष्ट्रपति की राय में नैतिक पतन वाला है सिद्ध हो गया है एवं उसे कारागार की संज्ञा दे दी गयी है।

राज्य आयोग के सदस्यों की पदावधि– (1) अध्यक्ष के रूप में नियुक्त व्यक्ति उस दिनांक से जिसको वह अपने पद पर प्रवेश करेगा, पाँच वर्ष की अवधि के लिए या जब तक वह सत्तर वर्ष की आयु का नहीं होगा, इनमें से भी जो पूर्व में हो, पद को धारित करेगा।

परिशिष्ट—4

मानव अधिकार न्यायालय

मानव अधिकार न्यायालय— मानव अधिकारों के उल्लघंन से उत्पन्न अपराधों के शीघ्र विचारण का उपबन्ध करने के लिए, राज्य सरकार, उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीष की सहमति से, अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले के लिए उक्त अपराधों पर विचारण करने के लिए एक सत्र न्यायालय को मानव अधिकार न्यायालय होने के रूप में विर्निष्ट करेगी।

परन्तु यह कि इस धारा की कोई बात लागू नहीं होगी यदि—

(क) सत्र न्यायालय को पहले ही विशेष न्यायालय विनिर्दिष्ट किया गया है।

(ख) वर्तमान में प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन ऐसे अपराधों के लिए विशेष न्यायालय पहले ही गठित किया गया है।

विशिष्ट लोक अभियोजक—

प्रत्येक मानव अधिकार न्यायालय के लिए, राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा उस न्यायालय में मामलों को संचालित करने के प्रयोजनार्थ एक विशिष्ट लोक अभियोजन के रूप में किसी एक लोक अभियोजन को विनिर्दिष्ट करेगी या किसी ऐसे एडवोकेट को नियुक्त करेगी जो एडवोकेट के रूप में कम से कम सात वर्षों से प्रेक्टिस में रहा है।
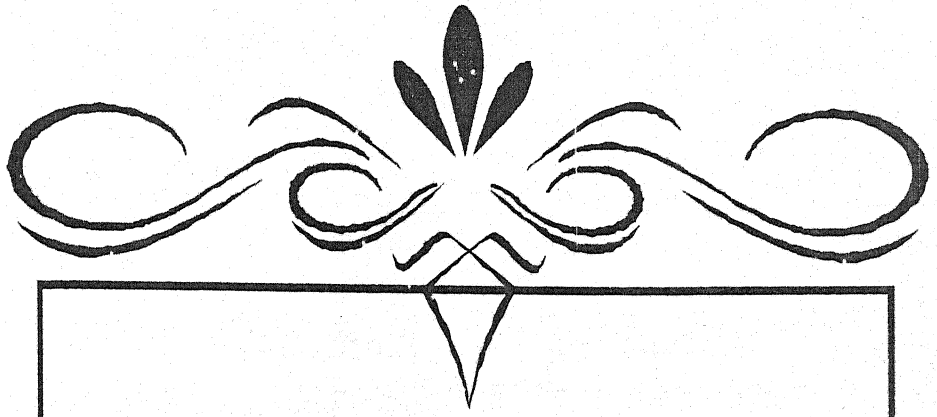
सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
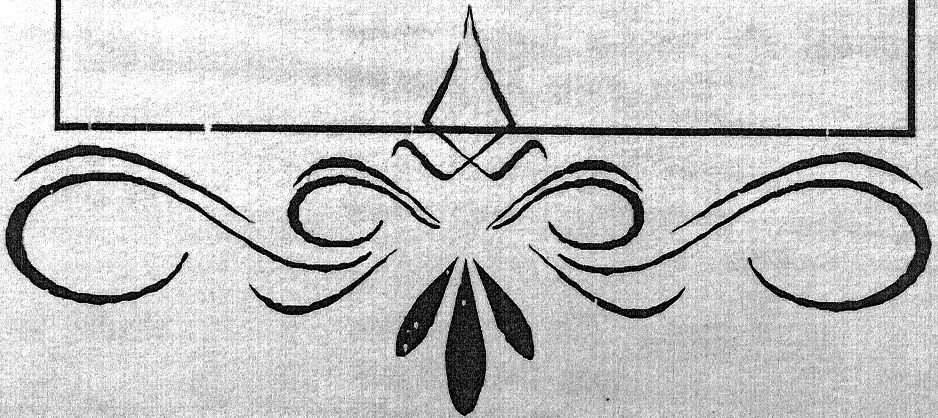
References

Primary Sources :

1. Amnesty International : "International Bill of Human Rights" London 1992.
2. Amnesty International : "Woman world wide Suffer Human rights Violation." Published in the Assam Tribune. 19 June, 1999.
3. Government of India : "Report of the backward classes" Commission, 1995.
4. The Vienna Declaration : "AAustria 14 to 25 June", 1993.
5. Sharma, A and Sood, N. : "Approach and strategies of childs Development of India" Constitution of India, New Delhi, 1989.
6. United Nations charter : "Dumbarton Oaks", U. S. A., 25 April. 1945.
7. Year book on Human rtights : New York's, 1985.
8. Michael, I : "Human rights as politics Indolatory" 1994.
9. उत्तर प्रदेश मानव अधिकार आयोग, लखनऊ : प्रतिवेदन 2002–03, 04, 05, 06, 07
10. एमनेस्टी इण्टरनेशनल : "भारत" यातनायें बलात्कार और हिरासत में होने वाली मौतें, लन्दन, 1992
11. मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम : 1993
12. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग : "अपने अधिकार जाने" बालश्रम, बंधुआ मजदूरी, दिल्ली, 2007
13. राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग : वार्षिक रिपोर्ट 2004–05, 2005–06 "नई दिशायें, दिल्ली।

Secondry Sources :

A Books :

Ambedkar, B. R. : "Mr. Gandhiji and the Amencipation of the Untouchable theker and company" Bombay, 1943.

Anand, A. S. : "PIL as Aid to pretection of Human rights", 2001.

Akhilesh, (Dr.) : "Pratection of H. R. S. & Role of Police in the Society, 2001.

Bhattacharya, K. K. : "International law & Human rights", Allahabad, 2002.

Dev, Arjun : "Human rights" A source book, Delhi Peb., 1996.

Desai, I. P. : "Caste, Caste conflict and reservation" Delhi, 1985.

Desai, Neera : "Women and Bhakti movement as appeared in the (Somya Shakti) General of the center for womens", New Delhi, 1984.

Green, Maria : "What we talk about when we talk about indicators; Current Approaches to Human rights Masurement". (H. R. Q. 2001 (23).

Hamm, Brigitle : "Human Rights Approach to Development", 2001.

Inigo, R. M. Dr. : "Fantasy of Human rights in India", (L. N. V.) Jan., 2002.

Kashyap, Subhash, C. : "Human rights"

Kapoor, H. L. : "Judicial protection of Human rights in India", 2002

Kapoor, S. K. : "International law & Human rights", 2001.

Lauterpacht, H. : "International law & Human rights" Cambridge, 1968.

Monee, B. S. : "Resional approaches to the implementation of Human rights", I. J. S. L. Volueme, 21.

Openhime : "International law" (Vol. 1) Hudson (Add. 9), 1992.

Pasayat, Ajit : "Human rights", 2001.

Pady, B. P. : "Protection of Human rights Act., 1993 and the Status of Socio Economic rights", Dec., 2001.

Pal, R. M. : "Human rights Issues - Dimension & Divisionness must not been couraged".

Ramaswamy, K. : "Race, Caste, Descent Based Discrimination and HRS" Violation in India, 2001.

Sohan, Luis. B. : "The New International law", 1982.

Singh, Anita Inder : "Diversity Human rights & Peace", 2001.

Sharma, S. D. : "Education is Basic Human rights of Human being", 2001.

Sivkumar, S. : "Media and Human rights", 2001.

Singh, R. P. : "U. P. land law", 2002.

Stark, J. G. : "An Introduction to international law", 1989.

Singh, S. N. : "Reservation policy for backward calss", 1984.

Sanaja, Naorem : "Human rights" principles practice & Abuses, Delhi, 1994.

Thomas, M. A. : "The struggle far Human rights" Bangalore, 1992.

Yadav, K. S. : "Indian Unequal Citizane" (A Study of O. B. C. A.)

1. अम्बेडकर, बी0 आर0 : ''वाग्मय खण्ड–2'', नई दिल्ली, 1993

2. अग्रवाल, आर0 सी0 : ''प्राचीन एवं मध्यकालीन भारत का सांस्कृतिक एवं राजनैतिक इतिहास'', दिल्ली, 1981

3. अग्रवाल, एच0 ओ0 : ''मानव अधिकार'' इलाहाबाद, 2002

4. अंसारी एम0 ए0 : ''राष्ट्रीय महिला आयोग और भारतीय नारी'' जयपुर, 2002

5. उपाध्याय, जय जय राम : ''मानव अधिकार'' इलाहाबाद, 2002

6. कपूर, एस0 के0 : ''मानव अधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि'' इलाहाबाद, 2002

7. गुप्त, कैलाश नाथ : ''मानवाधिकार और उनकी रक्षा'' दिल्ली, 2004

8. गावा, ओ0 पी0 : ''समकालीन राजनीतिक सिद्धान्त'' नई दिल्ली, 1996

9. तनेजा, पुष्पलता : ''मानवाधिकार और बालशोषण'', 1995

10. दीक्षित, आ0 सी0 और शाह गिरिराज : ''मानवाधिकार– दशा और दिशा''

11. बाबेल, बी0 एल0 : ''महिला एवं बाल कानून'' इलाहाबाद, 2001

12. बडाकुमचेरी, जेक्स : ''इंडियन पुलिस'', 2001

13. फड़िया, बी0 एल0 : ''अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध'' आगरा, 1992

14. राजकिशोर : ''स्त्री के लिए जगह'', दिल्ली, 2000

15. राजकिशोर : मानवाधिकारों का संघर्ष'' नई दिल्ली, 1986

16. सेन, शंकर : "मानव अधिकार और पुलिरा बल", नई दिल्ली, 1994

17. शिशिर, करमेन्दु : "जाति व्यवस्था का स्वरूप और संघर्ष" (पंचकला) हरियाणा

18. शर्मा, जी0 एस0 : "श्रमिक विधि:: इलाहाबाद

19. सिन्हा, एस0 नारायण : "दि रिवोल्ट आफ 1857 इन बुन्देलखण्ड"

20. श्रीवास्तव, श्री राम : "उत्तर प्रदेश भूमि विधियाँ" इलाहाबाद

21. यादव, अमर सिंह : "भारतीय दण्ड संहिता", 2002

B. Articles and Editorial :

Chowdhry Rituparna : "Status of India women through Ages" The Assam Tribune, 16 June, 1992.

Despande, Sashi : "No women is Island" The times of India, 17 March, 1988.

Datta, Bishakha : "Can mother play Father" The Times of India, 17 March, 1988.

Iyenger, pushpa : "Tamil Villagers kill baby girls to keep dowry at baby" Times of India, 22 Aug. 1992.

Rai, Usha : "Women's Status" : The times of India 24 June, 1991.

Sharma, Kalpan : "Rise in Rapes" Dowry Death, pioneer, 2 Aug. 1989.

Sharma, A. K. : "Universal Declaration of Human Rights' Delhi, Times of India, 1996.

अग्रवाल : "सामाजिक संरचना का सन्दर्भ" दिल्ली, 1985

अभिज्ञान संजय : "मानवाधिकारों का अर्थनय" मानवाधिकारों का संघर्ष नई दिल्ली, 1995

तलवार, कुलदीप : "नरग भोगती आधी आबादी" अमर उजाला, 14 दिसम्बर, 1999

तारकुंडे, वी0 एम0 : "मानवाधिकारों का दर्शन" "मानवाधिकारों का संघर्ष" 1985

दास, किशोरी : "अति पिछड़ों का जमाना कब आयेगा" (राजकिशोर सम्पादित) दिल्ली 1995

प्रियसी निकिता : "महिला सशक्तीकरण : दशा और दिशा" आज, 2008

डा0 दीक्षित, प्रभा : "समाप्त क्यों नहीं होता महिला उत्पीड़न" आज, 2008

वर्मा, रवीन्द्र : "ताकत का खेल" स्त्री के लिए जगह, 2000

वर्मा, राजेन्द्री : "घरेलू हिंसा से महिलाओं का संरक्षण अधिनियम 2005" स्मारिका, 2008

दुबे, लीला : "धरती और बीज" 2000

विश्वास, अनिल : "मानवाधिकारों के लिए संघर्ष" लोक लहर, 21 फरवरी, 1999

मिश्र, आनन्दशंकर : "कितना कारगर साबित हो रहा मानवाधिकार" 10 दिसम्बर, 2007

माधव, मेनन, एन0 आर0 : "समाज के कमजोर वर्गों के साथ किये जा रहे अत्याचारों का मुकाबला करने में विधिक सहायता की भूमिका" विधिक सहायता संवाद पत्र मई, 89–फरवरी, 90

राजकिशोर : "बलात्कार पर कुछ प्रस्ताव" 2000
"दलितों और सवर्णों का रोटी बेटी का रिश्ता" 2001

सहगल नयनतारा : "मेरा सच" 2000

डा0 सिंह रिपुसूदन : "मानवाधिकार का तीसरा दृष्टिकोण" स्मारिका, उरई, 2002

डा0 सक्सेना, आदित्य कुमार : "राजनीति के भँवर में मानवाधिकार" स्मारिका, 2002

सिंह, शिवा : "नारी का सशक्तीकरण" नई चेतना, 2008

सुरवीजा, वीना : "लिंग समानता की दिशा में ठोस पहल" नई चेतना, लखनऊ, 2008

शुक्ला, सुधा : "एक कदम आगे दो कदम पीछे" नई चेतना, लखनऊ, 2008

श्रीवास्तव, योगेन्द्र कुमार : "मानवाधिकारों की कसौटी पर महिलाएं" 2007

सिंह, अरविन्द कुमार : "देश में छुआछूत से मुक्ति अभी भी सपना" अमर उजाला, 12 दिसम्बर, 2007

C. Newspaper and Magazine

1. "हिन्दुस्तान टाइम्स" : नई दिल्ली।
2. "आज" : कानपुर।
3. "नवभारत टाइम्स" : दिल्ली।
4. "भारत अश्वघोष" : दिल्ली।
5. "परीक्षा मन्थन" : इलाहाबाद।
6. "समकालीन तीसरी दुनिया : दिल्ली।
7. "अमर उजाला" : कानुपर।
8. "दैनिक जागरण" : कानपुर।

9. "लोकलहर" : उरई।

10. "द टाइम्स आफ इण्डिया" : लखनऊ।

11. "प्रतियोगिता दर्पण" : दिल्ली।

12. "हिन्दू" : मद्रास।

13. "पायनियर" : दिल्ली।

14. "विश्व" : झाँसी।

15. "ईयर बुक" : मानवाधिकार आयोग का गठन, जुलाई 1993 से जून 1999

16. "प्रगति मंजूषा" : एमनेस्टी की निराशा जनक रिपोर्ट मार्च, 1982

17. "दैनिक अग्निचरण" : उरई।

18. "इण्डिया टुडे" : मुम्बई।

19. "राष्ट्रीय सहारा" : लखनऊ।

20. "स्वतन्त्र भारत" : कानुपर, लखनऊ।